जैन-बौद्ध तत्वज्ञान

दूसरा भाग।

लेखक:—

ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी।

लाला महावीरप्रसादजी जैन एडवोकेट-हिसारकी
पूज्य माताजी श्रीमती ज्वालादेवीकी ओरसे
'जैनमित्र' के ३८वें वर्षके ग्राहकोंको भेंट।

जैन-बौद्ध तत्वज्ञान।

दूसरा भाग।

सम्पादक:—

श्रीमान् ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी,

[अनेक जैन शास्त्रोंके टीकाकार, सम्पादन कर्ता तथा अध्यात्म ग्रन्थोंके रचयिता]

प्रकाशक:—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैनपुस्तकालय—सूरत।

हिसारनिवासी श्रीमान् लाला महावीरप्रसादजी जैन एडवोकेटकी पूज्य माताजी श्रीमती ज्वालादेवीजीकी ओरसे "जैनमित्र" के ३८ वें वर्षके ग्राहकोंको भेट।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४६४ [प्रति १२००+२००

मूल्य-एक रुपया।

मुद्रक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस,
गांधीचौक—सूरत।

प्रकाशक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
मालिक, दिगम्बर जैनपुस्तकालय,
कापड़ियाभवन—सूरत।

भूमिका।

जैन बौद्ध तत्वज्ञान पुस्तक प्रथम भाग सन् १९३२ में लिखकर प्रसिद्ध की गई है उसकी भूमिकामें यह बात दिखलाई जाचुकी है कि प्राचीन बौद्ध धर्मका और जैनधर्मका तत्वज्ञान बहुत अंशमें मिलता हुआ है। पाली साहित्यको पढ़नेसे बहुत अंशमें जैन और बौद्धकी साम्यता झलकती है। आजकल सर्वसाधारणमें जो बौद्ध धर्मके सम्बन्धमें विचार फैले हुए हैं उनसे पाली पुस्तकोंमें दिखाया हुआ कथन बहुत कुछ विलक्षण है। सर्वथा क्षणिकवाद बौद्धमत है यह बात प्राचीन ग्रन्थके पढ़नेसे दिलमें नहीं बैठती है। सर्वथा क्षणिक माननेसे निर्वाणमें बिलकुल शून्यता आजाती है। परन्तु पाली साहित्यमें निर्वाणके विशेषण हैं जो किसी विशेषको झलकाते हैं। पाली कोषमें निर्वाणके लिये ये शब्द आये हैं—'मुत्तो (मुक्ता), निरोधो, निब्बानं, दीपं, तराहक्खय (तृष्णाका क्षय) तानं (रक्षक), लेनं (लीनता), अरूवं संतं (शांत), असंखतं (असंस्कृत), सिवं (आनन्दरूप), अमुत्तं (अमूर्तीक), सुदुद्दसं (अनुभव करना कठिन है), परायनं (श्रेष्ठ मार्ग), सरणं (शरणभूत) निपुणं, अनन्तं, अक्खर (अक्षय), दुःखक्खय, अद्धापज्झ (सत्य), अनालयं (उच्च गृह), विवट्ट (संसार रहित), खेम, केवल, अपवग्गो (अपवर्ग), विरागो, पणीतं (उत्तम), अच्चुतं पदं (न मिटनेवाला पद) योग खेमं, पारं, मुत्तं (मुक्ति), विशुद्धि, विमुत्ति (विमुक्ति) असंखत धातु (असंस्कृत धातु), सुद्धि, निब्बुत्ति (निर्वृत्ति)।'

यदि निर्वाण अभाव या शून्य हो तो ऊपर लिखित विशेषण नहीं बन सक्ते हैं। विशेषण विशेष्यके ही होते हैं। जब निर्वाण विशेष्य है तब वह क्या है, चेतन है कि अचेतन। अचेतनके विशेषण नहीं होसक्ते। तब एक चेतन द्रव्य रह जाता है। केवल, अजात, अक्षय, असंस्कृत धातु आदि साफ साफ निर्वाणको कोई एक परसे भिन्न अजन्मा व अमर, शुद्ध एक पदार्थ झलकाते हैं। यह निर्वाण जैन दर्शनके निर्वाणसे मिल जाता है, जहांपर शुद्धात्मा या परमात्माको अपनी केवल स्वतंत्र सत्ताको रखनेवाला बताया गया है। न तो वहां किसी ब्रह्ममें मिलना है न किसीके परतंत्र होना है, न गुणरहित निर्गुण होना है। बौद्धोंका निर्वाण वेदांत सांख्यादि दर्शनोंके निर्वाणके साथ न मिलकर जैनोंके निर्वाणके साथ भलेप्रकार मिल जाता है। यह वही आत्मा है जो पांच स्कंधकी गाड़ीमें बैठा हुआ संसारचक्रमें घूम रहा था। पांचों स्कंधोंकी गाड़ी अविद्या और तृष्णाके क्षयसे नष्ट होजाती है तब सर्व संस्कारित विकार मिट जाते हैं, जो शरीर व अन्य चित्त संस्कारोंमें कारण होरहे थे। जैसे अग्निके संयोगसे जल उबल रहा था, गर्म था, संयोग मिटते ही वह जल परम शांत स्वभावमें होजाता है वैसे ही संस्कारित विज्ञान व रूपका संयोग मिटते ही अजात अमर आत्मा केवल रह जाता है। परमानन्द, परम शांत, अनुभवगम्य यह निर्वाणपद है, वैसे ही उसका साधन भी स्वानुभव या सम्यक्समाधि है। बौद्ध साहित्यमें जो निर्वाणका कारण अष्टांगिकयोग बताया है वह जैनोंके रत्नत्रय मार्गसे मिल जाता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता अर्थात् निश्चयसे शुद्धात्मा या निर्वाण स्वरूप अपना श्रद्धान व ज्ञान व चारित्र या स्वानुभव ही निर्वाण मार्ग है। इस स्वानुभवके लिये मन, वचन, कायकी शुद्ध क्रिया कारणरूप है, तत्वस्मरण कारणरूप है, आत्मबलका प्रयोग कारणरूप है। शुद्ध भोजनपान कारणरूप है, बौद्ध मार्ग है। सम्यग्दर्शन, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि। सम्यग्दर्शनमें सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञानमें सम्यक् संकल्प सम्यक्चारित्रमें शेष छः गर्भित है। मोक्षमार्गके निश्चय स्वरूपमें कोई भेद नहीं दीखता है। व्यवहार चारित्रमें जब निर्ग्रंथ साधु मार्ग वस्त्ररहित प्राकृतिक स्वरूपमें है तब बौद्ध भिक्षुके लिये सवस्त्र होनेकी आज्ञा है। व्यवहार चारित्र सुलभ कर दिया गया है। जैसा कि जैनोंमें मध्यम पात्रोंका या मध्यम व्रत पालनेवाले श्रावकोंका, ब्रह्मचारियोंका होता है।

अहिंसाका, मैत्री, प्रमोद, करुणा, व माध्यस्थ भावनाका बौद्ध और जैन दोनोंमें बढ़िया वर्णन है। तब मांसाहारकी तरफ जो शिथिलता बौद्ध जगतमें आगई है इसका कारण यह नहीं दीखता है कि तत्वज्ञानी करुणावान गौतमबुद्धने कभी मांस लिया हो या अपने भक्तोंको मांसाहारकी सम्मति दी हो, जो बात लंकावतार सूत्रसे जो संस्कृतसे चीनी भाषामें चौथी पांचवीं शताब्दीमें उल्था किया गया था, साफ साफ झलकती है।

पाली साहित्य सीलोनमें लिखा गया जो द्वीप मत्स्य व मांसका

नर है, वहांपर भिक्षुओंको भिक्षामें अपनी हिंसक अनुमोदनाके बिना मांस मिल जावे तो ले ले ऐसा पाली सूत्रोंमें कहीं कहीं कर दिया गया है। इस कारण मांसका प्रचार होजानेसे प्राणातिपात विरमण व्रत नाम मात्र ही रह गया है। बौद्धोंके लिये ही कसाई लोग पशु मारते व बाजारमें बेचते हैं। इस बातको जानते हुए भी बौद्ध संसार यदि मांसको लेता है तब यह प्राणातिपात होनेकी अनुमतिसे कभी बच नहीं सक्ता। पाली बौद्ध साहित्यमें इस प्रकारकी शिथिलता न होती तो कभी भी मांसाहारका प्रचार न होता। यदि वर्तमान बौद्ध तत्वज्ञ सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करेंगे तो इस तरह मांसाहारी होनेसे अहिंसा व्रतका गौरव बिलकुल खो दिया है। जब अन्न व शाक सुगमतासे प्राप्त होसक्ता है तब कोई बौद्ध भिक्षु या गृहस्थ मांसाहार करे तो उसको हिंसाके दोषसे रहित नहीं माना जासक्ता है व हिंसा होनेमें कारण पड़ जाता है।

यदि मांसाहारका प्रचार बौद्ध साधुओं व गृहस्थोंसे दूर हो जावे तो उनका चारित्र एक जैन गृहस्थ या त्यागीके समान बहुत कुछ मिल जायगा। बौद्ध भिक्षु रातको नहीं खाते, एक दफे भोजन करते, तीन काल सामायिक या ध्यान करते, वर्षाकाल एक स्थल रहते, पत्तियोंको घात नहीं करते हैं। इस तरह जैन और बौद्ध तत्वज्ञानमें समानता है कि बहुतसे शब्द जैन और बौद्ध साहित्यके मिलते हैं। जैसे आस्रव, संवर आदि।

पाली साहित्य यद्यपि प्रथम शताब्दी पूर्वके करीब सीलोनमें लिखा गया तथापि उसमें बहुतसा कथन गौतमबुद्ध द्वारा कथित

है ऐसा माना जा सक्ता है। बिलकुल शुद्ध है, मिश्रण रहित है, ऐसा तो कहा नहीं जा सक्ता। जैन साहित्यमें बौद्ध साहित्यके मिलनेका कारण यह है कि गौतमबुद्धने जब घर छोड़ा तब ६ वर्षके बीचमें उन्होंने कई प्रचलित साधुके चारित्रको पाला। उन्होंने दिगम्बर जैन साधुके चारित्रको भी पाला। अर्थात नग्न रहे, केशलोंच किया, उद्दिष्ट भोजन न ग्रहण किया आदि। जैसा कि मज्झिमनिकायके **महासिंहनाद** नामके १२ वें सूत्रसे प्रगट है। दि० जैनाचार्य नौमी शताब्दीमें प्रसिद्ध **देवसेनजी** कृत दर्शनसारसे झलकता है कि गौतमबुद्ध श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी परिपाटीमें प्रसिद्ध **पिहितास्रव** मुनिके साथ जैन मुनि हुए थे, पीछे मतभेद होनेसे अपना धर्म चलाया। जैन बौद्ध तत्वज्ञान प्रथम भागकी भूमिकासे प्रगट होगा कि प्राचीन जैनधर्म और बौद्धधर्म एक ही समझा जाता था। जैसे जैनोंमें दिगम्बर व श्वेतांबर भेद होगये वैसे ही उस समय निर्ग्रंथ धर्मसे भेदरूप बुद्ध धर्म होगया था। पाली पुस्तकोंका बौद्ध धर्म प्रचलित बौद्ध धर्मसे विलक्षण है। यह बात दूसरे पश्चिमीय विद्वानोंने भी मानी है।

(1) Sacred book of the East Vol. XI 1889—by T. W. Rys Davids, Max Muller—

Intro. Page 22–Budhism of Pali Pitakas is not only a quite different thing from Budhism as hitherto commonly received, but is autogonistic to it.

अर्थात्—इस पाली पिटकोंका बौद्ध धर्म साधारण अवतक प्रचलित बौद्ध धर्मसे मात्र बिलकुल भिन्न ही नहीं है, किन्तु उससे विरुद्ध है।

(2) Life of the Budha by Edward J. Thomas M. A. (1927) P. 204. They all agree in holding that primitive teaching must have been something different from what tho earliest scriptures and commentatus thought it was.

अर्थात्—इस बातसे सब सहमत हैं कि प्राचीन शिक्षा अवश्य उससे भिन्न है जो प्राचीन ग्रंथ और उसके टीकाकारोंने समझ लिया था।

बौद्ध भारतीय भिक्षु श्री राहुल सांकृत्यायन लिखित बुद्धचर्या हिंदीमें प्रगट है। पृ० ४८१ सामगामसुत्त कहता है कि जब गौतम बुद्ध ७७ वर्षके थे तब महावीरस्वामीका निर्वाण ७२ वर्षमें हुआ था। जैन शास्त्रोंसे प्रगट है कि महावीरस्वामीने ४२ वर्षकी आयु तक अपना उपदेश नहीं दिया था। जब गौतम बुद्ध ४७ वर्षके थे तब महावीरस्वामीने अपना उपदेश प्रारम्भ किया। गौतम बुद्धने २९ वर्षकी आयुमें घर छोड़ा। छः वर्ष साधना किया। ३५ वर्षकी आयुमें उपदेश प्रारम्भ किया। इससे प्रगट है कि महावीरस्वामीका उपदेश १२ वर्ष पीछे प्रगट हुआ तब इसके पहले श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरका ही उपदेश प्रचलित था। उसके अनुसार ही बुद्धने जैन चारित्रको पाला। जैसी असहनीय कठिन तपस्या बुद्धने की ऐसी आज्ञा जैन शास्त्रोंमें नहीं है। **शक्तितस्तपका उपदेश**

है कि आत्म रमणता बढ़े उतना ही बाहरी उपवासादि तप करो। गौतमने मर्यादा रहित किया तब घबड़ाकर उसे छोड़ दिया और जैनोंके मध्यम मार्गके समान श्रावकका सरल मार्ग प्रचलित किया।

पाली सूत्रोंके पढ़नेसे एक जैन विद्यार्थीको वैराग्यका अद्भुत आनन्द आता है व स्वानुभवपर लक्ष्य जाता है, ऐसा समझकर मैंने मज्झिमनिकायके चुने हुए २५ सूत्रोंको इस पुस्तकमें भी राहुल कृत हिंदी टीकाके अनुसार देकर उनका भावार्थ जैन सिद्धांतसे मिलान किया है। इसको ध्यानपूर्वक पढ़नेसे जैनोंको और बौद्धोंको तथा हरएक तत्वखोजीको बड़ा ही लाभ व आनंद होगा। उचित यह है कि जैनोंको पाली बौद्ध साहित्यका और बौद्धोंको जैनोंके प्राकृत और संस्कृत साहित्यका परस्पर पठन पाठन करना चाहिये। यदि मांसाहारका प्रचार बन्द जाय तो जैन और बौद्धोंके साथ बहुत कुछ एकता होसक्ती है। पाठकगण इस पुस्तकका रस लेकर मेरे परिश्रमको सफल करें ऐसी प्रार्थना है।

हिसार (पंजाब)
३-१२-१९३६.

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जैन।

॥ ॐ ॥

संक्षिप्त परिचय-

धर्मपरायणा श्रीमती ज्वालादेवीजी जैन-हिसार।

यह "जैन बौद्ध तत्वज्ञान" नामक बहुमूल्य पुस्तक जो "जैनमित्र" के २८वें वर्षके ग्राहकोंके हाथोंमें उपहारके रूपमें प्रस्तुत है, वह **श्रीमती ज्वालादेवीजी, धर्मपत्नी ला० ज्वालाप्रसादजी व पूज्य माता ला० महावीरप्रसादजी वकील**की ओरसे दी जारही है।

श्रीमतीजीका जन्म विक्रम संवत् १९४०में **झंझर** (रोहतक) में हुवा था। आपके पिता **ला० सोहनलालजी** वहांपर अर्जीनवीसीका काम करते थे। उस समय जैनसमाजमें स्त्रीशिक्षाकी तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता था, इसी कारण श्रीमतीजी भी शिक्षा ग्रहण न कर सकीं। खेद है कि आपके पितृगृहमें इससमय कोई जीवित नहीं है। मात्र आपकी एक बहिन हैं, जो कि सोनीपतमें व्याही हुई है।

आपका विवाह सोलह वर्षकी आयुमें ला० ज्वालाप्रसादजी जैन हिसार वालोंके साथ हुआ था। लालाजी असली रहनेवाले रोहतकके थे। वहां मोहल्ला **'पीपवाड़ा'** में इनका कुटुम्ब रहता है, जो कि **'हाटवाले'** कहलाते हैं। वहां इनके लगभग बीस घर होंगे। वे प्रायः सभी बड़े धर्मप्रेमी और शुद्ध आचरणवाले साधारण स्थितिके गृहस्थ हैं।

परिषदके उत्साही और प्रसिद्ध कार्यकर्ता ला० तनसुखरायजी जैन, जो कि तिलक बीमा कंपनी देहलीके मैनेजिंग डायरेक्टर हैं, वह इसी खान्दानमेंसे हैं। आप जैन समाजके निर्भीक और ठोस कार्य करनेवाले कर्मठ युवक हैं। अभी हालमें आपने जैन युवकोंकी बेकारीको देखकर दस्तकारीकी शिक्षा प्राप्त करनेवाले १० छात्रोंको १ वर्षतक भोजनादि निर्वाह खर्च देनेकी सूचना प्रकाशित की थी, जिसके फलस्वरूप कितने ही युवक छात्र देहलीमें आपके द्वारा उक्त शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। जैन समाजको आपसे बड़ी २ आशायें हैं, और समय आनेपर ये पूर्ण भी अवश्य होंगी।

इनके अतिरिक्त ला० मानसिंहजी, ला० प्रभूदयालजी, ला० अमीरसिंहजी, ला० गणपतिरायजी, ला० टेकचंदजी आदि इसी खान्दानके धर्मप्रेमी व्यक्ति हैं। इनका अपने खान्दानका **पीपलवाड़ामें** एक विशाल दि० जैन मंदिरजी भी है, जोकि अपने ही व्ययसे बनाया गया है। इस खान्दानमें शिक्षाकी तरफ विशेष रुचि है जिसके फलस्वरूप कई ग्रेजुएट और वकील हैं।

ला० ज्वालाप्रसादजीके पिता चार भाई थे। १–ला० कुंदनलालजी, २–ला० अमनसिंहजी, ३–ला० केदारनाथजी, ४–ला० सरदारसिंहजी। जिनमें ला० कुन्दनलालजीके सुपुत्र ला० मानसिंहजी, ला० अमनसिंहजीके सुपुत्र ला० मनफूलसिंहजी व ला० वीरभानसिंहजी हैं। ला० केदारनाथजीके सुपुत्र ला० ज्वालाप्रसादजी तथा ला० घासीरामजी और ला० सरदारसिंहजीके सुपुत्र ला० स्वरूपसिंहजी, ला० जगतसिंहजी और गुलाबसिंहजी हैं। जिनमेंसे ला०

जगतसिंहजी ला० महावीरप्रसादजी वकीलके पास ही रहकर कार्य करते हैं। ला० जगतसिंहजी सरल प्रकृतिके उदार व्यक्ति हैं। आप समय २ पर व्रत उपवास और यम नियम भी करते रहते हैं। आप त्यागियों और विद्वानोंका उचित सत्कार करना अपना मुख्य कर्तव्य समझते हैं। हिसारमें ब्रह्मचारीजीके चातुर्मासके समय आपने बड़ा सहयोग प्रगट किया था।

उक्त चारों भाइयोंमें परस्पर बड़ा प्रेम था, किसी एककी मृत्युपर सब भाई उसकी और एक दूसरेकी संतानको अपनी संतान समझते थे। ला० ज्वालाप्रसादजीके पिता ला० केदारनाथजी फतिहाबाद (हिसार) में अर्जीनवीसीका काम करते थे, और उनकी मृत्युपर ला० ज्वालाप्रसादजी फतिहाबादसे आकर हिसारमें रहने लग गये, और वे एक स्टेटमें मुलाजिम होगये थे। वे अधिक धनवान न थे, किन्तु साधारण स्थितिके शांत परिणामी, संतोषी मनुष्य थे। उनका गृहस्थ जीवन सुख और शांतिसे परिपूर्ण था। सिर्फ ३२ वर्षकी अल्प आयुमें उनका स्वर्गवास होजानेके कारण श्रीमतीजी २७ वर्षकी आयुमें सौभाग्य सुखसे वंचित होगई।

पतिदेवकी मृत्युके समय आपके दो पुत्र थे। जिसमें उस समय महावीरप्रसादजीकी आयु ११ वर्ष और शांतिप्रसादजीकी आयु सिर्फ छः मासकी थी। किन्तु ला० ज्वालाप्रसादजी (ला० महावीरप्रसजीके पिता) की मृत्युके समय उनके चाचा ला० सरदारसिंहजी जीवित थे। उस कारण उन्होंने ही श्रीमतीजीके दोनों पुत्रोंकी रक्षा व शिक्षाका भार अपने ऊपर लेलिया और उन्हींकी देखरेखमें

आपके दोनों पुत्रोंकी रक्षा व शिक्षाका समुचित प्रबन्ध होता रहा। किंतु सन् १९१८में ला० सरदारसिंहजीका भी स्वर्गवास होगया।

अपने बाबा सरदारसिंहजीकी मृत्युके समय श्री० महावीरप्रसादजीने एफ० ए० पास कर लिया था और साथ ही ला० सम्मनलालजी जैन रईस-ठेकेदार हांसी (जो उस समय ग्वालियर स्टेटके नहरके महकमामें मजिस्ट्रेट थे) जिशमीकी सुपुत्रीके साथ विवाह भी होगया था। श्री० शांतिप्रसादजी उस समय चौथी कक्षामें पढ़ते थे। अपने बाबाजीकी मृत्यु होजानेपर श्री० महावीरप्रसादजी उस समय अधीर और हताश न हुये, किन्तु उन्होंने अपनी पूज्य माताजी (श्रीमती ज्वालादेवीजी) की आज्ञानुसार अपने श्वसुर ला० सम्मतलालजीकी सम्मति व सहायतासे अपनी शिक्षा-वृद्धिका क्रम अगाड़ी चालू रखनेका ही निश्चय किया, जिसके फलस्वरूप वे लाहौरमें ट्यूशन लेकर कालेजमें पढ़ने लगे। इस प्रकार पढ़ते हुये उन्होंने अपने पुरुषार्थके बलसे चार वर्षमें वकालतका इम्तिहान पास कर लिया, और सन् १९२२में वे वकील होकर हिसार आगये।

हिसारमें वकालत करते हुये आपने असाधारण उन्नति की, और कुछ ही दिनोंमें आप हिसारमें अच्छे वकीलोंमें गिने जाने लगे। आप बड़े धर्मप्रेमी और पुरुषार्थी मनुष्य हैं। मातृ-भक्ति आपमें कूट कूटकर भरी हुई है। आप सर्वदा अपनी माताकी आज्ञानुसार काम करते हैं। अधिकसे अधिक हानि होनेपर भी माताजीकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करते हैं। आप अपने छोटे भाई श्री० शान्तिप्रसादजीके ऊपर पुत्रके समान स्नेहदृष्टि रखते हैं। उनको भी

आपने पढ़ाकर वकील बना लिया है, और अब दोनों भाई वकालत करते हैं। आपने अपनी माताजीकी आज्ञानुसार करीब १५, १६ हजारकी लागतसे एक सुन्दर और विशाल मकान भी रहनेके लिये बना लिया है। रोहतक निवासी ला० अनूपसिंहजीकी सुपुत्रीके साथ श्री० शान्तिप्रसादजीका भी विवाह होगया है। अब श्रीमतीजीकी आज्ञानुसार उनके दोनों पुत्र तथा उनकी स्त्रियें कार्य संचालन करती हुई आपसमें बड़े प्रेमसे रहती हैं। श्री० महावीरप्रसादजीके मात्र तीन कन्यायें हैं, जिनमें बड़ी कन्या (राजदुलारीदेवी) आठवी कक्षा उत्तीर्ण करनेके अतिरिक्त इस वर्ष पञ्जाबकी हिन्दीरत्न परीक्षामें भी उत्तीर्णता प्राप्त कर चुकी हैं। छोटी कन्या पांचवीं कक्षामें पढ़ रही हैं, तीसरी अभी छोटी हैं।

श्रीमतीजीकी एक विधवा ननद श्रीमती दिलभरीदेवी (पतिदेवकी बहिन) हैं, जो कि आपके पास ही रहती हैं। श्रीमतीजी १०—१२ वर्षसे चातुर्मासके दिनोंमें एकबार ही भोजन करती हैं किन्तु पिछले डेढ़ सालसे तो हमेशा ही एक दफा भोजन करती हैं, इसके अतिरिक्त बेला, तेला आदि प्रकारके व्रत उपवास समय२ पर करती रहती हैं। आपका हरसमय धर्मध्यानमें चित्त रहता है। जैनबद्री मूडबद्रीको छोड़कर आपने अपनी ननदके साथ समस्त जैन तीर्थोंकी यात्रा कीहुई है। श्री सम्मेदशिखरजीकी यात्रा तो आपने दोबार की है। गतवर्ष आपकी आज्ञानुसार ही आपके पुत्र बा० महावीरप्रसादजीने श्री० ब्र० सीतलप्रसादजीका हिसारमें चातुर्मास करवाया था, जिससे सभी भाइयोंको बड़ा धर्मलाभ हुआ।

हिसारमें बा० महावीरप्रसादजी वकील एक उत्साही और सफल कार्यकर्ता हैं। हिसारकी जैन समाजका कोई भी कार्य आपकी सम्मतिके विना नहीं होता। अजैन समाजमें भी आपका काफी सन्मान है। इस वर्ष स्थानीय रासलीला कमेटीने सर्वसम्मतिसे आपको सभापति चुना है। शहरके प्रत्येक कार्यमें आप काफी हिस्सा लेते हैं। जैन समाजके कार्योंमें तो आप खास तौरपर भाग लेते हैं। आपके विचार बड़े उन्नत और धार्मिक हैं। हिसारकी जैन समाजको आपसे बड़ीर आशाएं हैं, और वे कभी अवश्य पूर्ण भी होंगी। आपमें सबसे बड़ी बात यह है कि आपके हृदयमें सांप्रदायिकता नहीं है जिसके फलस्वरूप आप प्रत्येक संप्रदायके कार्योंमें विना किसी भेदभावके सहायता देते और हिस्सा लेते हैं। आप प्रतिवर्ष काफी दान भी देते रहते हैं। जैन अजैन सभी प्रकारके चंदोंमें शक्तिपूर्वक सहायता देते हैं। गतवर्ष आपने श्री०ब्र०सीतलप्रसादजी द्वारा लिखित 'आत्मोन्नति या खुदकी तरक्की' नामका ट्रैक्ट छपाकर वितरण कराया था। और इस वर्ष भी एक ट्रैक्ट छपाकर वितरण किया जाचुका है। आपने करीब ३००)–४००) की लागतसे अपने चाचा ला० सरदारसिंहजीकी स्मृतिमें "अपाहिज आश्रम" सिरसा (हिसार) में एक सुन्दर कमरा भी बनवाया है। आपके ही उद्योगसे गतवर्ष ब्र०जीके चातुर्मासके अवसरपर सिरसा (हिसार) में श्री मंदिरजीकी आवश्यकता देखकर एक दि० जैन मंदिर बनानेके विषयमें विचार हुआ था, उस समय आपकी ही प्रेरणासे ला० केदारनाथजी बजाज हिसारने १.०००) और बा०

फूलचंदजी वकील हिसारने ५००) प्रदान किये थे। श्री मंदिरजीके लिये मौकेकी जमीन मिल जाने पर शीघ्र ही मंदिर निर्माणका कार्य प्रारंभ किया जायगा।

इसमें सन्देह नहीं कि बा० महावीरप्रसादजी वकील आजकलके पाश्चात्य (इंगरेजी) शिक्षा प्राप्त युवकोंमें अपवाद स्वरूप हैं। वस्तुतः आप अपनी योग्य माताके सुयोग पुत्र हैं। आपकी माताजी (श्रीमती ज्वालादेवीजी) बड़ी नेक और समझदार महिला हैं। श्रीमतीजी प्रारम्भसे ही अपने दोनों पुत्रोंको धार्मिक शिक्षाकी ओर प्रेरणा करती रही हैं, इसीका यह फल है। ऐसी माताओंको धन्य है कि जो इस प्रकार अपने पुत्रोंको धार्मिक बना देती हैं। अन्तमें हमारी भावना है कि श्रीमतीजी इसी प्रकार शुभ कार्योंमें प्रवृत्ति रखती रहेंगी और साथ ही अपने पुत्रोंको भी धार्मिक कार्योंकी तरफ प्रेरणा करती हुई अपने जीवनके शेष समयको व्यतीत करेंगी।

निवेदक—

प्रेमकुटीर,
हिसार (पंजाब)
ता: ९-११-३७ ई०

अटेर (ग्वालियर) निवासी
बटेश्वरदयाल बकेवरिया शास्त्री,
(सिद्धान्तभूषण, विद्यालंकार)



श्रीमती ज्वालादेवीजी जैन,

पूज्य माताजी, श्री० बा० महावीरप्रसादजी जैन वकील

हिसार (पंजाब)।

विषय-सूची ।

शुद्धिपत्र ।

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
४	१९	सर्व नय	सर्व रूप
८	१४	उत्पन्न भव	उत्पन्न भव का लव बढ़ता है
१२	१२	सेवास्रव	सर्वास्रव
१४	१७	अज्ञान रोग	अज्ञान होने
१५	१८	प्रीएि	प्रीति
१९	६	गुक्त	युक्त
१९	१४	मुक्त	युक्त
२०	६	मुक्त	युक्त
२०	९	तिच	चित्त
२३	१७	जिससे	जिसे
२५	३	मान	भाव
२६	६	न कि	जिससे
३२	१४	हमने	इसने
३५	७	विप्प	वियय्य
३५	२३	कर	करे
३७	१२	मुक्त	युक्त
३८	१६	निस्सण	निस्सरण
४१	३	निर्मक	निर्बल

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
४१	१३	शुक्त	शुक
४२	१५	दानारने	दानापने
४३	१६	आनन्द आपतन	आनन्त आयतन
४७	१५	संशयवान	संशयवान न
५५	१६	अनादि	आनन्द
५६	१२	लाभ	लोभ
५६	१६	अहिंद (मैद)	अहिन (मैं हूं)
५७	३	सन्तों	सत्वों
५७	८	आर्द....	आर्य आष्टांगिक
५८	८	बालकपना	बाल पकना
६३	६	केल	वेदना
६३	२०	संसार	संस्कार
६८	१८	अन्यथा	तथा
६९	१७	तव	तत्व
७३	५	अज्ञात	अजात
८२	१६	वचन	विषय
८९	२	दृष्ट	दृष्टि
८९	३	आर्त	आत्म
८९	१०	अविज्ञा	अविद्या
९०	२०	आत्म	आस्र
९८	७	काम	क्षाम
११०	१५	मिथ्यादृष्टी	सम्यग्दृष्टी

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१२९	१७	अस्पापाद	अव्यापाद
१३१	१४	वाधित	अवाधित
१३३	९	अर्चाकांक्षी	अर्थाकांक्षी
१४९	१	फक्कचुयम	फक्कचूपम
१५२	१५	तृष्णा	तृण
१६०	७	अलगद्दमय	अल गद्दूपम
१६१	१२	बेड़ी	बेड़े
१६२	७	विस्तरण	निस्तरण
१६४	१६	आपत्ति	अनित्य
१७९	७	केक्कदे	फेंकदे
१७९	१७	कर्म	कूर्म
१८४	२०	असंजष्ट	असंसष्ट
१८७	१४	गुप्ति	प्राप्ति
१९२	१	विवाय	निवाय
२०८	८	वियुक्ति	विमुक्ति
२१२	५	भक्तियों	मक्खियों
२२०	१०	सप्त	सत्त्व
२२०	१४	शीवव्रत	शीलव्रत
२२९	२१	प्रज्ञानी	प्रज्ञाकी
२३५	२०	संशय	संक्षय
२३७	५	छोक	छोड़
२३७	१६	स्त्री	०
२४१	४	आलस्य	आकस्य

जैन बौद्ध तत्वज्ञान

(दूसरा भाग)

(१) बौद्ध मज्झिमनिकाय मूलपर्याय सूत्र।

इस सूत्रमें गौतम बुद्धने भगवान आत्मा या निर्वाणको इस तरह दिखलाया है कि जो कुछ मनके ज्ञानोंके भीतर विकल्प या विचार होते हैं इन सबको दूर करके उस बिंदुपर पहुंचाया है जहां उसी समय ध्याताकी पहुंच होती है जब वह सर्व संकल्प विकल्पोंसे रहित समाधिद्वारा किसी अनुभवगम्य अनिर्वचनीय तत्वमें लय हो जाता है। यह एक ध्यानानुभवका प्रकार है। इस सूत्रका भाव इन वाक्योंसे जानना चाहिये। "जो कोई भिक्षु अर्हत क्षीणास्रव (रागादिसे मुक्त), ब्रह्मचारी, कृतकृत्य, भारमुक्त, सत्य तत्वको प्राप्त, भव-बन्धन मुक्त, सम्यग्ज्ञान द्वारा मुक्त है, वह भी पृथ्वीको पृथ्वीके तौरपर पहचान कर न पृथ्वीको मानता है, न पृथ्वी द्वारा मानता है, न पृथ्वी मेरी है मानता है, न पृथ्वीको अभिनन्दन करता है। इसका कारण यही है कि उसका राग, द्वेष, मोह क्षय होगया है, वह वीतराग होगया है।

इसीतरह वह नीचे लिखे विकल्पोंको भी अपना नहीं मानता

है। वह पानीको, तेजको, वायुको, देवताओंको, अनंत आकाशको, अनंत विज्ञानको, देखे हुएको, सुने हुएको, स्मरणमें प्राप्तको, जाने गएको, एकपनेको, नानापनको, सर्वको तथा निर्वाणको भी अभिनन्दन नहीं करता है।

तथागत बुद्ध भी ऐसा ही ज्ञान रखता है क्योंकि वह जानता है कि तृष्णा दुःखोंका मूल है। तथा जो भव भवमें जन्म लेता है उसको जरा व मरण अवश्यंभावी है। इसलिये तथागत बुद्ध सर्व ही तृष्णाके क्षयसे, विरागसे, निरोधसे, त्यागसे, विसर्जनसे यथार्थ परम ज्ञानके जानकार हैं।

भावार्थ—मूल पर्याय सूत्रका यह भाव है कि एक अनिर्वचनीय अनुभवगम्य तत्व ही सार है। पर पदार्थ सर्व त्यागने योग्य हैं। कर्म, करण अपादान, सम्बन्ध इन चार कारकोंसे पर पदार्थसे यहां तक सम्बन्ध हटाया है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार पदार्थोंसे बने हुए दृश्य जगतको देखे व सुने हुए व स्मरणमें आए हुए व ज्ञानसे तिष्ठे हुए विकल्पोंको सर्व आकाशको सर्व इन्द्रिय व मन द्वारा प्राप्त विज्ञानको अपना नहीं है यह बताकर निर्वाणके साथ भी रागभावके विकल्पको मिटाया है। सर्व प्रकार रागद्वेष मोहको, सर्व प्रकार तृष्णाको हटा देनेपर जो कुछ भी शेष रहता है वही सत्य तत्व है। इसीलिये ऐसे ज्ञाताको क्षीणास्रव, कृतकृत्य सत्यव्रतको प्राप्त व सम्यग्ज्ञान द्वारा मुक्त कहा है। यह दशा वही है जिसको समाधि प्राप्त दशा कहते हैं, जहां ऐसा मगन होता है कि मैं या तू का व क्या मैं हूं क्या नहीं हूं इस बातका कुछ भी चिन्तवन नहीं होता है। चिन्तवन करना मनका स्वभाव है; सूक्ष्म तत्व मनसे बाहर है। जो

सर्व प्रकारके चिन्तवनको छोडता है वही उस स्वानुभवको पहुंचता है। जिससे मूल पदार्थ जो आप है सो अपने हीको प्राप्त होजाता है। यही निर्वाणका मार्ग है व इसीकी पूर्णता निर्वाण है।

बौद्ध ग्रंथोंमें निर्वाणका मार्ग आठ प्रकार बताया है। १-सम्यग्दर्शन, २-सम्यक् संकल्प (ज्ञान), ३-सम्यक् वचन, ४-सम्यक् कर्म, ५-सम्यक् आजीविका, ६-सम्यक् व्यायाम, ७-सम्यक् स्मृति, ८-सम्यक् समाधि।

सम्यक् समाधिमें पहुंचनेसे स्मरणका विकल्प भी समाधिके सागरमें डूब जाता है। यही मार्ग है जिसके सर्व आस्रव या राग द्वेष मोह क्षय होजाते हैं और यह निर्वाणरूप या मुक्त होजाता है। वह निर्वाण कैसा है, उसके लिये इसी मज्झिमनिकायके अरिय परियेसन सूत्र नं० २६ से विदित है कि वह "अजातं, अनुत्तरं, योगक्खेमं, अजरं, अव्याधि, अमतं, अशोकं, असंकिलिट्ठं निब्बाणं अधिगतो, अधिगतोखो मे अयंधम्मो दुद्दसो, दुरनबोधो, संतो, पणीतो, अतक्कावचरो, निपुणो, पंडित वेदनीयो।" निर्वाण अजात है पैदा नहीं हुई है अर्थात् स्वाभाविक है, अनुपम है, परम कल्याणरूप है या ध्यान द्वारा क्षेमरूप है, जरा रहित है, व्याधि रहित है, मरण रहित है, अमर है, शोक व क्लेशोंसे रहित है। मैंने उस धर्मको जान लिया जो धर्म गंभीर है, जिसका देखना जानना कठिन है, जो शांत है, उत्तम है, तर्कसे बाहर है, निपुण है, पण्डितोंके द्वारा अनुभवगम्य है। पाली कोषमें निर्वाणके नीचे लिखे विशेषण हैं-

मुखो (मुख्य), निरोधो (संसारका निरोध), निब्बानं, दीपं, तण्हक्खय (तृष्णाका क्षय), तानं (रक्षक), लेनं (लीनता) अरूपं,

संतं (शांत), असंखतं (असंस्कृत या सहज स्वाभाविक), सिवं (आनंदस्वरूप), अमुत्तं (अमूर्तीक), सुदुद्दसं (कठिनतासे अनुभव योग्य), परायनं (श्रेष्ठ मार्ग), सरण (शरणभूत), निपुणं, अनंतं, अक्खरं (अक्षय), दुःखक्खय (दुःखोंका नाश), अव्याप्ज्झ (सत्य), अनालयं (उच्चगृह), विवह (संसाररहित), खेम, केवल, अपवग्गो (अपवर्ग), विरागो, पणीतं (उत्तम), अच्चुतं पदं (अविनाशी पद), पारं, योगक्खेमं मुत्ति (मुक्ति), विशुद्धि, विमुत्ति, (विमुक्ति) असंखत धातु (असंस्कृत धातु), सुद्धि, निव्वुत्ति (निर्वृत्ति) इन विशेषणोंका विशेष्य क्या है। वही निर्वाण है। वह क्या है, सो भी अनुभवगम्य है।

यह कोई अभावरूप पदार्थ नहीं होसक्ता। जो अभाव रूप कुछ नहीं मानते हैं उनके लिये मुझे यह प्रगट कर देना है कि अभावके या शून्यके ये विशेषण नहीं होसक्ते कि निर्वाण अजात है व अमृत है व अक्षय है व शांत है व अनंत है व पंडितोंके द्वारा अनुभवगम्य है। कोई भी बुद्धिमान बिलकुल अभाव या शून्यकी ऐसी तारीफ नहीं कर सक्ता है। अजात व अमर ये दो शब्द किसी गुप्त तत्वको बताते हैं जो न कभी जन्मता है न मरता है वह सिवाय शुद्ध आत्मतत्वके और कोई नहीं होसक्ता। शांति व आनंद अपनेमें लीन होनेसे ही आता है। अभावरूप निर्वाणके लिये कोई उद्यम नहीं कर सक्ता। इन्द्रियों व मनके द्वारा जाननेयोग्य सर्व नय, वेदना, संज्ञा, संस्कार व विज्ञान ही संसार है, इनसे परे जो कोई है वही निर्वाण है तथा वही शुद्धात्मा है। ऐसा ही जैन सिद्धांत भी मानता है।

The doctrine of the Budha by George Grimm Leipzic Germany 1926.

Page 350-351 Bliss is Nibhan, Nibhan highest bliss (Dhammapada)

आनन्द निर्वाण है, आनन्द निर्वाण है, निर्वाण परम सुख है ऐसा धम्मपदमें यह बात ग्रिम साहबने अपनी पुस्तक बुद्ध शिक्षामें लिखी है।

Some sayings of Budha-by Woodword Ceylon 1925.

Page 2-1-4 Search after the unsurpassed perfect security which is Nibhan. Goal is incomparable security which is Nibban.

अनुपम व पूर्ण शरणकी खोज करो, यही निर्वाण है। अनुपम शरण निर्वाण है, ऐसा उद्देश्य बनाओ। यह बात वुडवर्ड साहबने अपनी बुद्धवचन पुस्तकमें लिखी है।

The life of Budha by Edward J. Thomas 1927.

Page 187-It is unnecessary to discuss the View that Nirvan means the extinction of the individual, no such View has ever been supported from the texts.

भावार्थ-यह तर्क करना व्यर्थ है कि निर्वाणमें व्यक्तिका नाश है, बौद्ध ग्रंथोंमें यह बात सिद्ध नहीं होती है।

मैंने भी जितना बौद्ध साहित्य देखा है उसमें निर्वाणका यही स्वरूप झलकता है जैसा जैन सिद्धांतने माना है कि वह एक वस्तु-स्वरूप अविनाशी आनंदमय परमशांत पदार्थ है।

जैन सिद्धांतमें भी मोक्षमार्ग सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र तीन कहे हैं, जो बौद्धोंके अष्टांग मार्गसे मिल जाते हैं। सम्यक्दर्शनमें सम्यक्दर्शन गर्भित है, सम्यग्ज्ञानमें सम्यक् संकल्प गर्भित है, सम्यक्चारित्रमें शेष छः गर्भित है। जैनसिद्धांतमें निश्चय सम्यक्चारित्र आत्मध्यान व समाधिको कहते हैं। इसके लिये जो

कारण है उसको व्यवहार चारित्र कहते हैं। जैसे मन, वचन, कायकी शुद्धि, शुद्ध भोजन, तपका प्रयत्न, तथा तत्वका स्मरण। जिस तरह इस मूल पर्याय सूत्रमें समाधिके लाभके लिये सर्व अपनेसे परसे मोह छुड़ाया है उसी तरह जैन सिद्धांतमें वर्णन है।

जैन सिद्धांतसें समानता।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें कहते हैं—

अहमेदं एदमहं, अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं, सचित्ताचित्तमिस्सं वा॥ २५॥
आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि।
होहिदि पुणोवि मज्झं, अहमेदं चावि होस्सामि॥ २६॥
एवंतु असंभूदं आदवियप्पं करेदि सम्मूढो।
भूदत्थं जाणंतो, ण करेदि दु तं असम्मूढो॥ २७॥

भावार्थ—आपसे जुदे जितने भी पर द्रव्य हैं चाहे वे सचित्त स्त्री पुत्र मित्र आदि हों या अचित्त सोना चांदी आदि हों या मिश्र नगर देशादि हों, उनके सम्बन्धमें यह विकल्प करना कि मैं यह हूं या यह मुझ रूप है, मैं इसका हूं या यह मेरा है, यह पहले मेरा था या मैं पूर्वकालमें इस रूप था या मेरा आगामी होजायगा या मैं इस रूप होजाऊंगा, अज्ञानी ऐसे मिथ्या विकल्प किया करता है, ज्ञानी यथार्थ तत्वको जानता हुआ इन झूठे विकल्पोंको नहीं करता है। यहां सचित्त, अचित्त, मिश्रमें सर्व अपनेसे जुदे पदार्थ आगए हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति व पशुजाति, मानवजाति देवजाति व प्राणरहित सर्व पुद्गल परमाणु आदि आकाश, काल, धर्म अधर्म द्रव्य व संसारी जीवोंके सर्व प्रकारके शुभ व अशुभ भाव व

दशाएं-केवल आप अकेला बच गया। वही मैं हूं वही मैं था वही मैं रहूंगा। मेरे सिवाय अन्य मैं नहीं हूं, न कभी था न कभी हूंगा। जैसे मूल पर्याय सूत्रमें विवेक या भेदविज्ञानको बताया है वैसा ही यहां बताया है। समयसारमें और भी स्पष्ट कर दिया है-

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिव अण्णं परमाणुमित्तं पि ॥ ४३ ॥

भावार्थ-मैं एक अकेला हूं, निश्चयसे शुद्ध हूं, दर्शन व ज्ञान स्वरूप हूं, सदा ही अमूर्तीक हूं, अन्य परमाणु मात्र भी मेरा कोई नहीं है। श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं-

स्वबुद्धया यावद्गृह्णीयात्कायवाक्चेतसां त्रयम्।
संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः ॥ ६२ ॥

भावार्थ-जबतक मन, वचन व काय इन तीनोंमेंसे किसीको भी आत्मबुद्धिसे मानता रहेगा वहांतक संसार है, भेदज्ञान होनेपर मुक्ति होजायगी। यहां मन वचन कायमें सर्व जगतका प्रपञ्च आगया। क्योंकि विचार करनेवाला मन है। वचनोंसे कहा जाता है, शरीरसे काम किया जाता है। मोक्षका उपाय भेद विज्ञान ही है। ऐसा अमृतचंद्र आचार्य समयसारकलशमें कहते हैं-

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥ ६-६ ॥

भावार्थ-भेदविज्ञानकी भावना लगातार उस समय तक करते रहो जबतक ज्ञान परसे छूटकर ज्ञानमें प्रतिष्ठाको न पावे अर्थात् जबतक शुद्ध पूर्ण ज्ञान न हो।

इस मूल पर्याय सूत्रमें इसी भेदविज्ञानको बताया है।

(२) मज्झिमनिकाय सव्वासवसूत्र या सर्वास्रवसूत्र ।

इस सूत्रमें सारे आस्रवोंके संवरका उपदेश गौतमबुद्धने किया है। आस्रव और संवर शब्द जैन सिद्धांतमें शब्दोंके यथार्थ अर्थमें दिखलाए गए हैं। जैनसिद्धांतमें परमाणुओंके स्कंध बनते रहते हैं उनमेंसे सूक्ष्म स्कंध कार्माणवर्गणाएँ हैं जो सर्वत्र लोकमें व्याप्त हैं। मन, वचन, कायकी क्रिया होनेसे ये अपने पास खिंच आती हैं और पाप या पुण्यरूपमें बंध जाती हैं। जिन भावोंसे ये आती हैं उनको भावास्रव कहते हैं व उनके आनेको द्रव्यास्रव कहते हैं। उनके विरोधी रोकनेवाले भावोंको भावसंवर कहते हैं और कर्मवर्गणाओंके रुक जानेको द्रव्यसंवर कहते हैं। इस बौद्ध सूत्रमें भावास्रवोंका कथन इस तरहपर किया है—भिक्षुओ ! जिन धर्मोंके मनमें करनेसे उसके भीतर अनुत्पन्न काम आस्रव (कामनारूपी मल) उत्पन्न होता है और उत्पन्न काम आस्रव बढ़ता है, उत्पन्न भव आस्रव (जन्मनेकी इच्छारूपी मल) उत्पन्न होता है और उत्पन्न भव आस्रव अनुत्पन्न अविद्या आस्रव (अज्ञानरूपी मल) उत्पन्न होता है और उत्पन्न अविद्या आस्रव बढ़ता है इन धर्मोंको नहीं करना योग्य है।

नोट—यहां काम भाव जन्म भाव व अज्ञान भावको मूल भावास्रव बताकर समाधि भावमें ही पहुंचाया है, जहां न काम भाव है न जन्मनेकी इच्छा है न आत्मज्ञानको छोड़कर कोई आशाक है। निर्विकल्प समाधिके भीतर प्रवेश कराया है। इसी लिये इसी सूत्रमें कहा है कि जो इस समाधिके बाहर होता है वह छः दृष्टियोंके भीतर फंस जाता है।

"(१) मेरा आत्मा है, (२) मेरे भीतर आत्मा नहीं है, (३) आत्माको ही आत्मा समझता हूं, (४) आत्माको ही अनात्मा समझता हूं, (५) अनात्माको ही आत्मा समझता हूं, (६) जो यह मेरा आत्मा अनुभव कर्ता (वेदक) तथा अनुभव करने योग्य (वेद्य) और तहां तहां (अपने) भले बुरे कर्मोंके विपाकको अनुभव करता है वह यह मेरा आत्मा नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अपरिवर्तनशील (अविपरिणाम धर्मा) है, अनन्त वर्षों तक वैसा ही रहेगा। भिक्षुओ! इसे कहते हैं दृष्टिगत (मतवाद), दृष्टिगहन (दृष्टिका घना जंगल), दृष्टिकी मरुभूमि (दृष्टिका नाश), दृष्टिका कांटा (दृष्टि विशूक), दृष्टिका फंदा (दृष्टि संयोजन)। भिक्षुओ! दृष्टिके फंदेमें फंसा अज्ञ अनाड़ी पुरुष जन्म जरा मरण शोक, रोदन क्रंदन, दुःख दुर्मनस्कता और हैरानियोंसे नहीं छूटता, दुःखसे परिमुक्त नहीं होता।"

नोट—ऊपरकी छः दृष्टियोंका विचार जहांतक रहेगा वहांतक स्वानुभव नहीं होगा। मैं हूं या मैं नहीं हूं, क्या हूं क्या नहीं हूं, कैसा था कैसा रहूंगा, इत्यादि सर्व वह विकल्पजाल है जिसके भीतर फंसनेसे रागद्वेष मोह नहीं दूर होता। वीतरागभाव नहीं पैदा होता है। इस कथनको पढ़कर कोई कोई ऐसा मतलब लगाते हैं कि गौतमबुद्ध किसी शुद्धबुद्धपूर्ण एक आत्माको जो निर्वाण स्वरूप है उसको भी नहीं मानते थे। जो ऐसा मानेगा उनके मतमें निर्वाण अभाव रूप होजायगा। यदि वे आत्माका सर्वथा अभाव मानते तो मेरे भीतर आत्मा नहीं है, इस दूसरी दृष्टिको नहीं कहते। वास्तवमें यहां सर्व विचारोंके अभावकी तरफ संकेत है।

यही बात जैनसिद्धांतमें समाधिशतकमें इस प्रकार बताई है—

येनात्मनाऽनुभूयेऽहमात्मनैवात्मनात्मनि ।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः ॥ २३ ॥
यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः ।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥ २४ ॥

भावार्थ—इन दो श्लोकोंमें समाधि प्राप्त की दशाको बताया है। समाधि प्राप्तके भीतर कुछ भी विचार नहीं होता है कि मैं क्या हूं क्या नहीं हूं। जिस स्वरूपसे मैं अपने ही भीतर अपने ही द्वारा अपने रूपसे ही अनुभव करता हूं, वही मैं हूं। न मैं नपुंसक हूं न स्त्री हूं, न पुरुष हूं, न मैं एक हूं न दो हूं न बहुत हूं। जिस किसी वस्तुके अलाभमें मैं सोया हुआ था व जिसके लाभमें मैं जाग उठा वह मैं एक इन्द्रियोंसे अतीत हूं, जिसका कोई नाम नहीं है जो मात्र आपसे ही अनुभव करनेयोग्य है। समयसार कलशमें यही बात कही है।

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं ।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबंति ॥२४॥

भावार्थ—जो कोई सर्व अपेक्षाओंके विचाररूपी पक्षपातको कि मैं ऐसा हूं व ऐसा नहीं हूं छोड़कर अपने आपमें गुप्त होकर हमेशा रहते हैं अर्थात् स्वानुभवमें या समाधिमें मगन होजाते हैं वे ही सर्व विकल्पोंके जालसे छूटकर शांत चित्त होते हुए साक्षात् अमृतका पान करते हैं। यही संवरभाव है। न यहां कोई कामना है, न कोई जन्म लेनेकी इच्छा है, न कोई अज्ञान है, शुद्ध आत्मज्ञान है। यही मोक्षमार्ग है।

इसी सूत्रमें बुद्ध वचन है "जो यह ठीकसे मनमें करता है कि यह दुःख है, यह दुःख समुदय (दुःखका कारण) है, यह दुःखका

निरोध है, यह दुःख निरोधकी ओर लेजानेवाला मार्ग (प्रतिपद) है उसके तीन संयोजन (बन्धन) छूट जाते हैं। (१) सक्काय दिट्ठी, (२) विचिकिच्छा, (३) सीलब्बत परामोसो अर्थात् सक्काय दृष्टि (निर्वाणरूपके सिवाय किसी अन्यको आपरूप मानना, विचिकित्सा—(आपमें संशय), शीलव्रत परामर्श (शील और व्रतोंको ही पालनेसे मैं मुक्त होजाऊंगा यह अभिमान)।"

इसका भाव यही है कि जहांतक निर्वाणको नहीं समझा कि वह ही दुःखका नाशक है वहांतक संसारमें दुःख ही दुःख है। अविद्या और तृष्णा दुःखके कारण हैं, निर्वाणका प्रेम होते ही संसारकी सर्व तृष्णा मिट जाती है। निर्वाणका उपाय सम्यगसमाधि है। वह तब ही होगी जब निर्वाणके सिवाय किसी आपको आपरूप न माना जावे व निर्वाणमें संशय न हो व बाहरी चारित्र व्रत शील उपवास आदि अहंकार छोड़ा जावे। परमार्थ मार्ग सम्यगसमाधि भाव है। इसी स्थल पर इस सूत्रमें लेख है—भिक्षुओ! यह दर्शनसे प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं। यहां दर्शनसे मतलब सम्यग्दर्शनसे है। सम्यग्दर्शनसे मिथ्यादर्शनरूप आस्रवभाव रुक जाता है, यही बात जैन सिद्धांतमें कही है—

श्री उमास्वामी महाराज तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं—

"मिथ्यादर्शनविरतिप्रमादकषाययोगाबन्धहेतवः" ॥१–८॥ अ०

"शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसा संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः" ॥ २३–७ अ० ॥

भावार्थ—कर्मोंके आस्रव तथा बंधके कारण भाव पांच हैं–(१) मिथ्यादर्शन, (२) हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रह पांच अवि-

-रति, (३) प्रमाद, (४) क्रोधादि कषाय, (५) मन वचन कायकी क्रिया। जिसको आत्मतत्वका सच्चा श्रद्धान होगया है कि वह निर्वाणरूप है, सर्व सांसारिक प्रपंचोंसे शून्य है, रागादिरहित है, परमशांत है, परमानंदरूप है, अनुभवगम्य है उसीके ही सम्यग्दर्शन गुण प्रगट होता है तब उसके भीतर पांच दोष नहीं रहने चाहिये। (१) शंका—तत्वमें संदेह। (२) कांक्षा—किसी भी विषयभोगकी इच्छा नहीं, अविनाशी निर्वाणको ही उपादेय या ग्रहणयोग्य न मानके सांसारिक सुखकी वांछाका होना, (३) विचिकित्सा—ग्लानि—सर्व वस्तुओंको यथार्थ रूपसे समझकर किसीसे द्वेषभाव रखना (४) जो सम्यग्दर्शनसे विरुद्ध मिथ्यादर्शनको रखता है उसकी मनमें प्रशंसा करना (५) उसकी वचनसे स्तुति करना।

इसी सेवासवसूत्रमें है कि भिक्षुओ! कौनसे संवरद्वारा महाराग आस्रव है। भिक्षुओ—यहां कोई भिक्षु ठीकसे जानकर चक्षु इंद्रियमें संयम करके विहरता है तब चक्षु इंद्रियसे असंयम करके विहरनेपर जो पीड़ा व दाह उत्पन्न करनेवाले आस्रव हो तो वे चक्षु इंद्रियसे संवरयुक्त होनेपर विहार करते नहीं होते। इसी तरह श्रोत्र इंद्रिय, घ्राण इंद्रिय, जिह्वा इंद्रिय, काय (स्पर्शन) इंद्रिय, मन इंद्रियमें संयम करके विहरनेसे पीडा व दाहकारक आस्रव उत्पन्न नहीं होते।"

भावार्थ—यहां यह बताया है कि पांच इंद्रिय तथा मनके विषयोंमें रागभाव करनेसे जो आस्रव भाव होते हैं वे आस्रव पांच इंद्रिय और मनके रोक लेनेपर नहीं होते हैं।

जैन सिद्धांतमें भी इंद्रियोंके व मनके विषयोंमें रमनेसे आस्रव

होना बताया है व उनके रोकनेसे संवर होता है ऐसा दिखाया है। इन आस्रवोंके रोकनेपर ही समाधि होती है।

श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं—

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना ।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः ॥ ३० ॥

भावार्थ—जब सर्व इन्द्रियोंको संयममें लाकर भीतर स्थिर होकर अन्तरात्मा या सम्यग्दृष्टि जिस क्षण जो कुछभी अनुभव करता है वही परमात्माका या शुद्धात्माका स्वरूप है।

आगे इसी सर्वास्रवसूत्रमें कहा है—भिक्षुओ! "यहां भिक्षु ठीकसे जानकर सर्दी गर्मी, भूख प्यास, मक्खी मच्छर, हवा धूप, सरी, सर्पादिके आघातको सहनेमें समर्थ होता है, वाणीसे निकले दुर्वचन तथा शरीरमें उत्पन्न ऐसी दुःखमय, तीव्र, तीक्ष्ण, कटुक, अवांछित, अरुचिकर, प्राणहर पीड़ाओंको स्वागत करनेवाले स्वभावका होता है। जिनके अधिवासना न करनेसे (न सहनेसे) दाह और पीड़ा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं और अधिवासना करनेसे वे उत्पन्न नहीं होते। यह अधिवासना द्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।"

यहां पर परीषहोंके जीतनेको संवर भाव कहा गया है। यही बात जैनसिद्धांतमें कही है। वहां संवरके लिये श्री उमास्वामी महाराजने तत्वार्थसूत्रमें कहा है—

"आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः" ॥ २—अ० ९ ॥

भावार्थ—आस्रवका रोकना संवर है। वह संवर गुप्ति (मन, वचन, कायको वश रखना), समिति (भलेप्रकार वर्तना, देखकर

चलना आदि), धर्म (क्रोधादिको जीतकर उत्तम क्षमा आदि), अनुप्रेक्षा (संसार अनित्य है इत्यादि भावना), परीषह जय (कष्टोंको जीतना) तथा चारित्र (योग्य व्यहार व निश्चय चारित्र समाधिभाव) से होता है ।

" क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्या-क्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानि ॥ ९-अ० ९ ॥

भावार्थ-नीचे लिखी बाइस बातोंको शांतिसे सहना चाहिये-(१) भूख, (२) प्यास, (३) शर्दी, (४) गर्मी, (५) डांस मच्छर, (६) नग्नता, (७) अरति (ठीक मनोज्ञ वस्तु न होनेपर दुःख) (८) स्त्री (स्त्री द्वारा मनको डिगानेकी क्रिया), (९) चलनेका कष्ट, (१०) बैठनेका कष्ट, (११) सोनेका कष्ट, (१२) आक्रोश-गाली दुर्वचन, (१३ वध या मारे पीटे जानेका कष्ट, (१४) याचना (मांगना नहीं), (१५) अलाभ-भिक्षा न मिलनेपर खेद, (१६) रोग-पीडा, (१७) तृण स्पर्श-कांटेदार झाडीका स्पर्श (१८) मल-शरीरके मैले होनेपर ग्लानि (१९) आदर निरादर (२०) प्रज्ञा-बहु ज्ञान होनेपर घमंड (२१) अज्ञान-रोगपर खेद (२१) अदर्सन-ऋद्धि सिद्ध न होनेपर श्रद्धानका बिगाडना " जैन साधुगण इन बाईस बातोंको जीतते हैं तब न जीतनेसे जो आस्रव होता सो नहीं होता है ।

इसी सर्वास्रव सूत्रमें है कि भिक्षुओ ! कौनसे विनोदन (हटाने) द्वारा प्रहातव्य आस्रव है । भिक्षुओं ! यहां (एक) भिक्षु ठीकसे जानकार उत्पन्न हुए । काम वितर्क (काम वासना सम्बन्धी संकल्प विकल्प) का स्वागत नहीं करता, (उसे) छोडता है, हटाता है, अलग

करता है, मिटाता है, उत्पन्न हुए व्यापाद वितर्क (द्रोहके ख्याल) का, उत्पन्न हुए, विहिंसा वितर्क (अति हिंसाके ख्याल) का; पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाले, पापी विचारों (धर्मो)का स्वागत नहीं करता है। भिक्षुओ! जिसके न हटनेसे दाह और पीड़ा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं, और विनोद न करनेसे उत्पन्न नहीं होते। जैन सिद्धांतके कहे हुए आस्रव भावोंमें कषाय भी है जैसा ऊपर लिखा है कि मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच आस्रवभाव हैं। क्रोध, मान, माया, लोभसे विचारोंको रोकनेसे कामभाव, द्वेषभाव, हिंसकभाव व अन्य पापमय भाव रुक जाते हैं। इसी सर्वास्रव सूत्रमें है कि भिक्षुओ! कौनसे भावना द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं? भिक्षुओं! यहां (एक) भिक्षु ठीकसे जानकर विवेकयुक्त, विरागयुक्त, निरोधयुक्त मुक्ति परिणामवाले स्मृति संबोध्यंगकी भावना करता है। ठीकसे जानकर स्मृति, धर्मविचय, वीर्यविचय, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि, उपेक्षा संबोध्यंगकी भावना करता है।

नोट—संबोधि परम ज्ञानको कहते हैं, उसके लिये जो अंग उपयोगी हो उनको संबोध्यंग कहते हैं, ये सात हैं—स्मृति (सत्यका स्मरण), धर्मविचय (धर्मका विचार), वीर्यविचय (अपनी शक्तिका उपयोग करनेका विचार), प्रीति (संतोष), प्रश्रब्धि (शांति), समाधि (चित्तकी एकाग्रता), उपेक्षा (वैराग्य)।

जैन सिद्धांतमें संवरके कारणोंमें अनुप्रेक्षाको ऊपर कहा गया है। बारबार विचारनेको या भावना करनेको अनुप्रेक्षा कहते हैं। ये भावनाएं बारह हैं उनमें सर्वास्रव सूत्रमें कही हुई भावनाएं

गर्भित होजाती हैं। १–अनित्य (संसारकी अवस्थाएं नाशवन्त हैं), २–अशरण (मरणसे कोई रक्षक नहीं है, ३–संसार (संसार दुःखमय है), ४–एकत्व (अकेले ही सुख दुःख भोगना पडता है आप अकेला है सर्व कर्म आदि भिन्न हैं), ५–अन्यत्व (शरीरादि सब आत्मासे भिन्न हैं) ६–अशुचित्व (मानवका यह शरीर महान अपवित्र है), ७–आस्रव (कर्मोंके आनेके क्या २ भाव हैं), ८–संवर (कर्मोंके रोकनेके क्या क्या भाव हैं) ९–निर्जरा (कर्मोंके क्षय करनेके क्या२ उपाय हैं), १०–लोक (जगत जीव अजीव द्रव्योंका समूह अकृत्रिम व अनादि अनंत है) ११–बोधिदुर्लभ .(रत्नत्रय धर्मका मिलना दुर्लभ है), १२–धर्म (आत्माका स्वभाव धर्म है) । इन १२ भावनाओंके चिन्तवनसे वैराग्य छाजाता है–परिणाम शांत होजाते हैं ।

नोट-पाठकगण देखेंगे कि आस्रवभाव ही संसार भ्रमणके कारण हैं व इनके रोकनेहीसे संसारका अंत है। यह कथन जैन सिद्धांत और बौद्ध सिद्धांतका एकसा ही है। इस सर्वास्रव सूत्रके अनुसार जैन सिद्धांतमें भावास्रवोंको बताकर उनसे कर्म पुद्गल खिंचकर आता है, वे पुद्गल पाप या पुण्य रूपसे जीवके साथ चले आए हुए कार्माण शरीर या सूक्ष्म शरीरके साथ बंध जाते हैं। और अपने विपाक पर फल देकर या विना फल दिये झड जाते हैं। यह कर्म सिद्धांतकी बात यहां इस सूत्रमें नहीं है।

जैन सिद्धांतमें आस्रवभाव व संवरभाव ऊपर कहे गए हैं उनका स्पष्ट वर्णन यह है–

आस्रवभाव ।	संवरभाव ।
(१) मिथ्यादर्शन	सम्यग्दर्शन
(२) अविरति हिंसादि	५ व्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग, या १२ अविरतिभाव, पांच इंद्रिय व मनको न रोकना तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रसकायका विराधन
(३) प्रमाद (असावधानी)	अप्रमाद
(४) कषाय-क्रोध, मान, माया, लोभ ।	वीतरागभाव
(५) योग—मन, वचन, कायकी क्रिया ।	योगोंकी गुप्ति

विशेष रूपसे संवरके भाव कहे हैं—

(१) गुप्ति—मन, वचन, कायको रोकना ।

(२) समिति पांच—(१) देखकर चलना । (२) शुद्ध वाणी कहना । (३) शुद्ध भोजन करना । (४) देखकर रखना उठाना । (५) देखकर मलमुत्र करना ।

(३) धर्म दश—(१) उत्तम क्षमा, (२) उत्तम मार्दव (कोमलता), (३) उत्तम आर्जव (सरलता), (४) उत्तम सत्य, (५) उत्तम शौच (पवित्रता) (६) उत्तम संयम, (७) उत्तम तप, (८) उत्तम त्याग

या दान, (९) उत्तम आकिंचन (ममत्व त्याग), (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य।

(४) अनुप्रेक्षा–भावना बारह–नाम ऊपर कहे हैं।

(५) परीषह जय–बाइस परीषह जीतना–नाम ऊपर कहे हैं।

(६) चारित्र–पांच (१) सामायिक या समाधि भाव–शांत भाव, (२) छेदोपस्थापन, समाधिसे गिरकर फिर स्थापन, (३) परिहार विशुद्धि–विशेष हिंसाका त्याग, (४) सूक्ष्म सांपराय–अत्यल्प लोभ शेष, (५) यथाख्यात–नमूनेदार वीतराग भाव। इन संवरके भावोंको जो साधु पूर्ण पालता है उसके कर्म पुद्गलका आना बिलकुल बंद होजाता है। जितना कम पालता है उतना कर्मोंका आस्रव होता है। अभिप्राय यह है कि मुमुक्षुको आस्रवकारक भावोंसे बचकर संवर भावमें वर्तना योग्य है।

---

(३) मज्झिमनिकाय–भय भैरव सूत्र चौथा।

इस सूत्रमें निर्भय भावकी महिमा बताई है कि जो साधु मन वचन कायसे शुद्ध होते हैं व परम निष्कम्प समाधि भावके अभ्यासी होते हैं वे वनमें रहते हुए किसी बातका भय नहीं प्राप्त करते।

एक ब्राह्मणसे गौतमबुद्ध वार्तालाप कररहे हैं–

ब्राह्मण कहता है–"हे गौतम! कठिन है अरण्यवन खंड और सूनी कुटियां (शय्यासन), दुष्कर है एकाग्र रमण, समाधि न प्राप्त होनेपर अभिरमण न करनेवाले भिक्षुके मनको अकेला या यह वन मानो हर लेता है।"

गौतम–ऐसा ही है ब्राह्मण! सम्बोधि (परम ज्ञान) प्राप्त होनेसे पहले बुद्ध न होनेके वक्त, जब मैं बोधिसत्व (ज्ञानका उम्मैद-

वार) हो था तो मुझे भी ऐसा होता था कि कठिन है अरण्यवास। तब मेरे मनमें ऐसा हुआ—जो कोई अशुद्ध कायिक कर्मसे युक्त श्रमण या ब्राह्मण अरण्यका सेवन करते हैं, अशुद्ध कायिक कर्मके दोषके कारण वह आप श्रमण–ब्राह्मण बुरे भय भैरव (भय और भीषणता) का आह्वान करते हैं। (लेकिन) मैं तो अशुद्ध कायिक कर्मसे युक्त हो अरण्य सेवन नहीं कर रहा हूं। मेरे कायिक कर्म परिशुद्ध हैं। जो परिशुद्ध कायिक कर्मवाले आर्य अरण्य सेवन करते हैं उनमेंसे मैं एक हूं। ब्राह्मण अपने भीतर इस परिशुद्ध कायिक कर्मके भावको देखकर, मुझे अरण्यमें विहार करनेका और भी अधिक उत्साह हुआ। इसी तरह जो कोई अशुद्ध वाचिक कर्मवाले, अशुद्ध मानसिक कर्मवाले, अशुद्ध आजीविकावाले श्रमण ब्राह्मण अरण्य सेवन करते हैं वे भयभैरवको बुलाते हैं। मैं अशुद्ध वाचिक, व मानसिक कर्म व आजीविकासे युक्त हो अरण्य सेवन नहीं कर रहा हूं, किन्तु शुद्ध वाचिक, मानसिक कर्म, व आजीविकाके भावको अपने भीतर देखकर मुझे अरण्यमें विहार करनेका और भी अधिक उत्साह हुआ। हे ब्राह्मण! तब मेरे मनमें ऐसा हुआ। जो कोई श्रमण ब्राह्मण लोभी काम (वासनाओं) में तीव्र रागवाले वनका सेवन करते हैं या हिंसा-युक्त–व्यापन्न चित्तवाले और मनमें दुष्ट संकल्पवाले या स्त्यान (शारीरिक आलस्य) मृद्धि (मानसिक आलस्य) से प्रेरित हो, या उद्धत और अशांत चित्तवाले हो, या लोभी, कांक्षावाले और संशयालु हो, या अपना उत्कर्ष (बड़प्पन चाहने) वाले तथा दूसरेको निन्दनेवाले हो, या जड़ और भीरु प्रकृतिवाले हो,

स्था लाभ, सत्कार प्रशंसाकी चाहना करते हों, या आलसी उद्योगहीन हो, या नष्ट स्मृति हो और सूझसे वंचित हो, या व्यग्र और विभ्रांत चित्त हो, या पुल्पुञ्ज (अज्ञानी) भेड़-गूंगे जैसे हो, वनका सेवन करते हैं वे इन दोषोंके कारण अकुशल भय भैरवको बुलाते हैं । मैं इन दोषोंसे युक्त हो वनका सेवन नहीं कर रहा हूं । जो कोई इन दोषोंसे मुक्त न होकर वनका सेवन करते हैं उनमेंसे मैं एक हूं । इस तरह हे ब्राह्मण ! अपने भीतर निर्लोभताको, मैत्रीयुक्त चित्तको, शारीरिक व मानसिक आलस्यके अभावको, उपशांत चित्तपनेको, निःशंक भावको, अपना उत्कर्ष व परनिन्दा न चाहनेवाले भावको, निर्भयताको, अल्प इच्छाको, वीर्यपनेको, स्मृति सयुक्तताको, समाधि सम्पदाको, तथा प्रज्ञासम्पदाको देखता हुआ मुझे अरण्यमें विहार करनेका और भी अधिक उत्साह उत्पन्न हुआ ।

तब मेरे मनमें ऐसा हुआ जो यह सम्मानित व अभिलक्षित (प्रसिद्ध) रातियां हैं जैसे पक्षकी चतुर्दशी, पूर्णमासी और अष्टमीकी रातें हैं वैसी रातोंमें जो यह भयप्रद रोमांचकारक स्थान हैं जैसे आरामचैत्य, वनचैत्य, वृक्षचैत्य वैसे शयनासनोंमें विहार करनेसे शायद तब भयभैरव देखूँ । तब मैं वैसे शयनासनोंमें विहार करने लगा । तब ब्राह्मण ! वैसे विहरते समय मेरे पास मृग आता था या मोर काठ गिरा देता या हवा पत्तोंको फरफराती तो मेरे मनमें जरूर होता कि यह वही भय भैरव आरहा है । तब ब्राह्मण मेरे मनमें होता कि क्यों मैं दूसरेसे भयकी आकांक्षामें विहररहा हूं ? क्यों न मैं जिस जिस अवस्थामें रहता। जैसे मेरे पास वह भयभैरव आता है

जैसी जैसी अवस्थामें रहते उस भयभैरवको हटाऊँ। जब ब्राह्मण! टहलते हुए मेरे पास भयभैरव आता तब मैं न खड़ा होता, न बैठता, न लेटता। टहलते हुए ही उस भयभैरवको हटाता। इसी तरह खडे होते, बैठे हुए व लेटे हुए जब कोई भय भैरव आता मैं वैसा ही रहता, निर्भय रहता।

ब्राह्मण! मैंने अपना वीर्य या उद्योग आरंभ किया था। मेरी मूढ़ता रहित स्मृति जागृत थी, मेरी काय प्रसन्न व आकुलता रहित थी, मेरा चित्त समाधि सहित एकाग्र था। (१) सो मैं कामोंसे रहित, बुरी बातोंसे रहित विवेकसे उत्पन्न सवितर्क और सविचार प्रीति और सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। (२) फिर वितर्क और विचारके शांत होनेपर भीतरी शांत व चित्तको एकाग्रता वाले वितर्क रहित विचार रहित प्रीति-सुख वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। (३) फिर प्रीतिसे विरक्त हो उपेक्षक बन स्मृति और अनुभवसे युक्त हो शरीरसे सुख अनुभव करते जिसे आर्य उपेक्षक, स्मृतिमान् सुख विहारी कहते हैं उस तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। (४) फिर सुख दुखके परित्यागसे चित्तोल्लास व चित्त संतापके पहले ही अस्त होजानेसे, सुख दुःख रहित जिसमें उपेक्षासे स्मृतिकी शुद्धि होजाती है, इस चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा।

सो इसप्रकार चित्तके एकाग्र, परिशुद्ध, अंगण (मल) रहित, मृदुभूत, स्थिर, और समाधियुक्त होजानेपर पूर्व जन्मोंकी स्मृतिके लिये मैंने चित्तको झुकाया। इसप्रकार आकार और उद्देश्य सहित अनेक प्रकारके पूर्व निवासोंको स्मरण करने लगा। इसप्रकार प्रमाद

रहित व आत्मसंयम युक्त विहरते हुए, रातके पहले पहरमें मुझे यह पहली विद्या प्राप्त हुई. अविद्या नष्ट हुई, तम नष्ट हुआ. आलोक उत्पन्न हुआ । सो इसप्रकार चित्तको एकाग्र व परिशुद्ध होनेपर प्राणियोंके मरण और जन्मके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाया । सो मैं अमानुष, विशुद्ध, दिव्यचक्षुसे अच्छे बुरे, सुवर्ण दुर्वर्ण. सुगति-वाले, दुर्गतिवाले प्राणियोंको मरते उत्पन्न होते देखने लगा । कर्मानुसार (यथा कम्मवगे) गतिको प्राप्त होते प्राणियोंको पहचानने लगा ।

जो प्राणधारी कायिक दुराचारसे युक्त, वाचिक दुराचारसे युक्त, मानसिक दुराचारसे युक्त, आर्योंके निन्दक मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि कर्मको रखनेवाले (मिथ्यादृष्टि कम्म समादाना) थे वे काय छोडनेपर मरनेके बाद दुर्गति पतन, नर्कमें प्राप्त हुए हैं । जो प्राणधारी कायिक, वाचिक, मानसिक सदाचारसे युक्त आर्योंके अनिन्दक सम्यक्दृष्टि (सच्चे सिद्धांतवाले) सम्यक्दृष्टि सम्बन्धी कर्मको करनेवाले (सम्मदिट्ठी कम्म समादाना) वे काय छोडनेपर मरनेके बाद सुगति, स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं । इसप्रकार अमानुष विशुद्ध दिव्यचक्षुसे प्राणियोंको पहचानने लगा । रातके मध्यम पहरमें यह मुझे दूसरी विद्या प्राप्त हुई

फिर इस प्रकार समाधियुक्त व शुद्ध चित्त होते हुए आस्रवोंके क्षयके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाया । यह दुःख है, यह दुःखका कारण है, यह दुःख निरोध है, यह दुःख निरोधका साधन (दुःनिरोध, गामिनीप्रतिपद्,) इसे यथार्थसे जान लिया । यह आस्रव है, यह आस्रवका कारण है, यह आस्रव निरोध है, यह आस्रव निरोधका साधन् है यथार्थ जान लिया । सो इसप्रकार

देखते जानते मेरा चित्त काम, भव, व अविद्यादि आस्रवोंसे मुक्त होगया। विमुक्त होजानेपर 'छूट गया' ऐसा ज्ञान हुआ। "जन्म खतम होगया, ब्रह्मचर्य पूरा होगया, करना था सो करलिया, अब यहां करनेके लिये कुछ शेष नहीं है" इस तरह रात्रिके अंतिम पहरमें यह मुझे तिसरी विद्या प्राप्त हुई। अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई, तम विघटा, आलोक उत्पन्न हुआ। जैसा उनको होता हो जो अप्रमत्त उद्योगशील तत्वज्ञानी हैं।

नोट—ऊपरका कथन पढकर कौन यह कह सक्ता है कि गौतम बुद्धका साधन उस निर्वाणके लिये था जो अभाव (annihilation) रूप है, यह बात बिलकुल समझमें नहीं आती। निर्वाण सद्भाव रूप है, वह कोई अनिर्वचनीय अजर अमर शांत व आनन्दमय पदार्थ है ऐसा ही प्रतीतिमें आता है। वास्तवमें उसे ही जैन लोग सिद्ध पद शुद्ध पद, परमात्म पद, निज पद, मुक्त पद कहते हैं। इसी सूत्रमें कहा है कि परमज्ञान प्राप्त होनेके पहले मैं ऐसा था। वह परमज्ञान वह विज्ञान नहीं होसक्ता जो पांच इंद्रि व मनकेद्वारा होता है, जो रूपके निमित्तसे होता है, जो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारसे विज्ञान होता है। इस पंचस्कंधीय वस्तुसे भिन्न ही कोई परम ज्ञान है जिससे जैन लोग शुद्ध ज्ञान या केवलज्ञान कह सक्ते हैं। इस सूत्रमें यह बताया है कि जिन साधुओंका या संतोंका अशुद्ध मन, वचन, कायका आचरण है व जिनका भोजन अशुद्ध है उनको वनमें भय लगता है। परन्तु जिनका मन वचन कायका चारित्र व भोजन शुद्ध हैं व जो लोभी नहीं हैं, हिंसक नहीं हैं, आलसी नहीं हैं, उद्धत नहीं हैं, संशय

सहित नहीं हैं, परनिन्दक नहीं हैं, भीरु नहीं हैं, सत्कार व लाभके भूखे नहीं हैं, स्मृतिवान हैं, निराकुल हैं, प्रज्ञावान हैं उनको वनमें भय नहीं प्राप्त होता, वे निर्भय हो वनमें विचरते हैं। समाधि और प्रज्ञाको सम्पदा बताई है। किसकी सम्पदा—अपने आपकी—निर्वाणको सर्व परसे भिन्न जाननेको ही प्रज्ञा या भेदविज्ञान कहते हैं। फिर आपका निर्वाण स्वरूप पदार्थके साथ एकाग्र होजाना यही समाधि है, यही बात जैन सिद्धांतमें कही है कि प्रज्ञा द्वारा समाधि प्राप्त होती है।

फिर बताया है कि चौदस, अष्टमी, व पूर्णमासीकी रातको गौतमबुद्ध वनमें विशेष निर्भय हो समाधिका अभ्यास करते थे। इन रातोंको प्रसिद्ध कहा है। जैन लोगोंमें चौदस अष्टमीको पर्व मानकर मासमें ४ दिन उपवास करनेका व ध्यानका विशेष अभ्यास करनेका कथन है। कोई कोई श्रावक भी इन रातोंमें वनमें ठहर विशेष ध्यान करते हैं। सम्यग्दृष्टी कैसा निर्भय होता है यह बात भलेप्रकार दिखलाई है। यह बात झलकाई है कि निर्भयपना उसे ही कहते हैं जहां अपना मन ऐसा शांत सम व निराकुल हो कि आप जिस स्थितिमें हो वैसा ही रहते हुए निःशंक बना रहे। किसी भयको आते देखकर जरा भी भागनेकी व घबड़ानेकी चेष्टा न करे तो वह भयप्रद पशु आदि भी ऐसे शांत पुरुषको देखकर स्वयं शांत होजाते हैं, आक्रमण नहीं करते हैं। निर्भय होकर समाधिभावका अभ्यास करनेसे चार प्रकारके ध्यानको जागृत किया गया था। (१) जिसमें निर्वाणभावमें प्रीति हो व सुख प्रगटे तथा वितर्क व विचार भी हो, कुछ चिन्तवन भी हो, यह पहला ध्यान है। (२)

फिर वितर्क व विचार बंद होनेपर प्रीति व सुख सहित भाव रह जावे यह दूसरा ध्यान है। (३) फिर प्रीति सम्बंधी राग चला जावे-वैराग्य बढ जावे-निर्वाण मानके स्मरण सहित सुखका अनुभव हो सो तीसरा ध्यान है। (४) वैराग्यकी वृद्धिसे शुद्ध व एकाग्र स्मरण हो सो चौथा ध्यान है। ये चार ध्यानकी श्रेणियां हैं जिनको गौतमबुद्धने प्राप्त किया। इसी प्रकार जैन सिद्धांतमें सरागध्यान व वीतराग ध्यानका वर्णन किया है। जितना जितना राग घटता है ध्यान निर्मल होता जाता है।

फिर यह बताया है कि इस समाधियुक्त ध्यानसे व आत्म-संयमी होनेसे गौतमबुद्धको अपने पूर्व भव स्मरणमें आए फिर दूसरे प्राणियोंके जन्म मरण व कर्तव्य स्मरणमें आए कि मिथ्या-दृष्टी जीव मन वचन कायके दुराचारसे नर्क गया व सम्यग्दृष्टी जीव मन वचन कायके सुआचारसे स्वर्ग गया। यहां मिथ्यादृष्टी शब्दके साथ कर्म शब्द लगा है। जिसके अर्थ जैन सिद्धान्तानुसार मिथ्यात्व कर्म भी होसक्ते हैं। जैन सिद्धांतमें कर्म पुद्गलके स्कंध लोकव्यापी हैं उनको यह जीव जब खींचकर बांधता है तब उनमें कर्मका स्वभाव पडता है। मिथ्यात्व भावसे मिथ्यात्व कर्म बंध जाता है। तथा सम्यक्त कर्म भी है जो श्रद्धाको निर्मल नहीं रखता है। इस अपने व दूसरोंके पूर्वकालके स्मरणोंकी शक्तिको अवधि ज्ञान नामका दिव्य ज्ञान जैन सिद्धांतने माना है। फिर बुद्ध कहते हैं कि जब मैंने दुःख व दुःखके कारणको व आस्रव व आस्रवके कारणको, दुःख व आस्रव निरोधको तथा दुःख व आस्रव निरोधके साधनको भले प्रकार जान लिया तब मैं सर्व इच्छाओंसे, जन्म

धारणके भावसे व सर्व प्रकारकी अविद्यासे मुक्त होगया। ऐसा मुझको भीतरसे अनुभव हुआ। ब्रह्मचर्य भाव जम गया। ब्रह्म भावमें लय होगया। यह तीसरी विद्या स्वरूपानन्दके लाभकी बताई है।

यहांतक गौतमबुद्धकी उन्नतिकी बात कही है। इस सूत्रमें निर्भय रहकर विहार करनेकी व ध्यानकी महिमा बताई है। यह दिव्यज्ञान न कि पूर्वका स्मरण हो व समाधिमें आनन्द ज्ञान हो उस विज्ञानसे अवश्य भिन्न है जिसका कारण पांच इन्द्रिय व मन द्वारा रूपका ग्रहण है, फिर उसकी वेदना है, फिर संज्ञा है, फिर संस्कार है, फिर विज्ञान है। वह सब अशुद्ध इन्द्रियद्वारा ज्ञान है। इससे यह दिव्यज्ञान अवश्य विलक्षण है। जब यह बात है तब जो इस दिव्यज्ञानका आधार है वही वह आत्मा है जो निर्वाणमें अजात अमर रूपमें रहता है। सद्भावरूप निर्वाण सिवाय शुद्धात्माके स्वभावरूप पदके और क्या होसक्ता है, यही बात जैन सिद्धांतसे मिल जाती है।

जैन सिद्धांतके वाक्य—तत्वज्ञानी सम्यग्दृष्टीको सात तरहका भय नहीं करना चाहिये। (१) **इस लोकका भय**—जगतके लोग नाराज होजायंगे तो मुझे कष्ट देंगे, (२) **परलोकका भय**-मरकर दुर्गतिमें जाऊंगा तो कष्ट पाऊंगा,(३) **वेदनाभय**-रोग होजायगा तो क्या करूंगा, (४) **अरक्षा भय**—कोई मेरा रक्षक नहीं हैं मैं कैसे जीऊँगा। (५) **अगुप्ति भय**—मेरी वस्तुऐं कोई उठा लेगा मैं क्या करूंगा (६) **मरण भय**—मरण आयगा तो बड़ा कष्ट होगा (७) **अकस्मात भय**—कहीं दीवाल न गिर पड़े भूचाल न आवे। मिथ्यादृष्टिकी शरीरमें आसक्ति

होती है, वह इन भयोंको नहीं छोड सक्ता है। सम्यग्दृष्टी तत्वज्ञानी है, आत्माके निर्वाण स्वरूपका प्रेमी है, संसारकी अनित्य अवस्थाओंको अपने ही बांधे हुए कर्मका फल जानकर उनके होनेपर आश्चर्य या भय नहीं मानता है। वह यथाशक्ति रोगादिसे बचनेका उपाय रखता है, परन्तु कायरभाव चित्तसे निकाल देता है। वीर सिपाहीके समान संसारमें रहता है, आत्मसंयमी होकर निर्भय रहता है।

श्री अमृतचंद्र आचार्यने समयसार कलशमें सात भयोंके दूर रहनेकी बात सम्यग्दृष्टीके लिये कही है। उसका कुछ दिग्दर्शन यह है—

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमन्ते परं।
यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि ॥
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शङ्कां विहाय स्वयं।
जानंतः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवन्ते न हि ॥ २२–७ ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव ही ऐसा साहस करनेको समर्थ हैं कि जहां व जब ऐसा अवसर हो कि वज्रके समान आपत्ति आरही हो जिनको देखकर व जिनके भयसे तीन लोकके प्राणी भयसे भागकर मार्गको छोड दें तब भी वे अपनी पूर्ण स्वाभाविक निर्भयताके साथ रहते हैं। स्वयं शंका रहित होते हैं और अपने आपको ज्ञान शरीरी जानते हैं कि मेरे आत्माका कोई वध कर नहीं सक्ता। ऐसा जानकर वे अपने ज्ञान स्वभावसे किंचित् भी पतन नहीं करते हैं।

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो।
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ॥
तस्यातो मरणं न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो।
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥ २७–७ ॥

भावार्थ–बाहरी इन्द्रिय बलादि प्राणोंके नाशको मरण कहते हैं किंतु इस आत्माके निश्चय प्राण ज्ञान है। वह ज्ञान सदा अविनाशी है उसका कभी छेदन भेदन नहीं होसक्ता। इसलिये ज्ञानियोंको मरणका कुछ भी भय नहीं होता है–निशंक रहकर सदा ही अपने सहज स्वाभाविक ज्ञान स्वभावका अनुभव करते रहते हैं।

पंचाध्यायीमें भी कहा है–

परत्रात्मानुभूतेर्वै विना भीतिः कुतस्तनी।
भीतिः पर्यायमूढानां नात्मतत्वैकचेतसाम्॥ ४९५॥

भावार्थ–पर पदार्थोंमें आत्मापनेकी बुद्धिके विना भय कैसे होसक्ता है? जो शरीरमें आसक्त मूढ़ प्राणी हैं उनको भय होता है केवल शुद्ध आत्माके अनुभव करनेवाले सम्यग्दृष्टियोंको भय नहीं होता है।

ध्यानकी सिद्धिके लिये जैसे निर्भयताकी जरूरत है वैसे ही अशुद्ध भावोंको–क्रोध, मान, माया, लोभको हटानेकी जरूरत है ऐसा ही बुद्ध सूत्रका भाव है। इन सब अशुद्ध भावोंको राग द्वेष मोहमें गर्भित करके श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती द्रव्यसंग्रह ग्रंथमें कहते हैं–

मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह जई चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए॥ ४८॥

भावार्थ–हे भाई! यदि तू नानाप्रकार ध्यानकी सिद्धिके लिये चित्तको स्थिर करना चाहता है तो इष्ट व अनिष्ट पदार्थोंमें मोह मत कर, राग मत कर, द्वेष मत कर। समभावको प्राप्त हो।

श्री देवसेन आचार्यने तत्वसारमें कहा है–

इंदियविसयविरामे मणस्स णिल्लूरणं हवे जइया।
तइया तं अविकप्पं ससरूवे अप्पणो तं तु ॥ ६ ॥
समणे णिच्चलभूये णट्ठे सव्वे वियप्पसंदोहे।
थक्को सुद्धसहावो अवियप्पो णिच्चलो णिच्चो ॥ ७ ॥

भावार्थ—पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी इच्छा न रहनेपर जब मन विध्वंश होजाता है तब अपने ही स्वरूपमें अपना निर्विकल्प (निर्वाण रूप) स्वरूप झलकता है। जब मन निश्चल होजाता है और सर्व विकल्पोंका समूह नष्ट होजाता है तब शुद्ध स्वभावमई निश्चल स्थिर अविनाशी निर्विकल्प तत्व (निर्वाण मार्ग या निर्वाण) झलक जाता है। और भी कहा है—

झाणट्ठिओ हु जोई जइ णो सम्वेय णिययअप्पाणं।
तो ण लहइ तं सुद्धं भग्गविहीणो जहा रयणं ॥ ४६ ॥
देहसुहे पडिबद्धो जेण य सोतेण लहइ ण हु सुद्धं।
तच्चं वियाररहियं णिच्चं चिय झायमाणो हु ॥ ४७ ॥

भावार्थ—ध्यानी योगी यदि अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभव नहीं प्राप्त करे तो वह शुद्ध स्वभावको नहीं पहुंचेगा। जैसे—भाग्यहीन रत्नको नहीं पा सक्ता। जो देहके सुखमें लीन है वह विचार रहित अविनाशी व शुद्ध तत्वका ध्यान करता हुआ भी नहीं पासक्ता है—

श्री नागसेन मुनि तत्वानुसासनमें कहते हैं—

सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं स्मृतं।
एतदेव समाधिः स्याल्लोकद्वयफलप्रदः ॥ १३७ ॥
माध्यस्थ्यं समतोपेक्षा वैराग्यं साम्यमस्पृहः।
वैतृष्ण्यं परमः शांतिरित्येकोऽर्थोऽभिधीयते ॥ १३९ ॥

भावार्थ—जो कोई समरसी भाव है उसीको एकीकरण या ऐक्यभाव कहा है, यही समाधि है इससे इस लोकमें भी दिव्य-शक्तियां प्रगट होती हैं और परलोकमें भी उच्च अवस्था होती है।

माध्यस्थभाव, समता, उपेक्षा, वैराग्य, साम्य, निस्पृहभाव, तृष्णा रहितपना, परमभाव, शांति इन सबका एक ही अर्थ है। जैन सिद्धांतमें ध्यान सम्बंधी बहुत वर्णन है, ध्यानहीसे निर्वाणकी सिद्धि बताई है। द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तह्मा पयत्तचित्ताजूयं ज्झाणे समब्भसह ॥ ४७ ॥

भावार्थ—निश्चय मोक्षमार्ग आत्मसमाधि व व्यवहार मोक्षमार्ग अहिंसादी व्रत ये दोनों ही मोक्षमार्ग साधुको आत्मध्यानमें मिल जाते हैं इसलिये प्रयत्नचित्त होकर तुम सब ध्यानका भलेप्रकार अभ्यास करो।

(४) मज्झिमनिकाय—अनङ्गण सूत्र।

आयुष्मान् सारिपुत्र भिक्षुओंको कहते हैं—लोकमें चार प्रकारके पुद्गल या व्यक्ति हैं। (१) एक व्यक्ति अंगण (चित्तमल) सहित होता हुआ भी, मेरे भीतर अंगण है इसे ठीकसे नहीं जानता। (२) कोई व्यक्ति अंगण सहित होता हुआ मेरे भीतर अंगण हैं इसे ठीकसे जानता है। (३) कोई व्यक्ति अंगण रहित होता हुआ मेरे भीतर अंगण नहीं हैं इसे ठीकसे नहीं जानता है। (४) कोई व्यक्ति अंगण रहित होता हुआ मेरे भीतर अंगण नहीं हैं इसे ठीकसे जानता है।

इनमेंसे अंगण सहित दोनों व्यक्तियोंमें पहला व्यक्ति हीन है, दूसरा व्यक्ति श्रेष्ठ है जो अंगण है इस बातको ठीकसे जानता है। इसी तरह अंगण रहित दोनोंमेंसे पहला हीन है। दूसरा श्रेष्ठ है जो अंगण नहीं है इस बातको ठीकसे जानता है। इसका हेतु यह है कि जो व्यक्ति अपने भीतर अंगण है इसे ठीकसे नहीं जानता है। वह उस अंगणके नाशके लिये प्रयत्न, उद्योग व वीर्यारंभ न करेगा। वह राग, द्वेष, मोह मुक्त रह मलिन चित्त ही मृत्युको प्राप्त करेगा जैसे—कांसेकी थाली रज और मलसे लिप्त ही कसेरेके यहांसे घर लाई जावे उसको लानेवाला मालिक न उसका उपयोग करे न उसे साफ करे तथा कचरेमें डालदे तब वह कांसेकी थाली कालांतरमें और भी अधिक मैली हो जायगी इसीतरह जो अंगण होते हुए उसे ठीकसे नहीं जानता है वह अधिक मलीनचित्त ही रहकर मरेगा।

जो व्यक्ति अंगण सहित होनेपर ठीकसे जानता है कि मेरे भीतर मल है वह उस मलके नाशके लिये वीर्यारम्भ कर सक्ता है, वह राग, द्वेष, मोह रहित हो, निर्मल चित्त हो मरेगा। जैसे रज व मलसे लिप्त कांसेकी थाली लाई जावे, मालिक उसका उपयोग करे, साफ करे, उसे कचरेमें न डाले तब वह वस्तु कालांतरमें अधिक परिशुद्ध होजायगी।

जो व्यक्ति अंगण रहित होता हुआ भी उसे ठीकसे नहीं जानता है वह मनोज्ञ (सुंदर) निमित्तोंके मिलनेपर उनकी ओर मनको झुका देगा तब उसके चित्तमें राग चिपट जायगा—वह राग, द्वेष मोह सहित, मलीनचित्त हो मरेगा। जैसे बाजारसे कांसेकी थाली शुद्ध लाई जावे परन्तु उसका मालिक न उसका उपयोग करे,

न उसे साफ रक्खे–कचरेमें डालदे तो यह थाली कालांतरमें मैली होजायगी।

जो व्यक्ति अंगण रहित होता हुआ ठीकसे जानता है वह मनोज्ञ निमित्तोंकी तरफ मनको नहीं झुकाएगा तब वह रागसे लिप्त न होगा। वह रागद्वेष मोहरहित होकर, अँगणरहित व निर्मलचित्त हो मरेगा जैसे–शुद्ध कांसेकी थाली कसेरेके यहांसे लाई जावे। मालिक उसका उपयोग करें, साफ रक्खें उसे कचरेमें न डाले तब वह थाली कालांतरमें और भी अधिक परिशुद्ध और निर्मल होजायगी।

तब मोग्गलायनने प्रश्न किया कि अँगण क्या वस्तु है? तब सारिपुत्र कहते हैं–पाप, बुराई व इच्छाकी परतंत्रताका नाम अँगण है, उसके कुछ दृष्टांत नीचे प्रकार हैं–

(१) हो सकता है कि किसी भिक्षुके मनमें यह इच्छा उत्पन्न हो कि मैं अपराध करूं तथा कोई भिक्षु इस बातको न जाने। कदाचित् कोई भिक्षु उस भिक्षुके बारेमें जान जावें कि हमने आपत्ति की है तब वह भिक्षु यह सोचे कि भिक्षुओंने मेरे अपराधको जान लिया। और मनमें कुपित होवे, नाराज होवे, यही एक तरहका अंगण है।

(२) हो सकता है कोई भिक्षु यह इच्छा करे कि मैं अपराध करूं लेकिन भिक्षु मुझे अकेले हीमें दोषी ठहरावें, संघमें नहीं; कदाचित् भिक्षुगण उसे संघके बीचमें दोषी ठहरावें, अकेलेमें नहीं। तब वह भिक्षु इस बातसे कुपित होजावे यह जो कोप है वही एक तरहका अंगण है।

(३) होसकता है कोई भिक्षु यह इच्छा करे कि मैं अपराध करूं, मेरे बराबरका व्यक्ति मुझे दोषी ठहरावे दूसरा नहीं। कदाचित् दूसरेने दोष ठहराया. इस बातसे वह कुपित होजावे, यह कोप एक तरहका अंगण है।

(४) होसकता है कोई भिक्षु यह इच्छा करे कि शास्ता (बुद्ध) मुझे ही पूछ पूछकर धर्मोपदेश करें दूसरे भिक्षुको नहीं। कदाचित शास्ता दूसरे भिक्षुको पूछकर धर्मोपदेश करे उसको नहीं, इस बातसे वह भिक्षु कुपित होजावे. यह कोप एक तरहका अंगण है।

(५) होसकता है कि कोई भिक्षु यह इच्छा करे कि मैं ही आराम (आश्रम) में आये भिक्षुओंको धर्मोपदेश करूं दूसरा भिक्षु नहीं। होसकता है कि अन्य ही भिक्षु धर्मोपदेश करे, ऐसा सोचकर वह कुपित होजावे। यही कोप एक तरहका अंगण है।

(६) होसकता है किसी भिक्षुको यह इच्छा हो कि भिक्षु मेरा ही सत्कार करें, मेरी ही पूजा करें, दूसरेकी नहीं। होसकता है कि भिक्षु दूसरे भिक्षुकी सत्कार पूजा करे इससे वह कुपित होजावे यह एक तरहका अंगण है। इत्यादि ऐसी ही बुराइयों और इच्छाकी परतंत्रताओंका नाम अंगण है। जिस किसी कि भिक्षुकी यह बुराइयाँ नष्ट नहीं दिखाई पड़ती हैं, सुनाई देती हैं, चाहे वह वनवासी, एकांत कुटी निवासी, भिक्षान्नभोजी आदि हो उसका सत्कार न मान सब्रह्मचारी नहीं करते क्योंकि उसकी बुराइयां नष्ट नहीं हुई हैं। जैसे कोई एक निर्मल कांसेकी थाली बाजारसे लावे, फिर उसका मालिक उसमें मुर्दे सांप, मुर्दे कुत्ते या मुर्दे मनुष्य (के मांस) को भरकर

दूसरी कांसेकी थालीसे ढककर बाजारमें रखदें उसे देखकर लोग कहे कि अहो ! यह चमकता हुआ क्या रक्खा है। फिर ऊपरकी थालीको उठाकर देखें। उसे देखते ही उनके मनमें घृणा, प्रतिकूलता, जुगुप्सा उत्पन्न होजावे, भूखेको भी खानेकी इच्छा न हो, पेटभरोंकी तो बात ही क्या। इसी तरह बुराइयोंसे भरे भिक्षुका सत्कार उत्तम पुरुष नहीं करते।

परन्तु जिस किसी भिक्षुकी बुराइयां नष्ट होगई हैं उसका सत्कार सब्रह्मचारी करते हैं। जैसे एक निर्मल कांसेकी थाली बाजारसे लाई जावे उसका मालिक उसमें साफ किये हुए शालीके चावलको अनेक प्रकारके सूप (दाल) और व्यंजन (साग भाजी) के साथ सजाकर दूसरी कांसेकी थालीसे ढककर बाजारमें रखदें, उसे देखकर लोक कहे कि चमकता हुआ क्या है ? थाली उठाकर देखें तो देखते ही उनके मनमें प्रसन्नता; अनुकूलता और अजुगुप्सा उत्पन्न होजावे, पेटभरेकी भी खानेकी इच्छा होजावे, भूखोंकी तो बात ही क्या है। इसी प्रकार जिसकी बुराइयां नष्ट होगई हैं उसका सत्पुरुष सत्कार करते हैं।

नोट—इस सूत्रमें शुद्ध चित्त होकर धर्मसाधनकी महिमा बताई है तथा यह झलकाया है कि जो ज्ञानी है वह अपने दोषोंको मेंट सक्ता है। जो अपने भावोंको पहचानता है कि मेरा भाव यह शुद्ध है वह अशुद्ध है वही अशुद्ध भावोंके मिटानेका उद्योग करेगा। प्रयत्न करते करते ऐसा समय आयगा कि वह दोषमुक्त व वीतराग होजावे। जैन सिद्धांतमें भी व्रतीके लिये विषयकषाय व शल्य व गारव आदि दोषोंके मेटनेका उपदेश है। उसे पांच इन्द्रियोंकी

इच्छाका विजयी, क्रोध, मान, माया, लोभरहित व माया, मिथ्यात्व भोगोंकी इच्छारूप निदान शल्यसे रहित तथा मान बड़ाई व पूजा आदिकी चाहसे रहित होना चाहिये।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

> लाहालाहे सरिसो सुहदुक्खे तह य जीविए मरणे।
> बंधो अरयसमाणो झाणसमत्थो हु सो जोई॥ ११॥
> रायादिया विभावा बहिरंतरउहवियप्प मुत्तूणं।
> एयग्गमणो झायहि णिरंजणं णियअप्पाणं॥ १८॥

भावार्थ—जो कोई साधु लाभ व अलाभमें, सुख व दुःखमें, जीवन या मरणमें, बन्धु व मित्रमें समान बुद्धि रखता है वही ध्यान करनेको समर्थ होसक्ता है। रागादि विभावोंको व बाहरी व मनके भीतरके विकल्पोंको छोड़कर एकाग्र मन होकर अत्र आपको निरंजन रूप ध्यान कर मोक्षके पात्र ध्यानी साधु कैसे होते हैं। श्री कुल-भद्राचार्य सारसमुच्चयमें कहते हैं—

> संगादिरहिता धीरा रागादिमलवर्जिताः।
> शान्ता दान्तास्तपोभूषा मुक्तिकांक्षणतत्पराः॥ १९६॥
> मनोवाक्काययोगेषु प्रणिधानपरायणाः।
> वृताढ्या ध्यानसम्पन्नास्ते पात्रं करुणापराः॥ १९७॥
> अग्रहो हि शमे येषां विग्रहं कर्मशत्रुभिः।
> विषयेषु निरासक्तास्ते पात्रं यतिसत्तमाः॥ २००॥
> यैर्ममत्वं सदा त्यक्तं स्वकायेऽपि मनीषिभिः।
> ते पात्रं संयतात्मानः सर्वसत्वहिते रताः॥ २०२॥

भावार्थ—जो परिग्रह आदिसे रहित हैं, धीर हैं, राग, द्वेष, मोहके मलसे रहित हैं, शांतचित्त हैं, इन्द्रियोंके दमन करनेवाले हैं,

तपसे शोभायमान हैं, मुक्तिकी भावनामें तत्पर हैं, मन, वचन व कायको एकाग्र रखनेमें तत्पर हैं, सुचारित्रवान हैं, ध्यानसम्पन्न हैं व दयावान हैं वे ही पात्र हैं। जिनका शांतभाव पानेका हठ है, जो कर्मशत्रुओंसे युद्ध करते हैं, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे अलिप्त हैं वे ही यतिवर पात्र हैं। जिन महापुरुषोंने शरीरसे भी ममत्व त्याग दिया है तथा जो संयमी हैं व सर्व प्राणियोंके हितमें तत्पर हैं वे ही पात्र हैं।

इस सूत्रका तात्पर्य यह है कि सम्यग्दृष्टी ही अपने भावोंकी शुद्धि रख सक्ता है। सम्यक्तीको शुद्ध भावोंकी पहचान है, वह मैलपनेको भी जानता है। अतएव वही भावोंका मल हटाकर अपने भावोंको शुद्ध कर सक्ता है।

---

(५) मज्झिमनिकाय–वस्त्र सूत्र।

गौतम बुद्ध भिक्षुओंको उपदेश करते हैं–जैसे कोई मैला कुचैला वस्त्र हो उसे रङ्गरेजके पास ले जाकर जिस किसी रङ्गमें डाले, चाहे नीलमें, चाहे पीतमें, चाहे लालमें, चाहे मजीठके रंगमें, वह बद रङ्ग ही रहेगा, अशुद्ध वर्ण ही रहेगा। ऐसे ही चित्तके मलीन होनेसे दुर्गति अनिवार्य है। परन्तु जो उजला साफ वस्त्र हो उसे रङ्गरेजके पास लेजाकर जिस किसी ही रङ्गमें डाले वह सुरंग निकलेगा, शुद्ध वर्ण निकलेगा, क्योंकि वस्त्र शुद्ध है। ऐसे ही चित्तके अन् उपक्लिष्ट अर्थात् निर्मल होने पर सुगति अनिवार्य है।

भिक्षुओ! चित्तके उपक्लेश या मल हैं (१) अभिद्या या

विषयोंका लोभ, (२) व्यापाद या द्रोह, (३) क्रोध, (४) उपनाह या पाखंड, (५) भ्रक्ष (अमरख), (६) प्रदोष (निष्ठुरता), (७) ईर्षा, (८) मात्सर्य (परगुण द्वेष), (९) माया, (१०) शठता, (११) स्तम्भ (जड़ता), (१२) सारंभ (हिंसा), (१३) मान, (१४) अतिमान, (१५) मद, (१६) प्रमाद।

जो भिक्षु इन मलोंको मल जानकर त्याग देता है वह बुद्धमें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है। वह जानता है कि भगवान अर्हत् सम्यक्–संबुद्ध (परम ज्ञानी), विद्या और आचरणसे संपन्न, सुगत, लोकविद, पुरुषोंको दमन करने (सन्मार्गपर लाने) के लिये अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्योंके शास्ता (उपदेशक) बुद्ध (ज्ञानी) भगवान हैं।

यह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है, वह समझता है कि भगवानका धर्म स्वाख्यात (सुन्दर रीतिसे कहा हुआ) है, सांद-ष्टिक (इसी शरीरमें फल देनेवाला), अकालिक (सद्यः फलप्रद), एहिपश्यिक (यहीं दिखाई देनेवाला) औपनयिक (निर्वाणके पास लेजानेवाला), विज्ञ (पुरुषोंको) अपने अपने भीतर ही विदित होनेवाला है।

वह संघमें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है, वह समझता है भग-वानका श्रावक (शिष्य) संघ सुमार्गारूढ़ है, ऋजुप्रतिपन्न (सरल मार्गपर आरूढ़) है, न्यायप्रतिपन्न है, सामीचि प्रतिपन्न है (ठीक मार्गपर आरूढ़ है)

जब भिक्षुके मल त्यक्त, वमित, मोचित, नष्ट व विसर्जित होते हैं तब वह अर्थवेद (अर्थज्ञान), धर्मवेद (धर्मज्ञान) को पाता है।

धर्मवेद सम्बंधी प्रमोदको पाता है, प्रमुदितको संतोष होता है, प्रीतिवानकी काया शांत होती है। प्रश्रब्धकाय सुख अनुभव करता है। सुखीका चित्त एकाग्र होता है।

ऐसे शीलवाला, ऐसे धर्मवाला, ऐसी प्रज्ञावाला भिक्षु चाहे काली (भूसी आदि) चुनकर बने शालीके भातको अनेकरूप (दाल) व्यंजन (सागभाजी) के साथ खावे तौभी उसको अन्तराय (विघ्न) नहीं होगा। जैसे मैला कुचैला वस्त्र स्वच्छ जलको प्राप्त हो शुद्ध साफ होजाता है; उल्कामुक (भट्टीकी घड़िया)में पड़कर सोना शुद्ध साफ होजाता है।

वह मैत्री युक्त चित्तसे सर्व दिशाओंको परिपूर्ण कर विहरता है। वह सबका विचार रखनेवाला, विपुल, अप्रमाण, वैररहित, द्रोहरहित, मैत्री युक्त चित्तसे सारे लोकको पूर्णकर विहार करता है।

इसी तरह वह करुणायुक्त चित्तसे, मुदितायुक्त चित्तसे, उपेक्षायुक्त चित्तसे युक्त हो सारे लोकको पूर्णकर विहार करता है।

वह जानता है कि यह निकृष्ट है, यह उत्तम है, इन (लौकिक) संज्ञाओंसे ऊपर निस्सरण (निकास) है। ऐसा जानते, ऐसा देखते हुए उसका चित्त काम (वासनारूपी) आस्रवसे मुक्त होजाता है, भव आस्रवसे, अविद्या आस्रवसे मुक्त होजाता है। मुक्त होजाने पर 'मुक्त होगया हूँ' यह ज्ञान होता है और जानता है—जन्म क्षीण होगया, ब्रह्मचर्यवास समाप्त होगया, करना था सो कर लिया, अब दूसरा यहां (कुछ करनेको) नहीं है। ऐसा भिक्षु स्नान करे विनाही स्नात (नहाया हुआ) कहा जाता है।

उस समय सुंदरिक भारद्वाज ब्राह्मणने कहा, क्या आप गौतम बाहुका नदी चलेंगे। तब गौतमने कहा बाहुका नदी क्या करेगी। ब्राह्मणने कहा बाहुका नदी पवित्र है, बहुतसे लोग बाहुका नदीमें अपने किये पापोंको बहाते हैं। तब बुद्धने ब्राह्मणको कहा:-

बाहुका, अधिकक्क, गया और सुन्दरिकामें।

सरस्वती, और प्रयाग तथा बाहुमती नदीमें।

कालेकर्मोंवाला मूढ़ चाहे कितना न्हाये, शुद्ध नहीं होगा।

क्या करेगी सुन्दरिका, क्या प्रयाग और क्या बाहुलिका नदी।

पापकर्मी कृतकिल्विष दुष्ट नरको नहीं शुद्ध कर सकते।

शुद्धके लिये सदा ही फल्गु है, शुद्धके लिये सदा ही उपोसन्थ (व्रत) है।

शुद्ध और शुचिकर्माके व्रत सदा ही पूरे होते रहते हैं।

ब्राह्मण! यहीं ठहर, सारे प्राणियोंका क्षेमकर।

यदि तू झूठ नहीं बोलता. यदि प्राण नहीं मारता।

यदि बिना दिया नहीं लेता, श्रद्धावान मत्सर रहित है।

गया जाकर क्या करेगा, क्षुद्र जलाशय भी तेरे लिये गया है।

नोट—जैसे इस सूत्रमें वस्त्रका दृष्टांत देकर चित्तकी मलीनताका निषेध किया है वैसे ही जैन सिद्धांतमें कहा है।

श्री कुंदकुंदाचार्य समयसारमें कहते हैं—

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णादव्वं ॥ १६४ ॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णादव्वं ॥ १६९ ॥

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
तह दु कसायाच्छण्णं चारित्तं होदि णादव्वं ॥ १६६ ॥

भावार्थ—जैसे वस्त्रका उजलापन मलके मैलसे ढका हुआ नाश होजाता है वैसे ही मिथ्यादर्शनके मैलसे ढका हुआ जीवका सम्यग्दर्शन गुण है ऐसा जानना चाहिये। जैसे वस्त्रका उजलापन मलके मैलसे ढका हुआ नाशको प्राप्त होजाता है वैसे अज्ञानके मैलसे ढका हुआ जीवका ज्ञान गुण जानना चाहिये। जैसे वस्त्रका उजलापन मलके मैलसे ढका हुआ नाश होजाता है वैसे कषायके मलसे ढका हुआ जीवका चारित्र गुण जानना चाहिये।

जैसे बौद्ध सूत्रमें चित्तके मल सोलह गिनाए हैं वैसे जैन सिद्धांतमें चित्तको मलीन करनेवाले १६ कषाय व नौ नोकषाय ऐसे २५ गिनाए हैं। देखो तत्त्वार्थसूत्र उमास्वामी कृत—अध्याय ८ सूत्र ९।

४—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ—ऐसे कषाय जो पत्थरकी लकीरके समान बहुत काल पीछे हटें। यह सम्यग्दर्शनको रोकती है।

४—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ—ऐसी कषाय जो हलकी रेखाके समान हो, कुछ काल पीछे मिटे। यह गृहस्थके व्रत नहीं होने देती है।

४—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ—ऐसी कषाय जो बालूके भीतर बनाई लकीरके समान शीघ्र मिटे। यह साधुके चारित्रको रोकती है।

४—संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ—ऐसी कषाय जो

पानीमें लकीर करनेके समान तुर्त मिट जावे। यह पूर्ण वीतरागताको रोकती है।

९-नोकषाय या निर्मल कषाय जो १६ कषायोंके साथ साथ काम करती हैं-१-हास्य, २ शोक, ३ रति, ४ अरति, ५ भय, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद, ९ नपुंसकवेद।

इसी तत्वार्थसूत्रमें कहा है अध्याय ७ सूत्र १८ में।

निःशल्यो व्रती-व्रतधारी साधु या श्रावकको शल्य रहित होना चाहिये। शल्य कांटेके समान चुभनेवाले गुप्तभावको कहते हैं। वे तीन हैं—

(१) मायाशल्य-कपटके साथ व्रत पालना, शुद्ध भावसे नहीं।

(२) मिथ्याशल्य-श्रद्धाके विना पालना, या मिथ्या श्रद्धाके साथ पालना।

(३) निदान शल्य-भोगोंकी आगामी प्राप्तिकी तृष्णासे युक्त हो पालना। जैसे इस बुद्धसूत्रमें श्रद्धावानको शास्ता, धर्म और संघमें श्रद्धाको दृढ़ किया है वैसे जैन सिद्धान्तमें आप्त आगम, गुरुमें श्रद्धाको दृढ़ किया है। आगमसे ही धर्मका बोध लेना चाहिये।

श्री समंतभद्राचार्य रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहते हैं—

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥ ४॥

भावार्थ-सम्यग्दर्शन या सच्चा विश्वास यह है कि परमार्थ या सच्चे आत्मा (शास्तादेव), आगम या धर्म, तथा तपस्वी गुरुमें पक्की श्रद्धा होनी चाहिये, जो तीन मूढ़ता व आठ मदसे शून्य हो तथा आठ अंग सहित हो।

आप्त उसे कहते हैं जो तीन गुण सहित हो। जो सर्वज्ञ, वीतराग तथा हितोपदेशी हो। इन्हींको अर्हंत, सयोग केवली जिन, सकल परमात्मा, जिनेन्द्र आदि कहते हैं।

आगम प्राचीन वह है जो आप्तका निर्दोष वचन है।

गुरु वह है जो आरम्भ व परिग्रहका त्यागी हो, पांचों इन्द्रियोंकी आशासे रहित हो, आत्मज्ञान व आत्मध्यानमें लीन हो व तपस्वी हो।

तीन मूढ़ता—मूर्खतासे कुदेवोंको देव मानना देव मूढ़ता है। मूर्खतासे कुगुरुको गुरु मानना पाखण्ड मूढ़ता है। मूर्खतासे लौकिक रूढि या वहमको मानना लोक मूढ़ता है। जैसे नदीमें स्नानसे धर्म होगा।

आठ मद—१ जाति, २ कुल, ३ रूप, ४ बल, ५ धन, ६ अधिकार, ७ विद्या, ८ तप इनका घमंड करना।

आठ अंग—१ निःशंकित (शंका रहित होना व निर्मल रहना)। २ निःकांक्षित—भोगोंकी तरफ श्रद्धाका न होना। ३ निर्विचिकित्सित—किसीके साथ घृणाभाव नहीं रखना। ४ अमूढ़दृष्टि—मूढ़ताकी तरफ श्रद्धा नहीं रखना। ५ उपगूहन—धर्मात्माके दोष प्रगट न करना। ६ स्थितिकरण—अपनेको तथा दूसरोंको धर्ममें मजबूत करना। ७ वात्सल्य—धर्मात्माओंसे प्रेम रखना, ८ प्रभावना—धर्मकी उन्नति करना व महिमा फैलाना। जैसे बुद्ध सूत्रमें धर्मके साथ स्वाख्यात शब्द है वैसे जैन सूत्रमें है। देखो तत्वार्थसूत्र उमास्वामी अध्याय ९ सूत्र ७।

धर्म व्याख्या तत्व।

इस शुद्ध सूत्रमें कहा है कि धर्म वह है जो इसी शरीरमें अनुभव हो व जो भीतर विदित हो व निर्वाणकी तरफ ले जानेवाला हो तब इससे सिद्ध है कि धर्म कोई वस्तु है जो अनुभवगम्य है, वह शुद्ध आत्माके सिवाय दूसरी वस्तु नहीं होसक्ती है। शुद्धात्मा ही निर्वाण स्वरूप है। शुद्धात्माका अनुभव करना निर्वाणका मार्ग है। शुद्धात्मारूप शाश्वत रहना निर्वाण है। यदि निर्वाणको अभाव माना जाये तो कोई अनुभव योग्य धर्म नहीं रह जाता है जो निर्वाणको लेजा सके। आगे चलके कहा है कि जो मलोंसे मुक्त होजाता है वह अर्थवेद, धर्मवेद, प्रमोद, व एकाग्रताको पाता है। यहां जो अर्थज्ञान, धर्मज्ञानके शब्द हैं वे बताते हैं कि परमार्थ रूप निर्वाणका ज्ञान व इसके मार्ग रूप धर्मका ज्ञान, इस धर्मके अनुभवसे आनन्द होता है। आनन्दसे ही एकाग्र ध्यान होता है।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसार जैन ग्रंथमें कहते हैं—

सयलवियप्पे थक्के उप्पज्जइ कोवि सासओ भावो।
जो अप्पणो सहाओ मोक्खस्स य कारणं सो हु॥ ६१॥

भावार्थ—सर्व मन वचन कायके विकल्पोंके रुक जानेपर कोई ऐसा शाश्वत् भाव प्रगट होता है जो अपना ही स्वभाव है। वही मोक्षका कारण है। श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः।
जायते परमानंदः कश्चिद्योगेन योगिनः॥ ४७॥

भावार्थ—जो आत्माके स्वरूपमें लीन होजाता है ऐसे योगीके योगके बलसे व्यवहारसे दूर रहते हुए कोई अपूर्व आनन्द उत्पन्न

होजाता है। जब तक किसी शाश्वत् आत्मा पदार्थकी सत्ता न स्वीकार की जायगी तबतक न तो समाधि होसक्ती है न सुखका अनुभव होसक्ता है, न धर्मवेद व अर्थवेद होसक्ता है।

ऊपर बुद्ध सूत्रमें साधकके भीतर मैत्री, प्रमोद, करुणा व माध्यस्थ (उपेक्षा) इन चार भावोंकी महिमा बताई है यही बात जैन सिद्धान्तमें तत्वार्थसूत्रमें कही है—

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु॥ ११-७॥

भावार्थ-व्रती साधकको उचित है कि वह सर्व प्राणी मात्रपर मैत्रीभाव रक्खे, सबका भला विचारे, गुणोंसे जो अधिक हो उनपर प्रमोद या हर्षभाव रक्खे, उनको जानकर प्रसन्न हो, दुःखी प्राणियोंपर दयाभाव रक्खे, उनके दुःखोंको मेटनेकी चेष्टा बन सके तो करे, जिनसे सम्मति नहीं मिलती है उन सबपर माध्यस्थ भाव रक्खे, न राग करे न द्वेष करे। फिर इस बुद्ध सूत्रमें कहा है कि यह हीन है यह उत्तम है उन नामोंके ख्यालसे जो परे जायगा उनका ही निकास होगा। यही बात जैन सिद्धांतमें कही है कि जो समभाव रखेगा, किसीको बुरा व किसीको अच्छा मानना त्यागेगा वही भवसागरसे पार होगा। सारसमुच्चयमें श्री कुलभद्राचार्य कहते हैं—

समता सर्वभूतेषु यः करोति सुमानसः।
ममत्वभावनिर्मुक्तो यात्यसौ पदमव्ययम्॥ २१३॥

भावार्थ—जो कोई सत्पुरुष सर्व प्राणी मात्रपर समभाव रखता है और ममताभाव नहीं रखता है वही अविनाशी निर्वाण पदको पालेता है।

इस बुद्ध सूत्रमें अंतमें यह बात बताई है कि जलके स्नानसे पवित्र नहीं होता है। जिसका आत्मा हिंसादि पापोंसे रहित है वही पवित्र है। ऐसा ही जैन सिद्धांतमें कहा है।

सार समुच्चयमें कहा है—

शीलव्रतजले स्नातुं शुद्धिरस्य शरीरिणः।
न तु स्नातस्य तीर्थेषु सर्वेष्वपि महीतले ॥ ३१२ ॥

रागादिवर्जितं स्नानं ये कुर्वन्ति दयापराः।
तेषां निर्मलता योगैर्न च स्नातस्य वारिणा ॥ ३१३ ॥

आत्मानं स्नापयेन्नित्यं ज्ञाननीरेण चारुणा।
येन निर्मलतां याति जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥ ३१४ ॥

सत्येन शुद्ध्यते वाणी मनो ज्ञानेन शुद्ध्यति।
गुरुशुश्रूषया कायः शुद्धिरेष सनातनः ॥ ३१७ ॥

भावार्थ—इस शरीरधारी प्राणीकी शुद्धि शीलव्रत रूपी जलमें स्नान करनेसे होगी। यदि पृथ्वीभरकी सर्व नदियोंमें स्नान करले तो भी शुद्धि न होगी। जो दयावान रागद्वेषादिको दूर करनेवाले सम-भावरूपी जलमें स्नान करते हैं, उन हीके भीतर ध्यानमें निर्मलता होती है। जलमें स्नान करनेसे शुद्धि नहीं होती है। पवित्र ज्ञान-रूपी जलसे आत्माको सदा स्नान कराना चाहिये। इस स्नानसे यह जीव परलोकमें भी पवित्र होजाता है। सत्य वचनसे वचनकी शुद्धि है, मनकी शुद्धि ज्ञानसे है, शरीर गुरुकी सेवासे शुद्ध होता है, सनातनसे यही शुद्धि है।

हिताकांक्षीको यह तत्वोपदेश ग्रहण करने योग्य है।

(६) मज्झिमनिकाय सल्लेख सूत्र।

भिक्षु महाचुन्द गौतमबुद्धसे प्रश्न करता है—जो यह आत्मवाद सम्बन्धी या लोकवाद सम्बन्धी अनेक प्रकारकी दृष्टियां (दर्शन—गत) दुनियामें उत्पन्न होती हैं उनका प्रहाण या त्याग कैसे होता है?

गौतम समझाते हैं—

जो ये दृष्टियां उत्पन्न होती हैं, जहां ये उत्पन्न होती हैं, जहां यह आश्रय ग्रहण करती हैं, जहां यह व्यवहृत होती हैं वहां "यह मेरा नहीं" "न यह मैं हूं" "न मेरा यह आत्मा है" इसे इसप्रकार यथार्थ रीतिसे ठीकसे जानकर देखनेपर इन दृष्टियोंका प्रहाण या त्याग होता है।

होसकता है यदि कोई भिक्षु कामोंसे विरहित होकर प्रथम ध्यानको या द्वितीय ध्यानको या तृतीय ध्यानको या चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरे या कोई भिक्षु रूप संज्ञा (रूपके विचार) को सर्वथा छोड़नेसे, प्रतिघ (प्रतिहिंसा) की संज्ञाओंके सर्वथा अस्त हो जानेसे नानापनेकी संज्ञाओंको मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त' है इस आकाश आनन्त्य आयतनको प्राप्त हो विहरे या इस आयतनको अतिक्रमण करके 'विज्ञान अनन्त' है—इस विज्ञान आनन्त्य आयतनको प्राप्त हो विहरे या इस आयतनको सर्वथा अतिक्रमण करके 'कुछ नहीं' इस आकिंचन्य आयतनको प्राप्त हो विहरे या इस आयतनको सर्वथा अतिक्रमण करके नैवसंज्ञा—नासंज्ञा आयतन (जहां न संज्ञा ही हो न असंज्ञा ही हो) को प्राप्त हो विहरे। उस भिक्षुके मनमें ऐसा हो कि सल्लेख (तप) के साथ विहर

रहा हूं। लेकिन आर्य विनयमें इन्हें सल्लेख नहीं कहा जाता। आर्य विनयमें इन्हें दृष्टधर्म–सुखविहार (इसी जन्ममें सुखपूर्वक विहार) कहते हैं या शान्तविहार कहते हैं।

किन्तु सल्लेख तप इस तरह करना चाहिये–(१) हम अहिंसक होंगे, (२) प्राणातिपातसे विरत होंगे, (३) अदत्त ग्रहण न करेंगे, (४) ब्रह्मचारी रहेंगे, (५) मृषावादी न होंगे, (६) पिशुनभाषी (चुगलखोर) न होंगे, (७) परुष (कठोर) भाषी न होंगे, (८) संप्रलापी (बकवादी) न होंगे, (९) अभिध्यालु (लोभी) न होंगे, (१०) व्यापन्न (हिंसक) चित्त न होंगे, (११) सम्यक्दृष्टि होंगे, (१२) सम्यक् संकल्पधारी होंगे, (१३) सम्यक्भाषी होंगे, (१४) सम्यक् काय कर्म कर्ता होंगे, (१५) सम्यक् आजीविका करनेवाले होंगे, (१६) सम्यक् व्यायामी होंगे, (१७) सम्यक् स्मृतिधारी होंगे, (१८) सम्यक् समाधिधारी होंगे, (१९) सम्यक्ज्ञानी होंगे, (२०) सम्यक् विमुक्ति भाव सहित होंगे, (२१) स्त्यानगृद्ध (शरीर व मनके आलस्य) रहित होंगे, (२२) उद्धत न होंगे, (२३) संशयवान होंगे, (२४) क्रोधी न होंगे, (२५) उपनाही (पाखंडी) न होंगे, (२६) मक्षी (कीनावाले) न होंगे, (२७) प्रदाशी (निष्ठुर) न होंगे, (२८) ईर्षारहित होंगे, (२९) मत्सरवान न होंगे, ३०) शठ न होंगे, (३१) मायावी न होंगे, (३२) स्तब्ध (जड़) न होंगे, (३३) अभिमानी न होंगे, (३४) सुवचनभाषी होंगे, (३५) कल्याण मित्र (भलोंको मित्र बनानेवाले) होंगे, (३६) अप्रमत्त रहेंगे, (३७) श्रद्धालु रहेंगे, (३८) निर्लज्ज न होंगे, (३९) अपत्रपी (उचितभयको माननेवाले) होंगे, (४०)

बहुश्रुत होंगे, (४१) उद्योगी होंगे, (४२) उपस्थित स्मृति होंगे, (४३) प्रज्ञा सम्पन्न होंगे, (४४) सांदृष्टि परामर्शी (ऐहिक लाभ सोचनेवाले), आधानग्राही (हठी), दुष्प्रतिनिसर्गी (कठिनाईसे त्याग करनेवाले) न होंगे।

अच्छे धर्मोंके विषयमें विचारके उत्पन्न होनेको भी मैं हितकर कहता हूं। काया और वचनसे उनके अनुष्ठानके बारेमें तो कहना ही क्या है, ऊपर कहे हुए (४४) विचारोंको उत्पन्न करना चाहिये।

जैसे कोई विषम (कठिन) मार्ग है और उसके परिक्रमण (त्याग) के लिये दूसरा सममार्ग हो या विषम तीर्थ या घाट हो व उसके परिक्रमणके लिये समतीर्थ हो वैसे ही हिंसक पुरुष पुद्गल (व्यक्ति) को अहिंसा ग्रहण करने योग्य है, इसी तरह ऊपर लिखित ४४ बातें उनके विरोधी बातोंको त्यागकर ग्रहण योग्य हैं। जैसे—कोई भी अकुशल धर्म (बुरे काम) हैं वे सभी अधोभाव (अधोगति) को पहुंचानेवाले हैं। जो कोई भी कुशल धर्म (अच्छे काम) हैं वे सभी उपरिभाव (उन्नतिकी तरफ) को पहुंचानेवाले हैं वैसे ही हिंसक पुरुष-पुद्गलको अहिंसा ऊपर -पहुंचानेवाली होती है। इसीतरह इन ४४ बातोंको जानना चाहिये।

जो स्वयं गिरा हुआ है वह दूसरे गिरे हुएको उठाएगा यह संभव नहीं है किंतु जो आप गिरा हुआ नहीं है वही दूसरे गिरे हुएको उठाएगा यह संभव है। जो स्वयं अदान्त (मनके संयमसे रहित) है; अविनीत, अपरि निर्वृत (निर्वाणको न प्राप्त) है वह दूसरेको दान्त, विनीत व परिनिर्वृत करेगा यह संभव नहीं। किंतु

जो स्वयं दान्त, विनीत, परिनिर्वृत्त है वह दूसरेको दान्त, विनीत, परिनिर्वृत्त करेगा यह संभव है। ऐसे ही हिंसक पुरुषके लिये अहिंसा परिनिर्वाणके लिये होती है। इसी तरह ऊपर कही ४० बातोंको जानना चाहिये।

यह मैंने सल्लेख पर्याय या चित्तुप्पाद पर्याय या परिक्रमण पर्याय या उपरिभाव पर्याय या परिनिर्वाण पर्याय उपदेशा है। श्रावकों (शिष्यों) के हितैषी, अनुकम्पक, शास्ताको अनुकम्पा करके जो करना चाहिये वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया। ये वृक्षमूल हैं, ये सूने घर हैं, ध्यानरत होओ, प्रमाद मत करो, पीछे अफसोस करनेवाले मत बनना। यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन है।

नोट–सल्लेख सूत्रका यह अभिप्राय प्रगट होता है कि अपने दोषोंको हटाकरके गुणोंको प्राप्त करना। सम्यक् प्रकार लेखना या कृश करना सल्लेखना है। अर्थात् दोषोंको दूर करना है। ऊपर लिखित ४० दोष वास्तवमें निर्वाणके लिये बाधक हैं। इनहीके द्वारा संसारका भ्रमण होता है।

समयसार ग्रंथमें जैनाचार्य कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं–

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥ ११६ ॥

भावार्थ-कर्मबन्धके कर्ता सामान्य प्रत्यय या आस्रवभाव चार कहे गए हैं। मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय और योग। आपको आपरूप न विश्वास करके और रूप मानना तथा जो अपना नहीं है उसको अपना मानना मिथ्यादर्शन है। आप वह आत्मा है जो निर्वाण स्वरूप है, अनुभवगम्य है। वचनोंसे इतना ही कहा जा-

सक्ता है कि वह जानने देखनेवाला, अमूर्तीक, अविनाशी, अखंड, परम शांत व परमानंदमई एक अपूर्व पदार्थ है। उसे ही अपना स्वरूप मानना सम्यग्दर्शन है। मिथ्यादर्शनके कारण अहंकार और ममकार दो प्रकारके मिथ्याभाव हुआ करते हैं।

तत्वानुशासनमें नागसेन मुनि कहते हैं—

ये कर्मकृता भावाः परमार्थनयेन चात्मनो भिन्नाः।
तत्रात्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपतिः॥ १५॥
शश्वदनात्मीयेषु स्वतनुप्रमुखेषु कर्मजनितेषु।
आत्मीयाभिनिवेशो ममकारो मम यथा देहः॥ १४॥

भावार्थ—जितने भी भाव या अवस्थाएं कर्मोंके उदयसे होती हैं वे सब परमार्थदृष्टिसे आत्माके असली स्वरूपसे भिन्न हैं। उनमें अपनेपनेका मिथ्या अभिप्राय सो अहंकार है। जैसे मैं राजा हूं। जो सदा ही अपनेसे भिन्न हैं जसे शरीर, धन, कुटुम्ब आदि। जिनका संयोग कर्मके उदयसे हुआ है उनमें अपना सम्बन्ध जोड़ना सो ममकार है, जैसे यह देह मेरा है।

अविरति—हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील परिग्रहसे विरक्त न होना अविरति है।

श्री पुरुषार्थसिद्धिउपाय ग्रन्थमें श्री अमृतचंद्राचार्य कहते हैं—

यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम्।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा॥ ४३॥
अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥ ४४॥

भावार्थ—जो क्रोध, मान, माया, या लोभके वशीभूत हो मन

वचन कायके द्वारा भाव प्राण और द्रव्य प्राणोंको कष्ट पहुंचाया जाय या घात किया जाय सो हिंसा है। ज्ञानदर्शन सुख शांति आदि आत्माके भाव प्राण हैं। इनका नाश भावहिंसा है। इंद्रिय, बल, आयु, श्वासोश्वासका नाश द्रव्यहिंसा है। पांच इन्द्रिय, तीन बल–मन, वचन, काय होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, एकेंद्रिय प्राणियोंके चार प्रकार होते हैं। स्पर्शनइन्द्रिय, शरीरबल, आयु, श्वासोश्वास, द्वेन्द्रिय प्राणी लट, शंख आदिके छः प्राण होते हैं। ऊपरके चारमें रसनाइन्द्रिय व वचनबल बढ़ जायगा।

तेन्द्रिय प्राणी चीटी, खटमल आदिके सात प्राण होते हैं। नाक बढ़ जायगी। चौन्द्रिय प्राणी मक्खी, भौंरा आदिके आठ प्राण होते हैं, आंख बढ़ जायगी, पंचेंद्रिय मन रहितके नौ प्राण होते हैं। कान बढ़ जायगे। पंचेंद्रिय मनसहितके दश होते हैं। मनबल बढ़ जायगा।

प्रायः सर्व ही चौपाए गाय, भैंस, हिरण, कुत्ता, बिल्ली आदि सर्व ही पक्षी कबूतर, तोता, मोर आदि, मछलियां, कछुवा आदि, तथा सर्व ही मनुष्य, देव व नारकी प्राणियोंके दश प्राण होते हैं।

जितने अधिक व जितने मूल्यवान प्राणीका घात होगा उतना ही अधिक हिंसाका पाप होगा। इस द्रव्य हिंसाका मूल कारण भावहिंसा है। भावहिंसाको रोक लेनेसे अहिंसाव्रत यथार्थ होजाता है।

जैसा कहा है–रागद्वेषादि भावोंका न प्रगट होना ही अहिंसा है। तथा उनका प्रगट होना ही हिंसा है यह जैनागमका संक्षेप कथन है। निर्वाण साधकके भावहिंसा नहीं होनी चाहिये।

सत्यका स्वरूप—

यदिदं प्रमादयोगादसदभिधानं विधीयते किमपि ।
तदनृतमपि विज्ञेयं तद्भेदाः सन्ति चत्वारः ॥ ९१ ॥

भावार्थ—जो क्रोधादि कषाय सहित मन, वचन व कायके द्वारा अप्रशस्त या कष्टदायक वचन कहना सो झूठ है। उसके चार भेद हैं—

स्वक्षेत्रकालभावैः सदपि हि यस्मिन्निषिध्यते वस्तु ।
तत्प्रथममसत्यं स्यान्नास्ति यथा देवदत्तोऽत्र ॥ ९२ ॥

भावार्थ—जो वस्तु अपने क्षेत्र, काल, या भावसे है तो भी उसको कहा जाय कि नहीं है सो पहला असत्य है। जैसे देवदत्त होनेपर भी कहना कि देवदत्त नहीं है।

असदपि हि वस्तुरूपं यत्र परक्षेत्रकालभावैस्तैः ।
उद्भाव्यते द्वितीयं तदनृतमस्मिन्यथास्ति घटः ॥ ९३ ॥

भावार्थ—पर क्षेत्र, काल, भावसे वस्तु नहीं है तो भी कहना कि है, यह दूसरा झूठ है। जसे घड़ा न होनेपर भी कहना यहां घड़ा है।

वस्तु सदपि स्वरूपात्पररूपेणाभिधीयते यस्मिन् ।
अनृतमिदं च तृतीयं विज्ञेयं गौरिति यथाश्वः ॥ ९४ ॥

भावार्थ—वस्तु जिस स्वरूपसे हो वैसा न कहकर पर स्वरूपसे कहना यह तीसरा झूठ है। जैसे घोड़ा होनेपर कहना कि गाय है।

गर्हितमवद्यसंयुतमप्रियमपि भवति वचनरूपं यत् ।
सामान्येन त्रेधामतमिदमनृतं तुरीयं तु ॥ ९५ ॥

भावार्थ—चौथा झूठ सामान्यसे तीन तरहका वचन है जो वचन गर्हित हो सावद्य हो व अप्रिय हो।

पैशून्यहासगर्भं कर्कशमसमञ्जसं प्रलपितं च।
अन्यदपि यदुत्सूत्रं तत्सर्वं गर्हितं गदितम् ॥ ९६ ॥

भावार्थ—जो वचन चुगलीरूप हो, हास्यरूप हो, कर्कश हो, युक्ति सहित न हो, बकवादरूप हो या शास्त्र विरुद्ध कोई भी वचन हो उसे गर्हित कहा गया है।

छेदनभेदनमारणकर्षणवाणिज्यचौर्यवचनादि।
तत्सावद्यं यस्मात्प्राणिवधाद्याः प्रवर्तन्ते ॥ ९७ ॥

भावार्थ—जो वचन छेदन, भेदन, मारन, खींचनेकी तरफ या व्यापारकी तरफ या चोरी आदिकी तरफ प्रेरणा करनेवाले हों वे सब सावद्य वचन हैं, क्योंकि इनसे प्राणियोंको वध आदि कष्ट पहुंचता है।

अरतिकरं भीतिकरं खेदकरं वैरशोककलहकरम्।
यदपरमपि तापकरं परस्य तत्सर्वमप्रियं ज्ञेयम् ॥ ९८ ॥

भावार्थ—जो वचन अरति, भय, खेद, वैर, शोक, कलह पैदा करे व ऐसे कोई भी वचन जो मनमें ताप या दुःख उत्पन्न करे वह सर्व अप्रिय वचन जानना चाहिये।

अवितीर्णस्य ग्रहणं परिग्रहस्य प्रमत्तयोगाद्यत्।
तत्प्रत्येयं स्तेयं सैव च हिंसा वधस्य हेतुत्वात् ॥ १०२ ॥

भावार्थ—कषाय सहित मन, वचन, कायके द्वारा जो विना दी हुई वस्तुका ले लेना सो चोरी जानना चाहिये, यही हिंसा है। क्योंकि इससे प्राणोंको कष्ट पहुंचाना है।

यद्वेदरागयोगान्मैथुनमभिधीयते तदब्रह्म।
अवतरति तत्र हिंसा वधस्य सर्वत्र सद्भावात् ॥ १०७ ॥

भावार्थ—जो कामभावके राग सहित मन, वचन, कायके द्वारा

मैथुन कर्म या स्पर्श कर्म किया जाय सो अब्रह्म या कुशील है। यहां भी भाव व द्रव्य प्राणोंकी हिंसा हुआ करती है।

या मूर्च्छा नामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः ।
मोहोदयादुदीर्णो मूर्च्छा तु ममत्वपरिणामः ॥ १११ ॥

भावार्थ–धनादि परपदार्थोंमें मूर्च्छा करना सो परिग्रह है इसमें मोहके तीव्र उदयसे ममताभाव पाया जाता है। ममता पैदा करनेके लिये निमित्त होनेसे धनादि परिग्रहका त्याग व्रतीको करना योग्य है।

कषायोंके २५ भेद–वस्त्र सूत्रमें बताये जाचुके हैं—

ऊपर लिखित मिथ्यात्व, अविरति, कषायके वे सब दोष आगये हैं जिनका मन, वचन, कायसे सन्तोष या त्याग करना चाहिये।

इसी तरह सूत्रमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ ध्यानके पीछे चार ध्यान और कहे हैं–(१) आकाशानन्त्यायतन अर्थात् अनंत आकाश है, इस भावमें रमजाना, (२) विज्ञानानन्त्यायतन अर्थात् विज्ञान अनन्त है इसमें रम जाना। यहां विज्ञानसे अभिप्राय ज्ञान शक्तिका लेना अधिक रुचता है। ज्ञान अनन्त शक्तिको रखता है, ऐसा ध्यान करना। यदि यहां विज्ञानका भाव रूप, वेदना, संज्ञा व संस्कारसे उत्पन्न विज्ञानको लिया जावे तो वह समझमें नहीं आता क्योंकि यह इन्द्रियजन्य रूपादिसे होनेवाला ज्ञान नाशवंत है, शांत है, अनन्त नहीं होसक्ता, अनन्त तो वही होगा जो स्वाभाविक ज्ञान है।

तीसरे आकिंचन्य आयतनको कहा है, इसका भी अभिप्राय यही झलकता है कि इस जगतमें कोई भाव मेरा नहीं, है मैं तो एक केवल स्वानुभवगम्य पदार्थ हूं।

चौथा नैवसंज्ञाना संज्ञा आयतनको कहा है। उसका भाव यह है कि किसी वस्तुका नाम है या नाम नहीं है इस विकल्पको हटाकर स्वानुभवगम्य निर्वाणपर लक्ष्य लेजाओ।

ये सब सम्यक् समाधिके प्रकार हैं। अष्टांग बौद्धमार्गमें सम्यक्समाधिको सबसे उत्तम कहा है। इसी तरह जैन सिद्धांतमें मनसे विकल्प हटानेको शून्यरूप आकाशका, ज्ञानगुणका, आकिंचन्य भावका व नामादिकी कल्पना रहितका ध्यान कहा गया है।

तत्वानुशासनमें कहा है–

तदेवानुभवंश्चायमेकाग्र्यं परमृच्छति।
तथात्माधीनमानंदमेति वाचामगोचरं॥ १७०॥

यथा निर्वातदेशस्थः प्रदीपो न प्रकंपते।
तथा स्वरूपनिष्ठोऽयं योगी नैकाग्र्यमुज्झति॥ १७१॥

तदा च परमैकाग्र्याद्बहिरर्थेषु सत्स्वपि।
अन्यन्न किंचनाभाति स्वमेवात्मनि पश्यतः॥ १७२॥

भावार्थ–आपको आपसे अनुभव करते हुए परम एकाग्र भाव होजाता है। तब वचन अगोचर स्वाधीन अनादि प्राप्त होता है। जैसे हवाके झोकेसे रहित दीपक कांपता नहीं है वैसे ही स्वरूपमें ठहरा हुआ योगी एकाग्र भावको नहीं छोड़ता है। तब परम एकाग्र होनेसे व अपने भीतर आपको ही देखनेसे बाहरी पदार्थोंके मौजूद रहते हुए भी उसे कुछ भी नहीं झलकता है। एक आत्मा ही निर्वाण स्वरूप अनुभवमें आता है।

(७) मज्झिमनिकाय सम्यग्दृष्टि सूत्र।

गौतमबुद्धके शिष्य सारिपुत्रने भिक्षुओंको कहा—सम्यक्दृष्टि कही जाती है। कैसे आर्यश्रावक सम्यग्दृष्टि (ठीक सिद्धांतवाला) होता है। उसकी दृष्टि सीधी, वह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धावान, इस सधर्मको प्राप्त होता है तब भिक्षुओंने कहा, सारिपुत्र ही इसका अर्थ कहें।

सारिपुत्र कहने लगे—जब आर्य श्रावक अकुशल (बुराई) को जानता है, अकुशल मूलको जानता है, कुशल (भलाई) को जानता है, कुशल मूलको जानता है, तब वह सम्यक्दृष्टि होता है।

इन चारोंका भेद यह है। (१) प्राणातिपात (हिंसा) (२) अदत्तादान (चोरी), (३) काममें दुराचार, (४) मृषावाद (झूठ), (५) पिशुनवाद (चुगली), (६) परुष वचन (कठोर वचन), (७) संप्रलाप (बकवाद), (८) अभिध्या (लाभ), (९) व्यापाद (प्रतिहिंसा), (१०) मिथ्यादृष्टि (झूठी धारणा) अकुशल हैं।

(१) लोभ, (२) द्वेष, (३) मोह, अकुशल मूल हैं। इन ऊपर कही दश बातोंसे विरति कुशल है। (१) अलोभ, (२) अद्वेष, (३) अमोह कुशल मूल है। जो आर्य श्रावक इन चारोंको जानता है वह राग—अनुशय (मल) का परित्याग कर, प्रतिघ (प्रतिहिंसा या द्वेष) को हटाकर अस्मि (मैं) इस दृष्टिमान (धारणाके अभिमान) अनुशयको उन्मूलन कर अविद्याको नष्ट कर, विद्याको उत्पन्न कर इसी जन्ममें दुःखोंका अन्त करनेवाला सम्यग्दृष्टि होता है।

जब आर्य श्रावक आहार, आहार समुदय (आहारकी

उत्पत्ति), आहार निरोध और आहार निरोध गामिनी प्रतिपद, (आहारके विनाशकी ओर लेजाने मार्ग) को जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। इनका खुलासा यह है–सन्तोंकी स्थिति होनेकी सहायताके लिये भूतों (प्राणियों) के लिये चार आहार हैं–(१) स्थूल या सूक्ष्म कवलिंकार (ग्रास करके खाया जानेवाला) आहार, (२) स्पर्श, (३) मनकी संचेतना, (४) विज्ञान, तृष्णाका समुदय ही आहारका समुदय (कारण) है। तृष्णाका निरोध–आहारका निरोध है; आर्य–अष्टांगिक मार्ग आहार निरोधगामिनी प्रतिपद है जैसे (१) सम्यग्दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक्-वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त (कर्म), (५) सम्यक् आजीव (भोजन), (६) सम्यक् व्यायाम (उद्योग), (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि। जो इनको जानकर सर्वथा रागानुशमको परित्याग करता है वह सम्यग्दृष्टि होता है। जब आर्य श्रावक (१) दुःख, (२) दुःख समुदय (कारण), (३) दुःख निरोध, (४) दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। इसका खुलाशा यह है–जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, परिदेव (रोना), दुःख दौर्मनस्य (मनका संताप), उपायास (परेशानी) दुःख है। किसीकी इच्छा करके उसे न पाना भी दुःख है। संक्षेपमें पांचों उपादान (विषयके तौरपर ग्रहण करने योग्य रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) स्कंध ही दुःख है। वह जो नन्दी उन उन भोगोंको अभिनन्दन करनेवाली, रागसे संयुक्त फिर फिर जन्मनेकी तृष्णा है जैसे (१) काम (इन्द्रिय संभोग) की तृष्णा, (२) भव (जन्मने) की तृष्णा, (३) विभव (धन) की तृष्णा। यह दुःख समुदय (कारण) है।

जो उस तृष्णाका सम्पूर्णतया विराग, निरोध, त्याग, प्रति-निःसर्ग, मुक्ति, अनालय (लीन न होना) वह दुःख निरोध है। ऊपर लिखित आर्य अष्टांगिक मार्ग दुःख निरोधगामिनि प्रतिपद है।

जब आर्य श्रावक जरा मरणको, इसके कारणको, इसके निरोधको व निरोधके उपायको जानता है तब यह सम्यग्दृष्टि होता है।

प्राणियोंके शरीरमें जीर्णता, खांडित्य (दांत टूटना), पालित्य (बालकपना), बलिवत्ता (झुर्री पडना), आयुक्षय, इन्द्रिय परिपाक यह जरा कही जाती है। प्राणियोंका शरीरोंसे च्युति, भेद, अन्तर्धान, मृत्यु, मरण, स्कंधोंका विलग होना, कलेवरका निक्षेप, यह मरण कहा जाता है। जाति समुदय (जन्मका होना) जरा मरण समुदय है। जाति निरोध, जरा मरण निरोध है। वही अष्टांगिक मार्ग निरोधका उपाय है।

जब आर्य श्रावक तृष्णाको, तृष्णाके समुदयको, उसके निरोधको तथा निरोध गामिनी प्रतिपदको जानता है तब यह सम्यग्दृष्टि होता है। तृष्णाके छः आकार हैं—(१) रूप तृष्णा, (२) शब्द तृष्णा, (३) गन्ध तृष्णा, (४) रस तृष्णा, (५) स्पर्श तृष्णा, (६) धर्म (मनके विषयोंकी) तृष्णा। वेदना (अनुभव) समुदय ही तृष्णा समुदय है (तृष्णाका कारण) है। वेदना निरोध ही तृष्णा निरोध है। वही अष्टांगिक मार्ग निरोध प्रतिपद है।

जब आर्य श्रावक वेदनाको, वेदना समुदयको, उसके निरोधको, तथा निरोधगामिनी प्रतिपदको जानता है तब वह

सम्यक्‌दृष्टि होता है। वेदनाके छः प्रकार हैं (१) चक्षु संस्पर्शजा (चक्षुके संयोगसे उत्पन्न) वेदना, (२) श्रोत्र संस्पर्शजा वेदना, (३) घ्राण संस्पर्शजा वेदना, (४) जिह्वा संस्पर्शजा वेदना, (५) काय संस्पर्शजा वेदना, (६) मनः संस्पर्शजा वेदना। स्पर्श (इन्द्रिय और विषयका संयोग) समुदय ही वेदना समुदय है (वेदनाका कारण है।) स्पर्शनिरोधसे वेदनाका निरोध है। वही आष्टांगिक मार्ग वेदना विरोध प्रतिपद् है।

जब आर्य श्रावक स्पर्श (इन्द्रिय और विषयके संयोग)को, स्पर्श समुदयको, उसके निरोधको, तथा निरोधगामिनी प्रतिपद्‌को जानता है तब सम्यक्‌दृष्टि होती है। स्पर्शके छः प्रकार हैं (१) चक्षुः—संस्पर्श (२) श्रोत्र-संस्पर्श, (३) घ्राण—संस्पर्श, (४) जिह्वा—संस्पर्श, (५) काय—संस्पर्श, (६) मन—संस्पर्श। षड् आयतन (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय या तन तथा मन ये छः इन्द्रियां) समुदय ही स्पर्श समुदय (स्पर्शका कारण) है। षडायतन निरोधसे स्पर्श निरोध होता है। वही आष्टांगिक मार्ग निरोधका उपाय है। जब आर्य श्रावक षडायतनको, उसके समुदयको, उसके निरोधको, उस निरोधके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। ये छः आयतन (इन्द्रियां) हैं—(१) चक्षु, (२) श्रोत्र, (३) घ्राण, (४) जिह्वा, (५) काय, (६) मन। नामरूप (विज्ञान और रूप Mind and Matter) समुदय षडायतन समुदय (कारण) है। नामरूप निरोध षडायतन निरोध है। वही अष्टांगिक मार्ग उस निरोधका उपाय है।

जब आर्य श्रावक नामरूपको, उसके समुदयको, उसके निरोधको व निरोधके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है–(१) वेदना–(विषय और इन्द्रियके संयोगसे उत्पन्न मन पर प्रथम प्रभाव), (२) संज्ञा–(वेदनाके अनन्तरकी मनकी अवस्था), (३) चेतना–(संज्ञाके अनन्तरकी मनकी अवस्था), (४) स्पर्श–मनसिकार (मनपर संस्कार) यह नाम है। चार महाभूत (पृथ्वी, जल, आग, वायु) और चार महाभूतोंको लेकर (बन) रूप कहा जाता है। विज्ञान समुदय नाम-रूप समुदय है, विज्ञान निरोध-नामरूप निरोध है, उसका उपाय यही आष्टांगिक मार्ग है।

जब आर्य श्रावक विज्ञानको, विज्ञानके समुदयको, विज्ञान निरोधको व उसके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। छः विज्ञानके समुदाय (काय) हैं–(१) चक्षु विज्ञान, (२) श्रोत्र विज्ञान, (३) घ्राण विज्ञान, (४) जिह्वा विज्ञान, (५) काय विज्ञान, (६) मनो विज्ञान। संस्कार समुदय विज्ञान समुदय है। संस्कार निरोध-विज्ञान निरोध है। उसका उपाय यह आष्टांगिक मार्ग है।

जब आर्य श्रावक संस्कारोंको, संस्कारोंके समुदयको, उनके निरोधको, उसके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। संस्कार (क्रिया, गति) तीन हैं–(१) काय संस्कार, (२) वचन संस्कार, (३) चित्त संस्कार। अविद्या समुदय-संस्कार समुदय है, अविद्या निरोध संस्कार निरोध है। उसका उपाय यही आष्टांगिक मार्ग है।

जब आर्य श्रावक अविद्याको, अविद्या समुदय, अविद्या निरोधको व उसके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। दुःखके विषयमें अज्ञान, दुःख समुदयके विषयमें अज्ञान, दुःख निरोधके विषयमें अज्ञान, दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद्के विषयमें अज्ञान अविद्या है। आस्रव समुदय-अविद्या समुदय है। आस्रव निरोध, अविद्या निरोध है। उसका उपाय यही आष्टांगिक मार्ग है। जब आर्य श्रावक आस्रव (चित्तमल)को, आस्रव समुदयको, आस्रव निरोधको, उसके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। तीन आस्रव हैं—(१) काम आस्रव, (२) भव (जन्मनेका) आस्रव, (३) अविद्या आस्रव। अविद्या समुदय आस्रव समुदय है। अविद्या निरोध आस्रव निरोध है। यही आष्टांगिक मार्ग सुखका उपाय है।

इस तरह वह सब रागानुशय (रागमल) को दूरकर, प्रतिघ (प्रतिहिंसा) अनुशयको हटाकर, अस्मि (मैं हूं) इस दृष्टिमान (धारणाके अभिमान) अनुशयको उन्मूलन कर, अविद्याको नष्टकर, विद्याको उत्पन्न कर, इसी जन्ममें दुःखोंका अन्त करनेवाला होता है। इस तरह आर्य श्रावक सम्यक्दृष्टि होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है। वह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धावान हो इस सद्धर्मको प्राप्त होता है।

नोट—इस सूत्रमें सम्यग्दृष्टि या सत्य श्रद्धावानके लिये पहले ही यह बताया है कि वह मिथ्यात्वको तथा हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व लोभको छोड़े, तथा उनके कारणोंको त्यागे। अर्थात्

लोभ (राग), द्वेष, व मोहको छोड़े, वह वीतरागी होकर अहं-कारका त्याग करे। निर्वाणके सिवाय जो कुछ यह अपनेको मान रहा था, उस भावको त्याग करे तब यह अविद्यासे हटकर विद्याको या सच्चे ज्ञानको उत्पन्न करेगा व इसी जन्ममें निर्वाणका अनुभव करता हुआ सुखी होगा, दुःखोंका अन्त करनेवाला होगा। यदि कोई निर्वाण स्वरूप आत्मा नहीं हो तो इस तरहका कथन होना ही संभव नहीं है। अभावका अनुभव नहीं होसक्ता है। यहां स्वानुभवको ही सम्यक्त कहा है। यही बात जैन सिद्धांतमें कही है। विद्याका उत्पन्न होना ही आत्मीक ज्ञानका जन्म है। आगे चल-कर बताया है कि तृष्णाके कारणसे चार प्रकारका आहार होता है। (१) भोजन, (२) पदार्थोंका रागसे स्पर्श, (३) मनमें उनका विचार, (४) तत्सम्बन्धी विज्ञान। जब तृष्णाका निरोध होजाता है तब ये चारों प्रकारके आहार बंद होजाते हैं। तब शुद्ध ज्ञानानं-दका ही आहार रह जाता है। सम्यक्दृष्टि इस बातको जानता है। यह बात भी जैन सिद्धांतके अनुकूल है। साधन अष्टांग मार्ग है जो जैनोंके रत्नत्रय मार्गसे मिल जाता है।

फिर बताया है कि दुःख जन्म, जरा, मरण, आधि, व्याधि तथा विषयोंकी इच्छा है जो पांच इन्द्रिय व मनद्वारा इस विषयोंको ग्रहण कर उनके वेदन, आदिसे पैदा होती है। इन दुःखोंका कारण काम या इन्द्रियभोगकी तृष्णा है, भावी जन्मकी तथा संपदाकी तृष्णा है। उनका निरोध तब ही होगा जब आष्टांग मार्गका सेवन करेगा। यह बात भी जैन सिद्धांतसे मिलती है। सांसारीक सर्व दुःखोंका

मूल विषयोंकी तृष्णा है । सम्यक् प्रकार स्वस्वरूपके भीतर रमण करनेसे ही विषयोंकी वासना दूर होती है ।

फिर बताया है कि जरा मरणका कारण जन्म है । जन्मका निरोध होगा तब जरा व मरण न होगा । फिर बताया है पांच इन्द्रिय और मनके विषयोंकी तृष्णाकी उत्पत्ति इन छहोंके द्वारा विषयोंकी वेदना है या उनका अनुभव है । वेदका कारण इन छहोंका और विषयोंका संयोग है । इस संयोगका कारण छहों इन्द्रियोंका होना है । इनकी प्राप्ति नामरूप होनेपर होती है । नामरूप अशुद्ध ज्ञान सहित शरीरको कहते हैं । शरीरकी उत्पत्ति पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुसे होती है वही रूप है । नामकी उत्पत्ति वेदना, संज्ञा, चेतना संस्कारसे होती है । विज्ञान ही नामरूपका कारण है । पांच इन्द्रिय और मन सम्बन्धी ज्ञानको विज्ञान कहते हैं, उसका कारण संस्कार है । संस्कार मन, वचन, काय सम्बन्धी तीन हैं । इसका संस्कार कारण अविद्या है । दुःख, दुःखके कारण, दुःख निरोध और दुःख निरोध मार्गके सम्बन्धमें अज्ञान ही अविद्या है । अविद्याका कारण आस्रव है अर्थात् चित्तमल है वे तीन हैं—काम भाव (इच्छा), भव या जन्मनेकी इच्छा, अविद्या इस आस्रवका भी कारण अविद्या है । आस्रव अविद्याका कारण है ।

इस कथनका सार यह है कि अविद्या या अज्ञान ही सर्व संसारके दुःखोंका मूल है । जब यह रागके वशीभूत होकर अज्ञानसे इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्ति करता है तब उनके अनुभवसे संज्ञा होजाती है । उनका संस्कार पड़ जाता है । संस्कारसे विज्ञान होती

है। अर्थात् एक संस्कारोंका पुंज होजाता है। उसीसे नामरूप होता है। नामरूप ही अशुद्ध प्राणी है, सशरीरी है।

इस सर्व अविद्या व उनके परिवारको दूर करनेका मार्ग सम्यग्दृष्टि होकर फिर आष्टांग मार्गको पालना है। मुख्य सम्यक्समाधिका अभ्यास है। सम्यग्दृष्टि वही है जो इस सर्व अविद्या आदिको त्यागने योग्य समझ ले, इन्द्रिय व मनके विषयोंसे विरक्त होजावे। राग, द्वेष, मोहको दूर कर दे। यहां भी मोहसे प्रयोजन अहंकार ममकारसे है। आपको निर्वाणरूप न जानकर कुछ और समझना। आपके सिवाय परको अपना समझना मोह या मिथ्यादृष्टि है। इसीसे पर इष्ट पदार्थोंमें राग व अनिष्टमें द्वेष होता है। अविद्या सम्बन्धी रागद्वेष मोह सम्यक्दृष्टिके नहीं होता है। उसके भीतर विद्याका जन्म होजाता है, सम्यक्ज्ञान होजाता है। वह निर्वाणका अत्यन्त श्रद्धावान होकर सत्य धर्मका लाभ लेनेवाला सम्यक् दृष्टि होजाता है।

जैन सिद्धांतको देखा जायगा तो यही बात विदित होगी कि अज्ञान सम्बन्धी राग व द्वेष तथा मोह सम्यक्दृष्टिके नहीं होता है। जैन सिद्धांतमें कर्मके संबन्धको स्पष्ट करते हुए, इसी बातको समझाया है। इस निर्वाण स्वरूप आत्माका स्वरूप ही सम्यग्दर्शन या स्वात्म प्रतिति है परन्तु अनादि कालसे उनका प्रकाश पांच प्रकारकी कर्म प्रकृतियोंके आवरणसे या उनके मैलसे नहीं हो रहा है। चार अनंतानुबन्धी (पाषाणकी रेखाके समान) क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व कर्म। अनंतानुबंधी माया और लोभको अज्ञान

संबन्धी राग व क्रोध और मानको अज्ञान संबन्धी द्वेष कहते हैं। मिथ्यात्वको मोह कहते हैं। इस तरह राग, द्वेष, मोहके उत्पन्न करनेवाले कर्मोंका संयोग बाधक है। जैन सिद्धांतमें पुद्गल (Matter) के परमाणुओंके समुदायसे बने हुए एक खास जातिके स्कंधोंको कार्माण वर्गणा Karmic molecules कहते हैं। जब यह संसारी प्राणीसे संयोग पाते हैं तब इनको कर्म कहते हैं। कर्मविपाक ही कर्म फल है।

जब तक सम्यग्दर्शनके घातक या निरोधक इन पांच कर्मोंको दबाया या क्षय नहीं किया जाता है तब तक सम्यग्दर्शनका उदय नहीं होता है। इनके असरको मारनेका उपाय तत्व अभ्यास है। तत्व अभ्यासके लिये चार बातोंकी जरूरत है—(१) शास्त्रोंको पढ़कर समझना, (२) शास्त्रज्ञाता गुरुओंसे उपदेश लेना, (३) पूज्यनीय परमात्मा अरहंत और सिद्धकी भक्ति करना। (४) एकांतमें बैठकर स्वतत्व परतत्वका मनन करना कि एक निर्वाण स्वरूप मेरा शुद्धात्मा ही स्वतत्व है, ग्रहण करने योग्य है तथा अन्य सर्व शरीर वचन व मनके संस्कार व कर्म आदि त्यागने योग्य हैं।

शरीर सहित जीवनमुक्त सर्वज्ञ वीतराग पदधारी आत्माको अरहंत परमात्मा कहते हैं। शरीर रहित अमूर्तीक सर्वज्ञ वीतराग पदधारी आत्माको सिद्ध परमात्मा कहते हैं। इसीलिये जैनागममें कहा है—

चत्तारि मंगलं—अरहंतमंगलं, सिद्धमंगलं, साहूमंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ १ ॥ चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥२॥

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंतसरणं पवज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

चार मंगल हैं—

अरहंत मंगल है, सिद्ध मंगल है, साधु मंगल है, केवलीका कहा हुआ धर्म मंगल (पापनाशक) है। चार लोकमें उत्तम हैं—अरहंत, सिद्ध, साधु व केवली कथित धर्म। चारकी शरण जाता हूं-अरहंत, सिद्ध साधु व केवली कथित धर्म।

धर्मके ज्ञानके लिये शास्त्रोंको पढ़कर दुःखके कारण व दुःख मेटनेके कारणको जानना चाहिये। इसीलिये जैन सिद्धांतमें श्री उमास्वामीने कहा है—" तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं " २।१ तत्व सहित पदार्थोंको श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तत्व सात हैं—" जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्वं " जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, इनसे निर्वाण पानेका मार्ग समझमें आता है। मैं तो अजर, अमर, शाश्वत, अनुभव गोचर, ज्ञानदर्शन-स्वरूप व निर्वाणमय अखण्ड एक अमुर्तीक पदाथ हूं। यह जीव तत्व है। मेरे साथ शरीर सूक्ष्म और स्थूल तथा बाहरी जड़ पदार्थ, या आकाश, काल तथा धर्मास्तिकाय (गमन सहकारी द्रव्य) और अधर्मास्तिकाय (स्थिति सहकारी द्रव्य) ये सब अजीव हैं, मुझसे भिन्न हैं।

कार्माण शरीर जिन कर्मवर्गणाओं (Karmic molecules) से बनता है उनका खिचकर आना सो आस्रव है। तथा उनका सूक्ष्म शरीरके साथ बंधना बंध है। इन दोनोंका कारण मन, वचन कायकी क्रिया तथा क्रोधादि कषाय हैं। इन भावोंके रोकनेसे

उनका नहीं आना संवर है। ध्यान समाधिसे कर्मोंका क्षय करना निर्जरा है। सर्व कर्मोंसे मुक्त होना, निर्वाण लाभ करना मोक्ष है।

इन सात तत्वोंको श्रद्धानमें लाकर फिर साधक अपने आत्माको परसे भिन्न निर्वाण स्वरूप प्रतीत करके भावना भाता है। निरंतर अपने आत्माके मननसे भावोंमें निर्मलता होती है तब एक समय आजाता है जब सम्यग्दर्शनके रोकनेवाले चार अनंतानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वका उपशम कर देता है और सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर लेता है। जब सम्यग्दर्शनका प्रकाश झलकता है तब आत्माका साक्षात्कार होजाता है—स्वानुभव होजाता है। इसी जन्ममें निर्वाणका दर्शन होजाता है। सम्यग्दर्शनके प्रतापसे सच्चा सुख स्वादमें आता है। अज्ञान सम्बन्धी राग, द्वेष, मोह सब चला जाता है, ज्ञान सम्बन्धी रागद्वेष रहता है। जब सम्यग्दृष्टी श्रावक हो अहिंसादि अणुव्रतोंको पालता है तब रागद्वेष कम करता है। जब वही साधु होकर अहिंसादि महाव्रतोंको पालता हुआ सम्यक् समाधिका भले प्रकार साधन करता है तब अरहंत परमात्मा होजाता है। फिर आयुके क्षय होनेपर निर्वाण लाभकर सिद्ध परमात्मा होजाता है।

पंचाध्यायीमें कहा है—

सम्यक्तं वस्तुतः सूक्ष्मं केवलज्ञानगोचरम्।
गोचरं स्वावधिस्वान्तपर्ययज्ञानयोर्द्वयोः॥ ३७५॥
अस्त्यात्मनो गुणः कश्चित् सम्यक्त्वं निर्विकल्पकं।
तद्दृङ्मोहोदयान्मिथ्यास्वादुरूपमनादितः॥ ३७७॥

भावार्थः—सम्यग्दर्शन वास्तवमें केवलज्ञानगोचर अति सूक्ष्म गुण है या परमावधि, सर्वावधि व मनः पर्ययज्ञानका भी विषय है।

वह निर्विकल्प अनुभव गोचर आत्माका एक गुण है। वह दर्शन मोहनीयके उदयसे अनादि कालसे मिथ्या स्वादु रूप होरहा है।

तद्यथा स्वानुभूतौ वा तत्काले वा तदात्मनि।
अस्त्यवश्यं हि सम्यक्त्वं यस्मात्सा न विनापि तत् ॥४०१॥

भावार्थः—जिस आत्मामें जिस काल स्वानुभूति है (आत्माका निर्वाण स्वरूप साक्षात्कार होरहा है) उस आत्मामें उस समय अवश्य ही सम्यक्त्व है। क्योंकि विना सम्यक्तके स्वानुभूति नहीं होसक्ती है।

सम्यग्दृष्टिमें प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य चार गुण होते हैं। इनका लक्षण पंचाध्यायीमें है—

प्रशमो विषयेषूच्चैर्भावक्रोधादिकेषु च।
लोका संख्यातमात्रेषु स्वरूपाच्छिथिलं मनः ॥ ४२६ ॥

भा०—पांच इन्द्रियके विषयोंमें और असंख्यात लोक प्रमाण क्रोधादि भावोंमें स्वभावसे ही मनकी शिथिलता होना प्रशम या शांति है।

संवेगः परमोत्साहो धर्मे धर्मफले चितः।
सधर्मेष्वनुरागो वा प्रीतिर्वा परमेष्ठिषु ॥ ४३१ ॥

भा०—साधक आत्माका धर्ममें व धर्मके फलमें परम उत्साह होना संवेग है। अन्यथा साधर्मियोंके साथ अनुराग करना व अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुमें प्रेम करना भी संवेग है।

अनुकम्पा क्रिया ज्ञेया सर्वसत्त्वेष्वनुग्रहः।
मैत्रीभावोऽथ माध्यस्थं नैःशल्यं वैरवर्जनात् ॥ ४४६ ॥

भावार्थ—सर्व प्राणियोंमें उपकार बुद्धि रखना अनुकम्पा (दया) कहलाती है अथवा सर्व प्राणियोंमें मैत्रीभाव रखना भी अनु-

-कम्पा है या द्वेष बुद्धिको छोडकर माध्यस्थ भाव रखना या वैरभाव छोडकर शल्य रहित या कषाय रहित होना भी अनुकम्पा है।

आस्तिक्यं तत्त्वसद्भावे स्वतः सिद्धे विनिश्चितिः।
धर्मे हेतौ च धर्मस्य फले चाऽऽत्मादि धर्मवत् ॥ ४९२ ॥

भावार्थ–स्वतः सिद्ध तत्वोंके सद्भावमें, धर्ममें, धर्मके कारणमें, व धर्मके फलमें निश्चय बुद्धि रखना आस्तिक्य है। जैसे आत्मा आदि पदार्थोंके धर्म या स्वभाव हैं उनका वैसा ही श्रद्धान करना आस्तिक्य है।

तत्रायं जीवसंज्ञो यः स्वसंवेद्यश्चिदात्मकः।
सोहमन्ये तु रागाद्या हेयाः पौद्गलिका अमी ॥ ४९७ ॥

भावार्थ–यह जो जीव संज्ञाधारी आत्मा है वह स्वसंवेद्य (अपने आपको आप ही जाननेवाला) है, ज्ञानवान है, वही मैं हूं। शेष जितने रागद्वेषादि भाव हैं वे पुद्गलमयी हैं, मुझसे भिन्न हैं, त्यागने योग्य हैं, तत्व खोजियोंको उचित है कि जैन सिद्धांत देखकर सम्यग्दर्शनका विशेष स्वरूप समझें।

(८) मज्झिमनिकाय स्मृतिप्रस्थानसूत्र।

गौतम बुद्ध कहते हैं–भिक्षुओ! ये जो चार स्मृति प्रस्थान हैं वे सत्वोंके कष्ट मेटनेके लिये, दुःख दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, सत्यकी प्राप्तिके लिये, निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात्कार करनेके लिये मार्ग हैं। (१) कायमें काय-अनुपश्यी (शरीरको उसके असल स्वरुप केश, नख, मलमूत्र आदि रुपमें देखनेवाला),

(२) वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी (सुख, दुःख व न दुःख सुख इन तीन चित्तकी अवस्थारूपी वेदनाओंको जैसा हो वैसा देखनेवाला। (३) चित्तमें चित्तानुपश्यी, (४) धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो, उद्योगशील अनुभव ज्ञानयुक्त, स्मृतिवान् लोकमें (संसार या शरीर) में (अभिध्या) लोभ और दौर्यमस्य (दुःख) को हटाकर विहरता है।

(१) कैसे भिक्षु कायमें कायानुपश्यी हो विहरता है। भिक्षु आराममें वृक्षके नीचे या शून्यागारमें आसन मारकर, शरीरको सीधा कर, स्मृतिको सामने रखकर बैठता है। वह स्मरण रखते हुए श्वास छोड़ता है, श्वास लेता है। लम्बी या छोटी श्वास लेना सीखता है, कायके संस्कारको शांत करते हुए श्वास लेना सीखता है, कायके भीतरी और बाहरी भागको जानता है, कायकी उत्पत्तिको देखता है, कायमें नाशको देखता है। कायको कायरूप जानकर तृष्णासे अलिप्त हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं मेरा करके) नहीं ग्रहण करता है। भिक्षु जाते हुए, बैठते हुए, गमन-आगमन करते हुए, सकोड़ते, फैलाते हुए, खाते-पीते, मलमूत्र करते हुए, खड़े होते, सोते-जागते, बोलते, चुप रहते जानकर करनेवाला होता है। वह पैरसे मस्तक तक सर्व अङ्ग उपाङ्गोंको नाना प्रकार मलोंसे पूर्ण देखता है। वह कायकी रचनाको देखता है कि यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार धातुओंसे बनी है। वह मुर्दा शरीरकी छिन्नभिन्न दशाको देखकर शरीरको उत्पत्ति व्यय स्वभावी जानकर कायको कायरूप जानकर विहरता है।

(२) भिक्षु वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी हो कैसे विहरता है। सुख वेदनाओंको अनुभव करते हुए "सुख वेदना अनुभव-

कर रहा हूं" जानता है। दुख वेदनाको अनुभव करते हुए "दुख-वेदना अनुभव कर रहा हूं" जानता है। अदुःख असुख वेदनाको अनुभव करते हुए "अदुःख असुख वेदनाको अनुभव कर रहा हूं" जानता है।

(३) भिक्षु चित्तम चित्तानुपश्यी हो कैसे विहरता है—वह सराग चित्तको "सराग चित्त है" जानता है। इसी तरह विराग चित्तको विराग रूप, सद्वेष चित्तको सद्वेष रूप, वीत द्वेषको वीत-द्वेष रूप, समोह चित्तको समोहरूप, वीत मोह चित्तको वीत मोहरूप, इसी तरह संक्षिप्त, विक्षिप्त, महद्गत, अमहद्गत, उत्तर, अनुत्तर, समाहित, (एकाग्र), असमहित, विमुक्त, अविमुक्त चित्तको जानकर विहरता है।

(४) भिक्षु धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो कैसे विहरता है—भिक्षु पांच नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। वे पांच नीवरण हैं—(१) कामच्छन्द—विद्यमान कामच्छन्दको, अविद्यमान कामच्छन्दको, अनुत्पन्नकामच्छन्दकी कैसे उत्पत्ति होती है। उत्पन्न कामच्छन्दका कैसे विनाश होता है। विनष्ट कामच्छन्दकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, जानता है। इसी तरह (२) व्यापाद (द्रोहको), (३) स्त्या-गृद्ध (शरीर व मनकी अलसता) को, (४) उद्धचकुक्कुच (उद्वेग-खेद) को तथा (५) विचिकित्सा (संशय) को जानता है। यह पांच उपादान स्कंध धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। वह अनुभव करता है कि यह (१) रूप है, यह रूपकी उत्पत्ति है। यह रूपका विनाश है, (२) यह वेदना है—यह

वेदनाकी उत्पत्ति है, यह वेदनाका विनाश है, (३) यह संज्ञा है—यह संज्ञाकी उत्पत्ति है, यह संज्ञाका विनाश है, (४) यह संस्कार है, यह संस्कारकी उत्पत्ति है, यह संस्कारका विनाश है, (५) यह विज्ञान है—यह विज्ञानकी उत्पत्ति है, यह विज्ञानका विनाश है।

वह छः शरीरके भीतरी और बाहरी आयतन धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है, भिक्षु—(१) चक्षुको व रूपको अनुभव करता है। उन दोनोंका संयोजन कैसे उत्पन्न होता है उसे भी अनुभव करता है, जिस प्रकार अनुत्पन्न संयोजनकी उत्पत्ति होती है उसे भी जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न संयोजनका नाश होता है उसे भी जानता है। जिस प्रकार नष्ट संयोजनकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती उसे भी जानता है। इसी तरह (२) श्रोत्र व शब्दको, (३) घ्राण व गंधको (४) जिह्वा व रसको (५) काया व स्पर्शको (६) मन व मनके धर्मोंको। इस तरह भिक्षु शरीरके भीतर और बाहरवाले छः आयतन धर्मोंका स्वभाव अनुभव करते हुए विहरता है।

वह सात बोधिअंग धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है (१) स्मृति—विद्यमान भीतरी (अध्यात्म) स्मृति बोधिअंगको मेरे भीतर स्मृति है, अनुभव करता है। अविद्यमान स्मृतिको मेरे भीतर स्मृति नहीं है, अनुभव करता है। जिस प्रकार अनुत्पन्न स्मृतिकी उत्पत्ति होती है उसे जानता है, जिस प्रकार स्मृति बोधिअंगकी भावना पूर्ण होती है उसे भी जानता है। इसी तरह (२) धर्मविचय (धर्म अन्वेषण), (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि (शांति),

(६) समाधि, (७) उपेक्षा बोधि अंगोंके सम्बन्धमें जानता है। (बोधि (परमज्ञान) प्राप्त करनेमें ये सातों परम सहायक हैं इसलिये इनको बोधिअंग कहा जाता है)

वह भिक्षु चार आर्य सत्य धर्मोंमें धर्म अनुभव करते विहरता है। (१) यह दुःख है, ठीक२ अनुभव करता है, (२) यह दुःखका समुदय या कारण है, (३) यह दुःख निरोध है, (४) यह दुःख निरोधकी ओर लेजानेवाला मार्ग है, ठीक ठीक अनुभव करता है।

इसी तरह भिक्षु भीतरी धर्मोंमें धर्मानुपश्यी होकर विहरता है। अलग्न (अलिप्त) हो विहरता है। लोकमें किसीको भी "मैं और मेरा" करके नहीं ग्रहण करता है।

जो कोई इन चार स्मृति प्रस्थानोंको इस प्रकार सात वर्ष भावना करता है उसको दो फलोंमें एक फल अवश्य होना चाहिये। इसी जन्ममें आज्ञा (अर्हत्व) का साक्षात्कार वा उपाधि शेष होनेपर अनागामी भाव रहनेको सात वर्ष, जो कोई छः वर्ष, पांच वर्ष, चार वर्ष, तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष, सात मास, छः मास, पांच मास, चार मास, तीन मास, दो मास, एक मास, अर्ध मास या एक सप्ताह भावना करे वह दो फलोंमेंसे एक फल अवश्य पावे। ये चार स्मृति प्रस्थान सत्वोंके शोक कष्टकी विशुद्धिके लिये दुःख-दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, सत्यकी प्राप्तिके लिये, निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये एकायन मार्ग है।

नोट-इस सूत्रमें पहले ही बताया है कि ये चार स्मृतियें निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात्कार करनेके लिये मार्ग हैं। ये वाक्य

प्रगट करते हैं कि निर्वाण कोई अस्तिरूप पदार्थ है जो प्राप्त किया जाता है या जिसका साक्षात्कार किया जाता है। वह अभाव नहीं है। कोई भी बुद्धिमान अभावके लिये प्रयत्न नहीं करेगा। वह अस्ति रूप पदार्थ सिवाय शुद्धात्माके और कोई नहीं होसक्ता है। वही अज्ञात, अमर, शांत, पंडित वेदनीय है। जैसे विशेषण निर्वाणके सम्बन्धमें बौद्ध पाली पुस्तकोंमें दिये हुए हैं।

ये चारों स्मृति प्रस्थान जैन सिद्धांतमें कही हुई बारह अपेक्षाओंमें गर्भित होजाती हैं। जिनके नाम अनित्य, अशरण आदि सर्वास्रव सूत्र नामके दूसरे अध्यायमें कहे गए हैं।

(१) **पहला स्मृति प्रस्थान**—शरीरके सम्बन्धमें है कि वह साधक पवन संचार या प्राणायामकी विधिको जानता है। शरीरके भीतर-बाहर क्या है, कैसे इसका वर्ताव होता है। यह मल, मूत्र तथा रुधिरादिसे भरा है। यह पृथ्वी आदि चार धातुओंसे बना है। इसके नाशको विचार कर शरीरसे उदासीन होजाता है। न शरीररूप मैं हूं न यह मेरा है। ऐसा वह शरीरसे अलिप्त होजाता है।

जैन सिद्धांतमें बारह भावनाओंके भीतर **अशुचि** भावनामें यही विचार किया गया है।

श्री **देवसेनाचार्य** तत्त्वसारमें कहते हैं—

मुक्खो विणासरूवो चेयणपरिवज्जिओ सयादेहो।
तस्स ममत्ति कुणंतो बहिरप्पा होइ सो जीओ॥ ४८॥
रोयं सडणं पडणं देहस्स य पिच्छिऊण जरमरणं।
जो अप्पाणं झायदि सो मुचइ पंच देहेहिं॥ ४९॥

भावार्थ—यह शरीर मूर्ख है, अज्ञानी है, नाशवान है, न सदा

ही चेतना रहित है। जो इसके भीतर ममता करता है वह जीव बहिरात्मा-मूढ़ है। ज्ञानी आत्मा शरीरको रोगोंसे भरा हुआ, सड़नेवाला, पड़नेवाला व जरा तथा मरणसे पूर्ण देखकर इससे तृष्णा छोड़ देता है और अपना ही ध्यान करता है। वह पांच प्रकारके शरीरसे छूटकर शुद्ध व अशरीर होजाता है। जैन सिद्धांतमें सर्व प्राणियोंके सम्बन्ध करनेवाले पांच शरीरोंको माना है। (१) औदारिक शरीर—वह स्थूल शरीर जो बाहरी दीखनेवाला मनुष्य, पशु, पक्षी, कीटादि, वृक्षादि, सर्व तिर्यंचोंके होता है। (२) वैक्रियिक शरीर—जो देव तथा नारकी जीवोंका स्थूल शरीर है। (३) आहारक—तपस्वी मुनियोंके मस्तकसे बनकर किसी अरहन्त या श्रुतके पूर्ण ज्ञाताके पास जानेवाला व मुनिके संशयको मिटानेवाला यह एक दिव्य शरीर है। (४) तैजस शरीर—बिजलीका शरीर electric body. (५) कार्माण शरीर—पाप पुण्य कर्मका बना शरीर ये दोनों शरीर तैजस और कार्माण सर्व संसारी जीवोंके हर दशामें पाए जाते हैं। एक शरीरको छोड़ते हुए ये दो शरीर साथ साथ जाते हैं। इनसे भी जब मुक्ति होती है तब निर्वाणका लाभ होता है।

श्री पूज्यपाद स्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

भवंति प्राप्य यत्संगमशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः संततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ॥ १८ ॥

भावार्थ—जिसकी संगति पाकर पवित्र भोजन, फूलमाला, वस्त्रादि पदार्थ अपवित्र होजाते हैं। वे जो क्षुधा आदि दुःखोंसे पीड़ित हैं व नाशवान हैं उस कायके लिये तृष्णा रखना वृथा है। इसकी रक्षा करते २ भी यह एक दिन अवश्य छूट जाता है।

श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासनम कहते हैं–

अस्थिस्थूलतुलाकलापघटितं नद्धं शिरास्नायुभि-
श्चर्माच्छादितमस्रसान्द्रपिशितैर्लिप्तं सुगुप्तं खलैः ।
कर्मारातिभिरायुरुच्चनिगलालग्नं शरीरालयं
कारागारमवेहि ते हतमते प्रीतिं वृथा मा कृथाः ॥ ५९ ॥

भावार्थ–हे निर्बुद्धि ! यह शरीररूपी कैदखाना तेरे लिये कर्मरूपी दुष्ट शत्रुओंने बनाकर तुझे कैदमें डाल दिया है। यह कैदखाना हड्डियोंके मोटे समूहोंसे बनाया गया है, नशोंके जालसे बंधा गया है। रुधिर, पीप, मांससे भरा है, चमड़ेसे ढका हुआ है, आयुरूपी बेड़ियोंसे जकड़ा है। ऐसे शरीरमें तू वृथा मोह न कर।

श्री अमृतचन्द्राचार्य तत्वार्थसारमें कहते हैं–

नानाकृमिशताकीर्णे दुर्गन्धे मलपूरिते ।
आत्मनश्च परेषां च क्व शुचित्वं शरीरके ॥ ३६–६ ॥

भावार्थ–यह शरीर अनेक तरहके सैंकड़ों कीड़ोंसे भरा है। मलसे पूर्ण है। यह अपनेको व दूसरेको अपवित्र करनेवाला है, ऐसे शरीरमें कोई पवित्रता नहीं है, यह वैराग्यके योग्य है।

(२) **वेदना**–दूसरा स्मृति-प्रस्थान यह बताया है कि सुखको सुख, दुःखको दुःख, असुख-अदुःखको असुख-अदुःख–जैसा इनका स्वरूप है वैसा स्मरणमें लेवे। सांसारिक सुखका भाव तब होता है जब कोई इष्ट वस्तु मिल जाती है उस समय मैं सुखी यह भाव होता है। दुःखका भाव तब होता है जब किसी अनिष्ट वस्तुका संयोग हो या इष्ट वस्तुका वियोग हो या कोई रोगादि पीड़ा हो। जब हम किसी ऐसे कामको कर रहे हैं, जहां रागद्वेष तो हैं परन्तु

सुख या दुःखके अनुभवका विचार नहीं है, उस समय अदुःख असुख भावका अनुभव करना चाहिये जैसे हम पत्र लिख रहे हैं, मकान साफ कर रहे हैं, पढ़ा रहे हैं। जैन शास्त्रमें कर्मफल चेतना और कर्म चेतना बताई हैं। कर्मफल चेतनामें मैं सुखी या मैं दुःखी ऐसा भाव होता है। कर्म चेतनामें केवल राग व द्वेषपूर्वक काम करनेका भाव होता है, उस समय दुःख या सुखका भाव नहीं है। इसीको यहां पाली सूत्रमें अदुःख असुखका अनुभव कहा है, ऐसा समझमें आता है। ज्ञानी जीव इन्द्रियजनित सुखको हेय अर्थात् त्यागने योग्य जानता है, आत्मसुखको ही सच्चा सुख जानता है। वह सुख तथा दुःखको भोगते हुए पुण्य कर्म व पाप-कर्मका फल समझकर न तो उन्मत्त होता है और न क्लेशभाव युक्त होता है। जैन सिद्धांतमें विपाकविचय धर्मध्यान बताया है कि सुख व दुःखको अनुभव करते हुए अपने ही कर्मोंका विपाक है ऐसा समझना चाहिये।

श्री तत्वार्थसारमें कहा है—

द्रव्यादिप्रत्ययं कर्म फलानुभवनं प्रति।
भवति प्रणिधानं यद्विपाकविचयस्तु सः॥ ४२–७॥

भावार्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल आदिके निमित्तसे जो कर्म अपना फल देता है उस समय उसे अपने ही पूर्व किये हुए कर्मका फल अनुभव करना विपाक विचय धर्मध्यान है।

इष्टोपदेशमें कहा है—

वासनामात्रमेवैतत्सुखं दुःखं च देहिनां।
तथा ह्युद्वेजयंत्येते भोगा रोगा इवापदि॥ ६॥

भावार्थ–संसारी प्राणियोंके भीतर अनादिकालकी यह वासना है कि शरीरादिमें ममता करते हैं इसलिये जब मनोज्ञ इन्द्रिय विषयकी प्राप्ति होती है तब सुख, जब इसके विरुद्ध हो तब दुःख अनुभव कर लेते हैं। परन्तु ये ही भोग जिनसे सुख मानता है आपत्तिके समय, चिन्ताके समय रोगके समय अच्छे नहीं लगते हैं। भूख प्याससे पीडित मानवको सुंदर गाना बजाना व सुंदर स्त्रीका संयोग भी दुःखदाई भासता है, अपनी कल्पनासे यह प्राणी सुखी दुःखी होजाता है। तत्वसारमें कहा है—

भुंजंतो कम्मफलं कुणइ ण रायं च तह य दोसं वा।
सो संचियं विणासइ अहिणवकम्मं ण बंधेइ ॥ ६१ ॥
भुंजंतो कम्मफलं भावं मोहेण कुणइ सुहमसुहं।
जइ तं पुणोवि बंधइ णाणावरणादि अट्ठविहं ॥ ६२ ॥

भावार्थ–जो ज्ञानी कर्मोंका फल सुख या दुःख भोगते हुए उनके स्वरूपको जसाका तैसा जानकर राग व द्वेष नहीं करता है वह उस संचित कर्मको नाश करता हुआ नवीन कर्मोंको नहीं बांधता है, परन्तु जो कोई अज्ञानी कर्मोंका फल भोगता हुआ मोहसे सुख व दुःखमें शुभ या अशुभ भाव करता है अर्थात् मैं सुखी या मैं दुःखी इस भावनामें लिप्त होजाता है वह ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मोंको बांध लेता है।

श्री समन्तभद्राचार्य सांसारिक सुखकी असारता बताते हैं–
स्वयंभूस्तोत्रमें कहा है—

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥१३॥

भावार्थ-हे संभवनाथ स्वामी! आपने यह उपदेश दिया है कि ये इन्द्रियोंके सुख बिजलीके चमत्कारके समान नाशवान हैं। इनके भोगनेसे तृष्णाका रोग बढ़ जाता है। तृष्णाकी वृद्धि निरन्तर चिंताका आताप पैदा करती है। इस आतापसे प्राणी कष्ट पाता है।

श्री रत्नकरण्डमें कहा है—

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकांक्षणा स्मृता ॥ १२ ॥

भावार्थ-सम्यक्दृष्टी इन्द्रियोंके सुखोंमें श्रद्धा नहीं रखता है व समझता है कि ये सुख पूर्व बांधे हुए पुण्य कर्मोंके आधीन हैं, अन्त सहित हैं, इनके भीतर दुःख भरा हुआ है। तथा पाप-कर्मके बन्धके कारण हैं।

श्री कुलभद्राचार्य सार समुच्चयमें कहते हैं—

इन्द्रियप्रभवं सौख्यं सुखाभासं न तत्सुखम् ।
तच्च कर्मविबन्धाय दुःखदानैकपण्डितम् ॥ ७७ ॥

भावार्थ-इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाला सुख सुखसा झलकता है परन्तु वह सच्चा सुख नहीं है। इससे कर्मोंका बन्ध होता है व केवल दुःखोंको देनेमें चतुर है।

शक्रचापसमा भोगाः सम्पदो जलदोपमाः ।
यौवनं जलरेखेव सर्वमेतदशाश्वतम् ॥ १९१ ॥

भावार्थ-ये भोग इन्द्रधनुषके समान चंचल ,हैं छूट जाते हैं, ये सम्पदाएं बादलोंके समान सरक जाती हैं, यह युवानी जलमें खींची हुई रेखाके समान नाश होजाती है। ये सब भोग, सम्पत्ति व युवानी आदि क्षणभंगुर हैं व अनित्य हैं।

(३) तीसरी स्मृति यह बताई है कि चित्तको जैसा हो वैसा जाने। इसका भाव यह है कि ज्ञानी अपने भावोंको पहचाने। जब परिणामोंमें राग, द्वष, मोह, आकुलता, चंचलता, दीनता हो तब वैसा जाने। उसको त्यागने योग्य जाने और जब भावोंमें राग, द्वेष, मोह न हो, निराकुल चित्त हो, स्थिर हो, व उदार हो तब वैसा जाने। वीतराग भावोंको उपादेय या ग्रहण योग्य समझे।

पांचवें वस्त्र सूत्रमें अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि पच्चीस कषायोंको गिनाया गया है। ज्ञानी पहचान लेता है कि कब मेरे कैसे भाव किस प्रकारके राग व द्वेषसे मलीन हैं। जो मैलको मैल व निर्मलताको निर्मल जानेगा वही मैलसे हटने व निर्मलता प्राप्त करनेका यत्न करेगा।

सार समुच्चयमें कहते हैं—

> रागद्वेषमयो जीवः कामक्रोधवशे यतः।
> लोभमोहमदाविष्टः संसारे संसरत्यसौ ॥ २४ ॥
> कामक्रोधस्तथा मोहस्त्रयोऽप्येते महाद्विषः।
> एतेन निर्जिता यावत्तावत्सौख्यं कुतो नृणाम् ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो जीव रागी है, द्वेषी है व काम तथा क्रोधके वश है लोभ या मोह या मदसे घिरा हुआ है वह संसारमें भ्रमण करता है। काम, क्रोध, मोह या रागद्वेष मोह ये तीनों ही महान् शत्रु हैं। जो कोई इनके वशमें जबतक है तबतक मानवोंको सुख कहांसे होसक्ता है।

(४) चौथी स्तुति धर्मोंके सम्बन्धमें है।

(१) पहली बात यह बताई है कि ज्ञानीको पांच नीवरण दोषोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये कि (१) कामभाव, (२) द्रोहभाव,

(३) आलस्य, (४) उद्वेग–खेद (५) संशय। ये मेरे भीतर हैं या नहीं हैं तथा यदि नहीं हैं तो किन कारणोंसे इनकी उत्पत्ति होसक्ती है। तथा यदि हैं तो इनका नाश कैसे किया जावे तथा मैं कौनसा यत्न करूं कि फिर ये पैदा न हों। आत्मोन्नतिमें ये पांच दोष बाधक हैं–

(२) दूसरी बात यह बताई है कि पांच उपादान स्कंधोंकी उत्पत्ति व नाशको समझना है। सारा संसारका प्रपंचजाल इसमें गर्भित है। रूपसे वेदना, वेदनासे संज्ञा, संज्ञासे संस्कार, संस्कारसे विज्ञान होता है। ये सर्व अशुद्ध ज्ञान हैं जो पांच इंद्रिय और मनके कारण होते हैं। इनका नाश तत्व मननसे होता है।

तत्वसारमें कहा है—

रूसइ तूसइ णिच्चं इंदियविसयेहिं संगओ मूढो।
सकसाओ अण्णाणी णाणी एदो दु विवरीदो॥ ३१॥

भावार्थ–अज्ञानी क्रोध, मान, माया लोभके वशीभूत होकर सदा अपनी इन्द्रियोंसे अच्छे या बुरे पदार्थोंको ग्रहण करता हुआ रागद्वेष करके आकुलित होता है। ज्ञानी इनसे अलग रहता है।

बौद्ध साहित्यमें इन्हीं पांच उपादान स्कंधोंके क्षयको निर्वाण कहते हैं जिसका अभिप्राय जैन सिद्धांतानुसार यह है कि जितने भी विचार व अशुद्ध ज्ञानके भेद पांच इन्द्रिय व मनके द्वारा होते हैं, उनका जब नाश होजाता है तब शुद्ध आत्मीक ज्ञान या केवलज्ञान प्रगट होता है। यह शुद्ध ज्ञान निर्वाण स्वरूप आत्माका स्वभाव है।

(३) फिर बताया है कि चक्षु आदि पांच इन्द्रिय और मनसे पदार्थोंका सम्बन्ध होकर जो रागद्वेषका मल उत्पन्न होता है, उसे

जानता है कि कैसे उत्पन्न हुआ है तथा यदि वर्तमानमें इन छः विषयोंका मल नहीं है तो वह आगामी किन२ कारणोंसे पैदा होता है उनको भी जानता है तथा जो उत्पन्न मल है वह कैसे दूर हो इसको भी जानता है तथा नाश हुआ राग द्वेष फिर न पैदा हो उसके लिये क्या सम्हाल रखनी इसे भी जानता है। यह स्मृति इन्द्रिय और मनके जीतनेके लिये बड़ी ही आवश्यक है।

निमित्तोंको बचानेसे ही इन्द्रिय सम्बन्धी राग हट सक्ता है। यदि हम नाटक, खेल, तमाशा देखेंगे, शृंगार पूर्ण ज्ञान सुनेंगे, अत्तर फुलेल सूंघेंगे, स्वादिष्ट भोजन रागयुक्त होकर ग्रहण करेंगे, मनोहर वस्तुओंको स्पर्श करेंगे, पूर्वरत भोगोंको मनमें स्मरण करेंगे व आगामी भोगोंकी वांछा करेंगे तब इन्द्रिय विषय सम्बन्धी राग द्वेष दूर नहीं होता। यदि विषय राग उत्पन्न होजावे तो उसे मल जानकर उसके दूर करनेके लिये आत्मतत्वका विचार करे। आगामी फिर न पैदा हो इसके लिये सदा ही ध्यान, स्वाध्याय, व तत्व मननमें व सत्संगतिमें व एकांत सेवनमें लगा रहे।

जिसको आत्मानन्दकी गाढ रुचि होगी वह इन्द्रिय वचन सम्बन्धी मलोंसे अपनेको बचा सकेगा। ध्यानीको स्त्री पुरुष नपुंसक रहित एकांत स्थानके सेवनकी इसीलिये आवश्यक्ता बताई है कि इन्द्रियोंके विषय सम्बन्धी मल न पैदा हों।

तत्वानुशासनमें कहा है—

शून्यागारे गुहायां वा दिवा वा यदि वा निशि।
स्त्रीपशुक्लीबजीवानां क्षुद्राणामप्यगोचरे ॥ ९० ॥

अन्यत्र वा क्वचिद्देशे प्रशस्ते प्रासुके समे ।
चेतनाचेतनाशेषध्यानविघ्नविवर्जिते ॥ ९१ ॥
भूतले वा शिलापट्टे सुखासीनः स्थितोऽथवा ।
सममृज्वायतं गात्रं निःकंपावयवं दधत् ॥ ९२ ॥
नासाग्रन्यस्तनिष्पंदलोचनो मंदमुच्छ्वसन् ।
द्वात्रिंशद्दोषनिर्मुक्तकायोत्सर्गव्यवस्थितः ॥ ९३ ॥
प्रत्याहृत्याक्षलुंटाकांस्तदर्थेभ्यः प्रयत्नतः ।
चिंतां चाकृष्य सर्वेभ्यो निरुध्य ध्येयवस्तुनि ॥ ९४ ॥
निरस्तनिद्रो निर्भीतिर्निरालस्यो निरंतरं ।
स्वरूपं वा पररूपं वा ध्यायेदंतर्विशुद्धये ॥ ९५ ॥

भावार्थ—ध्यानीको उचित है कि दिन हो या रात, सूने स्थानमें या गुफामें या किसी भी ऐसे स्थानमें बैठे जो स्त्री, पुरुष, नपुंसक या क्षुद्र जंतुओंसे रहित हो, सचित्त न हो, रमणीक, व सम भूमि हो जहांपर किसी प्रकारके विघ्न चेतनकृत या अचेतनकृत ध्यानमें न होसकें। जमीन पर या शिलापर सुखासनसे बैठे या खड़ा हो, शरीरको सीधा व निश्चल रखे, नाशाग्रदृष्टि हो, लोचन पलक रहित हो, मंद मंद श्वास आता हो, ३२ दोषरहित कामसे ममता छोड़के, इन्द्रिय रूपी लुटेरोंको उनके विषयोंकी तरफ जानेसे प्रयत्न सहित रोककर तथा चित्तको सर्वसे हटाकर एक ध्येय वस्तुमें लगावे। निन्द्राका विजयी हो, आलसी न हो, भयरहित हो। ऐसा होकर अंत-रङ्ग विशुद्ध भावके लिये अपने या परके स्वरूपका ध्यान करे।

एकांत सेवन व तत्व मनन इन्द्रिय व मनके जीतनेका उपाय है।

(४) चौथी बात इस सूत्रमें बताई है कि बोधि या परम-

ज्ञानकी प्राप्तिके लिये सात बातोंकी जरूरत है। यह परमज्ञान विज्ञानसे भिन्न है, यह परमज्ञान निर्वाणका साधक व स्वयं निर्वाण रूप है। इससे साफ झलकता है कि निर्वाण अभावरूप नहीं है किंतु परमज्ञान स्वरूप है। वे सात बातें हैं-(१) स्मृति-तत्वका स्मरण निर्वाण स्वरूपका स्मरण, (२) धर्म विचय-निर्वाण साधक धर्मका विचार, (३) वीर्य-आत्मबलको व उत्साहको बढ़ाकर निर्वाणका साधन करे। (४) प्रीति-निर्वाण व निर्वाण साधनमें प्रेम हो, (५) प्रश्रब्धि-शांति हो राग द्वेष मोह हटाकर भावोंको सम रखे, (६) समाधि-ध्यानका अभ्यास करे, (७) उपेक्षा-वीतरागता-जब वीतरागता आजाती है तब स्वात्मरमण होता है। यही परम ज्ञानकी प्राप्तिका खास उपाय है।

तत्वानुशासनमें कहा है—

सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं स्मृतं।
एतदेव समाधिः स्याल्लोकद्वयफलप्रदः॥ १३७॥
किमत्र बहुनोक्तेन ज्ञात्वा श्रद्धाय तत्वतः।
ध्येयं समस्तमप्येतन्माध्यस्थ्यं तत्र बिभ्रता॥ १३८॥
माध्यस्थ्यं समतोपेक्षा वैराग्यं साम्यमस्पृहः।
वैतृष्ण्यं परमः शांतिरित्येकोऽर्थोऽभिधीयते॥ १३९॥

भावार्थ—जो यह समरससे भरा हुआ भाव है उसे ही एकाग्रता कहते हैं, यही समाधि है। इसीसे इस लोकमें सिद्धि व परलोकमें सिद्धि प्राप्त होती है। बहुत क्या कहे—सर्व ही ध्येय वस्तुको भले प्रकार जानकर व श्रद्धानकर ध्यावे, सर्व पर माध्यस्थ भाव रखे। माध्यस्थ, समता, उपेक्षा, वैराग्य, साम्य, निस्पृहता,

तृष्णा रहितता, परम भाव, शांति इत्यादि उसी समरसी भावके ही भाव हैं इन सबका प्रयोजन आत्मध्यानका सम्बन्ध है।

इनमें जो धर्मविचय शब्द आया है—ऐसा ही शब्द जैन सिद्धांतमें धर्मध्यानके भेदोंमें आया है। देखो तत्वार्थ सूत्र—

" आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं " ॥३६॥९

धर्मध्यान चार तरहका है (१) आज्ञाविचय—शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार तत्वका विचार, (२) अपाय विचय—मेरे व अन्योंके राग द्वेष मोहका नाश कैसे हो. (३) विपाक विचय—कर्मोंके अच्छे या बुरे फलको विचारना, (४) संस्थान विचय-लोकका या अपना स्वरूप विचारना।

बोधि शब्द भी जैनसिद्धांतमें इसी अर्थमें आया है। देखो बारह भावनाओंके नाम। पहले सबासिवसूत्रमें कहे हैं। ११वीं भावना बोधि दुर्लभ है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, गर्भित परम ज्ञान या आत्मज्ञानका लाभ होना बहुत दुर्लभ है ऐसी भावना करनी चाहिये।

(५) पांचमी बात यह बताई है कि वह भिक्षु चार बातोंको ठीकर जानता है कि दुःख क्या है, दुःखका कारण क्या है। दुःखका निरोध क्या है तथा दुःख निरोधका क्या उपाय है।

जैन सिद्धांतमें भी इसी बातको बतानेके लिये कर्मका संयोग जहांतक है वहांतक दुःख है। कर्म संयोगका कारण आस्रव और बंध तत्व बताया है। किनर भावोंसे कर्म आकर बंध जाते हैं, दुःखका निरोध कर्मका क्षय होकर निर्वाणका लाभ है। निर्वाणका

भोग संवर तथा निर्जरा तत्व बताया है। अर्थात् रत्नत्रय धर्मका साधन है जो बौद्धोंके अष्टांग मार्गसे मिल जाता है।

तत्वानुशासनमें कहा है:—

बंधो निबन्धनं चास्य हेयमित्युपदर्शितं।
हेयं स्यादुःखसुखयोर्यस्माद्बीजमिदं द्वयं॥ ४॥

मोक्षस्तत्कारणं चैतदुपादेयमुदाहृतं।
उपादेयं सुखं यस्मादस्मादाविर्भविष्यति॥ ५॥
स्युर्मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणि समासतः।
बंधस्य हेतवोऽन्यस्तु त्रयाणामेव विस्तरः॥ ८॥

ततस्त्वं बंधहेतूनां समस्तानां विनाशतः।
बंधप्रणाशान्मुक्तः सन्न भ्रमिष्यसि संसृतौ॥ २२॥
स्यात्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रितयात्मकः।
मुक्तिहेतुर्जिनोपज्ञं निर्जरासंवरक्रियाः॥ २४॥

भावार्थ- बंध और उसका कारण त्यागने योग्य है। क्योंकि इनहीसे त्यागने योग्य सांसारिक दुःख-सुखकी उत्पत्ति होती है। मोक्ष और उसका कारण उपादेय है। क्योंकि उनसे ग्रहण करने योग्य आत्मानंदकी प्राप्ति होती है। बंधके कारण संक्षेपसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान तथा मिथ्याचारित्र है। इनही तीनका विस्तार बहुत है। हे भाई! यदि तु बंधके सब कारणोंका नाश कर देगा तो मुक्त होजायगा, फिर संसारमें नहीं भ्रमण करेगा। मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र यह रत्नत्रय धर्म है। उन हीके सेवनसे आत्म समाधि प्राप्त होनेसे संवर व निर्जरा होती है, ऐसा जिनेंद्रने कहा है। इस स्टतिमस्थान सूत्रके अंतमें कहा है कि जो इन

चार स्मृति प्रस्थानोंको मनन करेगा वह आर्हत पदका साक्षात्कार करेगा। उसको सत्यकी प्राप्ति होगी, वह निर्वाणको प्राप्त करेगा व निर्वाणको साक्षात् करेगा। इन वाक्योंसे निर्वाणके पूर्वकी अवस्था जैनोंके अर्हंत पदसे मिलती है और निर्वाणकी अवस्था सिद्ध पदसे मिलती है। जैनोंमें जीवनमुक्त परमात्माको आर्हन्त कहते हैं जो सर्वज्ञ वीतराग होते हुए जन्म भरतक धर्मोपदेश करते हैं। वे ही जब शरीर रहित व कर्म रहित मुक्त होजाते हैं तब उनको निर्वाणनाथ या सिद्ध कहते हैं। यह सूत्र बड़ा ही उपकारी है व जैन सिद्धांतसे बिलकुल मिल जाता है।

(९) मज्झिमनिकाय चूलसिंहनाद सूत्र।

गौतम बुद्ध कहते हैं–भिक्षुओ होसक्ता है कि अन्य तैर्थिक (मतवाले) यह कहें। आयुष्मानोंको क्या आश्वास या बल है जिससे यह कहते हो कि यहां ही श्रमण हैं। ऐसा कहनेवालोंको तुम ऐसा कहना–भगवान जाननहार, देखनहार, सम्यक् सम्बुद्धने हमें चार धर्म बताए हैं। जिनको हम अपने भीतर देखते हुए ऐसा कहते हैं 'यहां ही श्रवण है।' ये चार धर्म हैं–(१) हमारी शास्तामें श्रद्धा है, (२) धर्ममें श्रद्धा है, (३) शील (सदाचार)में परिपूर्ण करनेवाला होना है, (४) सहधर्मी गृहस्थ और प्रव्रजित हमारे प्रिय हैं।

हो सकता है अन्य मतानुवादी कहे कि हम भी चारों बातें मानते हैं तब क्या विशेष है। ऐसा कहनेवालोंको कहना क्या

आपकी एक निष्ठा है या पृथक्? वे ठीकसे उत्तर देंगे एक निष्ठा है। फिर कहना क्या यह निष्ठा सरागके सम्बन्धमें है या वीतरागके सम्बन्धमें है वे ठीकसे उत्तर देंगे कि वीतरागके सम्बन्धमें है, इसी तरह पूछनेपर कि वह निष्ठा क्या सद्वेष, समोह, सतृष्णा, सउपादान (ग्रहण करनेवाले), अविद्वान, विरुद्ध, या प्रपंचारामके सम्बन्धमें है या उनके विरुद्धोंमें है तब वे ठीकसे विचारकर कहेंगे कि वह निष्ठा वीतद्वेष, वीतमोह, वीत तृष्णा, अनुपादान, विद्वान, अविरुद्ध, निष्प्रपंचारामर्में है। भिक्षुओ! दो तरहकी दृष्टियां हैं-(१) भव (संसार) दृष्टि, (२) विभव (असंसार) दृष्टि। जो कोई भवदृष्टिमें लीन, भवदृष्टिको प्राप्त, भवदृष्टिमें तत्पर है वह विभव दृष्टिसे विरुद्ध है। जो विभवदृष्टिमें लीन, विभवदृष्टिको प्राप्त, विभवदृष्टिमें तत्पर है वह भवदृष्टिसे विरुद्ध है। जो श्रमण व ब्राह्मण इन दोनों दृष्टियोंके समुदय (उत्पत्ति), अस्तगमन, आस्वाद आदि नव (परिणाम), निस्सरण (निकास) को यथार्थतया नहीं जानते वह सराग, सद्वेष, समोह, सतृष्णा, सउपादान, अविद्वान, विरुद्ध, प्रपंचरत हैं। जो श्रमण इन दोनों दृष्टियोंके समुदय आदिको यथार्थतया जानते हैं वे वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह, वीततृष्णा, अनुपापांन, विद्वान, अविरुद्ध तथा अप्रपंच रत्त हैं व जन्म, जरा, मरणसे छूटे हैं। ऐसा मैं कहता हूं।

भिक्षुओ! चार उपादान हैं-(१) काम (इन्द्रिय भोग) उपादान, (२) दृष्टि (धारणा) उपादान, (३) शीलव्रत उपादान, (४) आत्मवाद उपादान। कोई कोई श्रमण ब्राह्मण सर्व उपादानके त्यागका मत रखनेवाले अपनेको कहते हुए भी सारे उपादान त्याग

नहीं करते। या तो केवल काम उपादान त्याग करते हैं या काम और दृष्टि उपादान त्याग करते हैं या काम, दृष्टि और शीलव्रत उपादान त्याग करते है। किंतु आत्मवाद उपादानको त्याग नहीं करते क्योंकि इस बातको ठीकसे नहीं जानते।

भिक्षुओ! ये चारों उपादान तृष्णा निदानवाले हैं, तृष्णा समुदयवाले हैं, तृष्णा जातिवाले हैं और तृष्णा प्रभववाले हैं।

तृष्णा वेदना निदानवाली है, वेदना स्पर्श निदानवाली है, स्पर्श षडायतन निदानवाला है। षडायतन नाम–रूप निदानवाला है। नाम–रूप विज्ञान निदानवाला है। विज्ञान संस्कार निदानवाला है। संस्कार अविद्या निदानवाले हैं।

भिक्षुओ! जब भिक्षुकी अविद्या नष्ट होजाती है और विद्या उत्पन्न होजाती है। अविद्याके विरागसे, विद्याकी उत्पत्तिसे न काम उपादान पकड़ा जाता है न दृष्टि उपादान न शीलव्रत उपादान न आत्मवाद–उपादान पकड़ा जाता है। उपादानोंको न पकड़नेसे भयभीत नहीं होता, भयभीत न होनेपर इसी शरीरसे निर्वाणको प्राप्त होजाता है "जन्म क्षीण होगया, ब्रह्मचर्यवास पूरा होगया, करना था सो कर लिया, और अब यहां कुछ करनेको नहीं है–" यह जान लेता है।

नोट–इस सूत्रमें पहले चार बातोंको धर्म बताया है–

(१) शास्ता (देव) में श्रद्धा, (२) धर्ममें श्रद्धा, (३) शीलको पूर्ण पालना, (४) साधर्मीसे प्रीति।

फिर यह बताया है कि जिसकी श्रद्धा चारों धर्मोंमें होगी उसकी श्रद्धा ऐसे शास्ता व धर्ममें होगी, जिसमें राग नहीं, द्वेष

नहीं, मोह नहीं, तृष्णा नहीं, उपादान नहीं हो। । तथा जो विद्वान या ज्ञानपूर्ण हो, जो विरुद्ध न हो व जो प्रपंचमें रत न हो।

जैन सिद्धांतमें भी शास्ता उसे ही माना है जो इस सर्व दोषोंसे रहित हो तथा जो सर्वज्ञ हो। स्वात्मरमी हो तथा धर्म भी वीतराग विज्ञान रूप आत्मरमण रूप माना है। तथा सदाचारको सहाई जान पूर्णरने पालनेकी आज्ञा है व साधर्मीसे वात्सल्यभाव रखना सिखाया है।

समंतभद्राचार्य रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहते हैं—

आतेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥ ५ ॥
क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥

शास्ता या आप्त वही है जो दोषोंसे रहित हो, सर्वज्ञ हो व आगमका स्वामी हो। इन गुणोंसे रहित आप्त नहीं होसक्ता। जिसके भीतर १८ दोष नहीं हों वही आप्त है–(१) क्षुधा, (२) त्रषा, (३) जरा, (४) रोग, (५) जन्म, (६) मरण, (७) भय, (८) आश्चर्य, (९) राग, (१०) द्वेष, (११) मोह, (१२) चिंता, (१३) खेद, (१४) स्वेद (पसीना), (१५) निद्रा, (१६) मद, (१७) रति, (१८) शोक।

आत्मस्वरूप ग्रंथमें कहा है—

रागद्वेषादयो येन जिताः कर्ममहाभटाः।
कालचक्रविनिर्मुक्तः स जिनः परिकीर्तितः ॥ २१ ॥
केवलज्ञानबोधेन बुद्धिवान् स जगत्त्रयम्।
अनन्तज्ञानसंकीर्णं तं तु बुद्धं नमाम्यहम् ॥ ३९ ॥

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं स्थानमात्मस्वभावजम्।
प्राप्तं परमनिर्वाणं येनासौ सुगतः स्मृतः ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जिसने कर्मोंमें महान योद्धा स्वरूप रागद्वेषादिको जीत लिया है व जो जन्म मरणके चक्रसे छूट गया है वह जिन कहलाता है। जिसने केवलज्ञान रूपी बोधसे तीन लोकको जान लिया व जो अनन्त ज्ञानसे पूर्ण है उस बुद्धको मैं नमन करता हूं। जिसने सर्व उपाधियोंसे रहित आत्मीक स्वभावसे उत्पन्न परम निर्वाणको प्राप्त कर लिया है वही सुगत कहा गया है।

धर्मध्यानका स्वरूप तत्वानुशासनमें कहा है—

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
तस्माद्यदनपेतं हि धर्म्यं तद्ध्यानमभ्यधुः ॥ ५१ ॥
आत्मनः परिणामो यो मोहक्षोभविवर्जितः।
स च धर्मोऽनपेत यत्तस्मात्तद्धर्म्यमित्यपि ॥ ५२ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रको धर्मके ईश्वरोंने धर्म कहा है। ऐसे धर्मका जो ध्यान है सो धर्मध्यान है। निश्चयसे मोह व क्षोभ (रागद्वेष) रहित जो आत्माका परिणाम है वही धर्म है, ऐसे धर्मसहित ध्यानको धर्मध्यान कहते हैं।

आत्मा निर्वाण स्वरूप है, मोह रागद्वेष रहित है ऐसा श्रद्धान सम्यग्दर्शन है व ऐसा ज्ञान सम्यग्ज्ञान है व ऐसा ही ध्यान सम्यक्चारित्र है। तीनोंका एकीकरण आत्माका वीतरागभाव आत्मतल्लीन रूप ही धर्म है। पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

बद्धोद्यमेन नित्यं लब्ध्वा समयं च बोधिलाभस्य।
पदमवलम्ब्य मुनीनां कर्तव्यं सपदि परिपूर्णम् ॥ २१० ॥

शीलव्रतके सम्बंधमें कहते हैं कि रत्नत्रयके लाभके समयको पाकर उद्यम करके मुनियोंके पदको धारणकर शीघ्र ही चारित्रको पूर्ण पालना चाहिये ।

इसी ग्रन्थमें साधर्मीजनोंसे प्रेम भावको बताया है—

अनवरतमहिंसायां शिवसुखलक्ष्मीनिबन्धने धर्मे ।
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परमं वात्सल्यमालम्ब्यम् ॥ २९ ॥

भावार्थ--धर्मात्माका कर्तव्य है कि निरंतर मोक्ष सुखकी लक्ष्मीके कारण अहिंसाधर्ममें तथा सर्व ही साधर्मीजनोंमें परम प्रेम रखना चाहिये ।

आगे चलके इसी सूत्रमें कहा है कि दृष्टियां दो हैं-एक संसार दृष्टि, दूसरी असंसार दृष्टि । इसीको जैन सिद्धांतमें कहा है व्यवहार दृष्टि तथा निश्चय दृष्टि । व्यवहार दृष्टि देखती है कि अशुद्ध अवस्थाओंकी तरफ लक्ष्य रखती है, निश्चय दृष्टि शुद्ध पदार्थ या निर्वाण स्वरूप आत्मापर दृष्टि रखती है । एक दूसरेसे विरोध हैं । संसारलीन व्यवहारासक्त होता है । निश्चय दृष्टिसे अज्ञान है, निश्चय दृष्टिवाला संसारसे उदासीन रहता है । आवश्यक्ता पडनेपर व्यवहार करता है परन्तु उसको त्यागनेयोग्य जानता है ।

इन दोनों दृष्टियोंको भी त्यागनेका व उनसे निकलनेका जो संकेत इस सूत्रमें किया है वह निर्विकल्प समाधि या स्वानुभवकी अवस्था है । वहां साधक अपने आपमें ऐसा तल्लीन होजाता है कि वहां न व्यवहारनयका विचार है न निश्चयनयका विचार है, यही वास्तवमें निर्वाण मार्ग है । उसी स्थितिमें साधक सच्च वीतराग, ज्ञानी व विरक्त होता है ।

जैन सिद्धांतके वाक्य इस प्रकार हैं—

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम् ।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः ॥ ५ ॥

भावार्थ—निश्चय दृष्टि सत्यार्थ है, व्यवहार दृष्टि अनित्यार्थ है क्योंकि क्षणभंगुर संसारकी तरफ है । प्रायः संसारके प्राणी सत्य पदार्थके ज्ञानसे बाहर हैं—निश्चयदृष्टिको या परमार्थदृष्टिको नहीं जानते हैं ।

समयसार कलशमें कहा है—

एकस्य भावो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२६–३॥

भावार्थ—व्यवहारनय या दृष्टि कहती है कि यह आत्मा कर्मोंसे बन्धा हुआ है । निश्चय दृष्टि कहती है कि यह आत्मा कर्मोंसे बंधा हुआ नहीं है । ये दोनों पक्ष भिन्न २ दो दृष्टियोंके हैं, जो कोई इन दोनों पक्षको छोड़कर स्वरूप गुप्त होजाता है उसके अनुभवमें चैतन्य चैतन्य स्वरूप ही भासता है । और भी कहा है—

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं ॥
विकल्पजालच्युतशान्तचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥२४–३॥

भावार्थ—जो कोई इन दोनों दृष्टियोंके पक्षको छोड़कर स्व-स्वरूपमें गुप्त होकर नित्य ठहरते हैं, सम्यक्—समाधिको प्राप्त कर लेते हैं वे सर्व विकल्प जालोंसे छूटकर शांत मन होते हुए साक्षात् आनन्द अमृतका पान करते हैं, उनको निर्वाणका साक्षात्कार होजाता है, वे परम सुखको पाते हैं । और भी कहा है:—

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः ।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तन्दुलम् ॥ ४८ ॥

भावार्थ–जो व्यवहारदृष्टिमें मूढ हैं वे मानव परमार्थ सत्यको नहीं जानते हैं। जो तुषको चावल समझकर इस अज्ञानको मनमें धारते हैं वे तुषका ही अनुभव करते हैं, उनको तुष ही चावल भासता है। वे चावलको नहीं पासक्ते। निर्वाणको सत्यार्थ समझना यह असंसार दृष्टि है। समाधिशतकमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं—

देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना ।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना ॥ ७४ ॥

भावार्थ–इस शरीरमें या शरीर सम्बन्धी सर्व प्रकार संसर्गोंमें आपा मानना वारवार शरीरके पानेका बीज है। किंतु अपने ही निर्वाण स्वरूपमें आपेकी भावना करनी शरीरसे मुक्त होनेका बीज है।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे ।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥ ७८ ॥
आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः ।
तयोरन्तरविज्ञानादभ्यासादच्युतो भवेत् ॥ ७९ ॥

भावार्थ–जो व्यवहार दृष्टिमें सोया हुआ है अर्थात् व्यवहारसे उदासीन है वही आत्मा सम्बन्धी निश्चय दृष्टिसे जाग रहा है। जो व्यवहारमें जागता है वह आत्माके अनुभवके लिये सोया हुआ है।

अपने आत्माको निर्वाण स्वरूप भीतर देखके व देहादिकको बाहर देखके उनके भेदविज्ञानसे आपके अभ्याससे यह अविनाशी मुक्ति या निर्वाणको पाता है।

आगे चलके इस सूत्रमें चार उपादानोंका वर्णन किया है।

(१) काम या इन्द्रियभोग उपादान, (२) दृष्टि उपादान, (३) शीलव्रत उपादान, (४) आत्मवाद उपादान। इनका भाव यही है कि ये सब उपादान या ग्रहण सम्यक् समाधिमें बाधक हैं। काम उपादानमें साधकके भीतर किंचित् भी इन्द्रियभोगकी तृष्णा नहीं रहनी चाहिये। दृष्टि उपादानमें न तो संसारकी तृष्णा हो न असंसारकी तृष्णा हो, समभाव रहना चाहिये। अथवा निश्चय नय तथा व्यवहार नय किसीका भी पक्षबुद्धिमें नहीं रहना चाहिये। तब समाधि जागृत होगी। शीलव्रत उपादानमें यह बुद्धि नहीं रहनी चाहिये कि मैं सदाचारी हूं। साधुके व्रत पालता हूं, इससे निर्वाण होजायगा। यह आचार व्यवहार धर्म है। मन, वचन, कायका वर्तन है। यह निर्वाण मार्गसे भिन्न है। इनकी तरफसे अहंकार बुद्धि नहीं रहनी चाहिये। आत्मवाद उपादानमें आत्मा सम्बन्धी विकल्प भी समाधिको बाधक है। यह आत्मा नित्य है या अनित्य है, एक है या अनेक है, शुद्ध है या अशुद्ध है, है या नहीं है। किस गुणवाला है, किस पर्यायवाला है इत्यादि आत्मा सम्बन्धी विचार समाधिके समय बाधक है। वास्तवमें आत्मा वचन गोचर नहीं है, वह तो निर्वाण स्वरूप है, अनुभव गोचर है। इन चार उपादानोंके त्यागसे ही समाधि जागृत होगी। इन चारों उपादानोंके होनेका मूल कारण सबसे अंतिम अविद्या बताया है। और कहा है कि साधक भिक्षुकी अविद्या नष्ट होजाती है, विद्या उत्पन्न होती है अर्थात् निर्वाणका स्वानुभव होता है तब वहां चारों ही उपादान नहीं रहते तब वह निर्वाणका स्वयं अनुभव करता है और ऐसा जानता है कि मैं कृतकृत्य हूं, ब्रह्मचर्य पूर्ण हूं, मेरा संसार क्षीण होगया।

जैनसिद्धांतमें स्वानुभवको निर्वाण मार्ग बताया है और वह स्वानुभव तब ही प्राप्त होगा जब सर्व विकल्पोंका या विचारोंका या दृष्टियोंका या कामवासनाओंका या अहंकारका व ममकारका त्याग होगा। निर्विकल्प समाधिका लाभ ही यथार्थ मोक्षमार्ग है। जहां साधकके भावोंमें स्वात्मरसवेदनके सिवाय कुछ भी विचार नहीं है, वह आसत्वमें निर्वाण स्वरूप अपने आत्माको आपसे ग्रहण कर लेता है तब सब मन, वचन, कायके विकल्प छूट जाते हैं।

समयसार कलशमें कहा है—

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत् पृथक् वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम्।
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुर:
शुद्धज्ञानघनो यथास्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ॥४२॥

भावार्थ—ज्ञान ज्ञानस्वरूप होके ठहर गया, और सबसे छूटकर अपने आत्मामें निश्चल होगया, सबसे भिन्न वस्तुपनेको प्राप्त हो गया। उसे ग्रहण त्यागका विकल्प नहीं रहा, वह दोष रहित होगया तब आदि मध्य अंतके विभागसे रहित सहज स्वभावसे प्रकाशमान होता हुआ शुद्ध ज्ञान समूहरूप महिमाका धारक यह आत्मा नित्य उदय रूप रहता है।

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत्।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य सन्धारणमात्मनीह ॥४३॥

भावार्थ—जब आत्मा अपनी पूर्ण शक्तिको संकोच करके अपनेमें ही अपनी पूर्णताको धारण करता है तब जो कुछ सर्व छोड़ना था सो

छूट गया तथा जो कुछ सर्व ग्रहण करना था सो ग्रहण कर लिया। भावार्थ एक निर्वाणस्वरूप आत्मा रह गया, शेष सर्व उपादान रह गया।

समाधिशतकमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं:—

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ॥ १९ ॥

भावार्थ—मैं तो निर्विकल्प हूं, यह सब उन्मत्तपनेकी चेष्टा है कि मैं दूसरोंसे आत्माको समझ लूँगा या मैं दूसरोंको समझा दूँ।

येनात्मनाऽनुभूयेऽहमात्मनैवात्मनात्मनि।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः ॥ २३ ॥

भावार्थ—जिस स्वरूपसे मैं अपने ही द्वारा अपनमें अपने ही समान अपनेको अनुभव करता हूं वही मैं हूं। अर्थात् अनुभवगोचर हूं। न वह नपुंसक है न स्त्री है, न पुरुष है, न एक है, न दो है, न बहुत है, पर्यात सह लिंग व संख्याकी कल्पनासे बाहर है।

(१०) मज्झिमनिकाय महादुःखस्कंध सूत्र।

गौतमबुद्ध कहते हैं—भिक्षुओ! क्या है कामों (भोगों) का आस्वाद, क्या है आदिनव (उनका दुष्परिणाम), क्या है निस्सरण (निकास) इसी तरह क्या है रूपोंका तथा वेदनाओंका आस्वाद, परिणाम और निस्सरण।

(१) क्या है कामोंका दुष्परिणाम—यहां कुल पुत्र जिस किसी शिल्पसे चाहे मुद्रासे या गणनासे या संख्यानसे या कृषिसे या वाणिज्यसे, गोपालनसे या बाण-अस्त्रसे या राजाकी नौकरीसे या

किसी शिल्पसे शीत-उष्ण पीडित, डंस, मच्छर, धूप हवा आदिसे उत्पीड़ित, भूख प्याससे मरता आजीविका करता है। इसी जन्ममें कामके हेतु यह लोक दुःखोंका पुंज है। उस कुल पुत्रको यदि इस प्रकार उद्योग करते, मेहनत करते वे भोग उत्पन्न नहीं होते (जिनको वह चाहता है) तो वह शोक करता है, दुःखी होता है, चिल्लाता है, छाती पीटकर रुदन करता है, मूर्छित होता है। हाय! मेरा प्रयत्न व्यर्थ हुआ, मेरी मिहनत निष्फल हुई, यह भी कायका दुष्परिणाम है। यदि उस कुलपुत्रको इसप्रकार उद्योग करते हुए भोग उत्पन्न होते हैं तो वह उन भोगोंकी रक्षाके लिये दुःख दौर्मनस्य झेलता है। कहीं मेरे भोग राजा न हरले, चोर न हर लेजावें, आग न दाहे, पानी न बहा लेजावे, अप्रिय दायाद न हर लेजावे। इस प्रकार रक्षा करते हुए यदि उन भोगोंको राजा आदि हर लेते हैं या किसी तरह नाश होजाता है तो वह शोक करता है। जो भी मेरा था वह भी मेरा नहीं रहा! यह भी कामोंका दुष्परिणाम है। कामोंके हेतु राजा भी राजाओंसे लड़ते हैं, क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति वैश्य भी परस्पर झगड़ते हैं, माता पुत्र, पिता पुत्र, भाई भाई, भाई बहिन, मित्र मित्र, परस्पर झगड़ते हैं। कलह विवाद करते, एक दूसरेपर हाथोंसे भी आक्रमण करते, डंडोंसे व शस्त्रोंसे भी आक्रमण करते हैं। कोई वहां मृत्युको प्राप्त होते हैं, मृत्यु समान दुःखको सहते हैं। यह भी कामोंका दुष्परिणाम है।

कामोंके हेतु ढाल तलवार लेकर, तीर धनुष चढ़ाकर, दोनों तरफ व्यूह रचकर संग्राम करते हैं, अनेक मरण करते हैं। यह भी कामोंका दुष्परिणाम है।

कामोंके हेतु चोर चोरी करते हैं, सेंध लगाते हैं, गांव उजाड़ डालते हैं, लोग परस्त्रीगमन भी करते हैं तब उन्हें राजा लोग पकड़-कर नानाप्रकार दंड देते हैं। यहांतक कि तलवारसे सिर कटवाते हैं। वे यहां मरणको प्राप्त होते हैं। मरण समान दुःख नहीं। यह भी कामोंका दुष्परिणाम है।

कामोंके हेतु—काय, वचन, मनसे दुश्चरित करते हैं। वे मरकर दुर्गतिमें, नरकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ—जन्मान्तरमें कामोंका दुष्परिणाम दुःखपुंज है।

(२) क्या है कामोंका निस्सरण (निकास) भिक्षुओ! कामोंसे रागका परित्याग करना कामोंका निस्सरण है।

भिक्षुओ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण कामोंके आस्वाद, कामोंके दुष्परिणाम तथा निस्सरणको यथाभूत नहीं जानते वे स्वयं कामोंको छोड़ेंगे व दूसरोंको वैसी शिक्षा देंगे यह संभव नहीं।

(३) क्या है भिक्षुओ! रूपका आस्वाद? जैसे कोई क्षत्रिय, ब्राह्मण, या वैश्य कन्या १५ या १६ वर्षकी, न लम्बी न ठिगनी, न मोटी न पतली, न काली परम सुन्दर हो वह अपनेको रूपवान अनुभव करती है। इसी तरह जो किसी शुभ शरीरको देखकर सुख या सोमनस्स उत्पन्न होता है यह है रूपका आस्वाद।

(४) क्या है रूपका आदिनव या दुष्परिणाम—दूसरे समय उस रूपवान बहनको देखा जावे जब वह अस्सी या नव्वे वर्षकी हो, या १०० वर्षकी हो तो वह अति जीर्ण दिखाई देगी, लकड़ी लेकर चलती दिखेगी। यौवन चला गया है, दांत गिर गए हैं, बाल

सफेद होगए हैं। यही रूपका आदिनव है। जो पहले सुंदर थी सो अब ऐसी होगई है। फिर उसी भगिनीको देखा जावे कि वह रोगसे पीड़ित है, दुःखित है, मल मूत्रसे लिपी हुई है, दूसरोंके द्वारा उठाई जाती है, सुलाई जाती है । यह वही है जो पहले शुभ थी । यह है रूपका आदिनव । फिर उसी भगिनीको मृतक देखा जावे जो एक या दो या तीन दिनका पड़ा हुआ है । वह काक. गृद्ध, कुत्ते, शृगाल आदि प्राणियोंसे खाया जारहा है । हड्डी, मांस, नसें आदि अलगर हैं । सर अलग है, धड़ अलग है । इत्यादि दुर्दशा यह सब रूपका आदिनव या दुष्परिणाम है ।

(५) क्या रूपका निस्सरन-सर्व प्रकारके रूपोंसे रागका परित्याग यह है रूपका निस्सरण ।

जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इसतरह रूपका आस्वाद नहीं करता है, दुष्परिणाम तथा निस्सरण पर्याय रूपसे जानता है वह अपने भी रूपको वैसा जानेगा, परके रूपको भी वैसा जानेगा ।

(६) क्या है वेदनाओंका आस्वाद-यहां भिक्षु कामोंसे विरहित, बुरी बातोंसे विरहित सवितर्क सविचार विवेकसे उत्पन्न प्रीति और सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगता है । उस समय वह न अपनेको पीड़ित करनेका ख्याल रखता है न दूसरेको न दोनोंको, वह पीड़ा पहुंचानेसे रहित वेदनाको अनुभव करता है । फिर वही भिक्षु वितर्क और विचार शांत होनेपर भीतरी शांति और चित्तकी एकाग्रतावाले वितर्क विचार रहित प्रीति सुख-वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । फिर तीसरे फिर चौथे

ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। तब भिक्षु सुख और दुःखका त्यागी होता है, उपेक्षा व स्फूर्तिसे शुद्ध होता है। उस समय वह न अपनेको न दूसरेको न दोनोंको पीड़ित करता है, उस समय वेद-नाको वेदता है। यह है अव्याबाध वेदना आस्वाद।

(७) क्या है वेदनाका दुष्परिणाम—वेदना अनित्य, दुःख और विकार स्वभाववाली है।

(८) क्या है वेदनाका निस्सरण—वेदनाओंसे रागका हटाना, रागका परित्याग, इसतरह जो कोई वेदनाओंका आस्वाद नहीं करता है, उनके आदिनव व निस्सरणको यथार्थ जानता है, वह स्वयं वेदनाओंको त्यागेंगे व दूसरेको भी वैसा उपदेश करेंगे यह संभव है।

नोट—इस वैराग्य पूर्ण सूत्रमें कामभोग, रूप तथा वेदनाओंसे वैराग्य बताया है तथा यह दिखलाया है कि जिस भिक्षुको इन तीनोंका राग नहीं है वही निर्वाणको अनुभव कर सक्ता है। बहुत उच्च विचार है।

(९) काम विचार—काम भोगोंके आस्वादका तो सर्वको पता है इसलिये उनका वर्णन करनेकी जरूरत न समझकर काम भोगोंकी तृष्णासे व इन्द्रियोंकी इच्छासे प्रेरित होकर मानव क्या क्या खटपट करते हैं व किस तरह निराश होते हैं व तृष्णाको बढ़ाते हैं या हिंसा, चोरी आदि पाप करते हैं, राज्यदंड भोगते हैं, फिर दुःखसे मरते हैं, नर्कादि दुर्गतिमें जाते हैं, यह बात साफ साफ बताई है। जिसका भाव यही है कि प्राणी असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवा इन छः आजीविकाका उद्यम करता है, वहां उसके तृष्णा अधिक

होती है कि इच्छित धन मिले। यदि संतोषपूर्वक करे तो संताप कम हो। असंतोषपूर्वक करनेसे बहुत परिश्रम करता है। यदि सफल नहीं होता है तो महान शोक करता है। यदि सफल होगया, इच्छित धन प्राप्त कर लिया तो उस धनकी रक्षाकी चिन्ता करके दुःखित होता है। यदि कदाचित् किसी तरह जीवित रहते नाश होगया तो महान् दुःख भोगता है या आप शीघ्र मर गया तो मैं धनको भोग न सका ऐसा मानकर दुःख करता है। भोग सामग्रीके लाभके हेतु कुटुम्बी जीव परस्पर लड़ते हैं, राजालोग लड़ते हैं, युद्ध होजाते हैं, अनेक मरते हैं, महान् कष्ट उठाते हैं। उन्हीं भोगोंकी लालसासे धन एकत्र करनेके हेतु लोग झूठ बोलते, चोरी करते, डाका डालते, परस्त्री हरण करते हैं। जब वे पकड़े जाते हैं, राजाओं द्वारा भारी दंड पाते हैं, सिर तक छेदा जाता है, दुःखसे मरते हैं। इन्हीं काम भोगकी तृष्णावश मन वचन कायके सर्व ही अशुभ योग कहाते हैं जिनसे पापकर्मका बंध होता है और जीव दुर्गतिमें जाकर दुःख भोगते हैं। जो कोई काम भोगकी तृष्णाको त्याग देता है वह इन सब इस लोक सम्बन्धी तथा परलोक सम्बन्धी दुःखोंसे छूट जाता है। वह यदि गृहस्थ हो तो संतोषसे आवश्यक्तानुसार कमाता है, कम खर्च करता है, न्यायसे व्यवहार करता है। यदि धन नष्ट होजाता है तो शोक नहीं करता है। न तो वह राज्यदंड भोगता है न मरकर दुर्गतिमें जाता है। क्योंकि वह भोगोंकी तृष्णासे ग्रसित नहीं है। न्यायवान धर्मात्मा है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व मूर्छासे रहित है। साधु तो पूर्ण विरक्त होते हैं। वे पांचों इन्द्रियोंकी इच्छाओंसे बिलकुल विरक्त होते हैं। निर्वा-

णके अनुतमई इसके ही प्रेमी होते हैं । ऐसे ज्ञानी कामरागसे छूट जाते हैं ।

जैन सिद्धांतमें इन काम भोगोंकी तृष्णासे बुराईका व इनके त्यागका बहुत उपदेश है । कुछ प्रमाण नीचे दिया जाते हैं–

सार समुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

वरं हालाहलं भुक्तं विषं तद्भवनाशनम् ।
न तु भोगविषं भुक्तमनन्तभवदुःखदम् ॥ ७६ ॥

भावार्थ–हालाहल विषका पीना अच्छा है, क्योंकि उसी जन्मका नाश होगा, परन्तु भोगरूपी विषका भोगना अच्छा नहीं, जिन भोगोंकी तृष्णासे यहां भी बहुत दुःख सहने पड़ते हैं और पाप बांधकर परलोकमें भी दुःख भोगने पडते हैं ।

अग्निना तु प्रदग्धानां शमोस्तीति यतोऽत्र वै ।
स्मरवन्हिप्रदग्धानां शमो नास्ति भवेष्वपि ॥ ९२ ॥

भावार्थ–अग्निसे जलनेवालोंकी शांति तो यहां जलादिसे हो जाती है परन्तु कामकी अग्निसे जो जलते हैं उनकी शांति भव भवमें नहीं होती है ।

दुःखानामाकरो यस्तु संसारस्य च वर्धनम् ।
स एव मदनो नाम नराणां स्मृतिसूदनः ॥ ९६ ॥

भावार्थः–जो कई दुःखोंकी खान है, जो संसार भ्रमणको बढ़ानेवाला है, वह कामदेव है । यह मानवोंकी स्मृतियोंको भी नाश करनेवाला है ।

चित्तसंदूषणः कामस्तथा सद्गतिनाशनः ।
सद्वृत्तध्वंसनश्चासौ कामोऽनर्थपरम्परा ॥ १०३ ॥

भावार्थ—कामभाव चित्तको मलीन करनेवाला है। सदाचारका नाश करनेवाला है। शुभ गतिको बिगाड़नेवाला है। कामभाव अनर्थोंकी संततिको चलानेवाला है। भवभवमें दुःखदाई है।

दोषाणामाकरः कामो गुणानां च विनाशकृत्।
पापस्य च निजो बन्धुः परापदां चैव संगमः॥ १०४॥

भावार्थ—यह काम दोषोंकी खान है, गुणोंको नाश करनेवाला है, पापोंका अपना बन्धु है, बड़ी२ आपत्तियोंका संगम मिलानेवाला है।

कामी त्यजति सद्वृत्तं गुरोर्वाणीं ह्रियं तथा।
गुणानां समुदायं च चेतः स्वास्थ्यं तथैव च॥ १०७॥
तस्मात्कामः सदा हेयो मोक्षसौख्यं जिघृक्षुभिः।
संसारं च परित्यक्तुं वांञ्छद्भिर्यतिसत्तमैः॥ १०८॥

भावार्थ—कामभावसे गृसित प्राणी सदाचारको, गुरुकी वाणीको, लज्जाको, गुणोंके समूहको तथा मनकी निश्चलताको खो देता है। इसलिये जो साधु संसारके त्यागकी इच्छा रखते हों तथा मोक्षके सुखके ग्रहणकी भावनासे उत्साहित हों उनको कामका भाव सदा ही छोड़ देना चाहिये।

इष्टोपदेशमें श्री पूज्यपादस्वामी कहते हैं—

आरम्भे तापकान्प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान्।
अंते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः॥ १७॥

भावार्थ—भोगोंकी प्राप्ति करते हुए खेती आदि परिश्रम उठाते हुए बहुत क्लेश होता है, बड़ी कठिनतासे भोग मिलते हैं, भोगते हुए तृप्ति नहीं होती है। जैसे २ भोग भोगे जाते हैं तृष्णाकी आग बढ़ती जाती है। फिर प्राप्त भोगोंको छोडना नहीं चाहता है। छूटते

हुए मनको बड़ी पीड़ा होती है। ऐसे भोगोंको कोई बुद्धिमान सेवन नहीं करता है। यदि गृहस्थ ज्ञानी हुआ तो आवश्यक्तानुसार अल्प भोग संतोषपूर्वक करता है–उनकी तृष्णा नहीं रखता है।

आत्मानुशासनमें गुणभद्राचार्य कहते हैं–

कृष्ट्वाप्त्वा नृपतींन्निषेव्य बहुशो भ्रान्त्वा वनेऽम्भोनिधौ।
किं क्लिश्नासि सुखार्थमत्र सुचिरं हा कष्टमज्ञानतः॥
तैलं त्वं सिकता स्वयं मृगयसे वाञ्छेद् विषाज्जीवितुं।
नन्वाशाग्रहनिग्रहात्तव सुखं न ज्ञातमेतत्त्वया॥ ४२॥

भावार्थ–खेती करके व कराके बीज बुवाकर, नाना प्रकार राजाओंकी सेवा कर, वनमें या समुद्रमें धनार्थ भ्रमणकर तूने सुखके लिये अज्ञानवश दीर्घकालसे क्यों कष्ट उठाया है। हा! तेरा कष्ट वृथा है। तू या तो बालू पेलकर तेल निकालना चाहता है या विष खाकर जीना चाहता है। इन भोगोंकी तृष्णासे तुझे सच्चा सुख नहीं मिलेगा। क्या तूने यह बात अब तक नहीं जानी है कि तुझे सुख तब ही प्राप्त होगा जब तू आशारूपी पिशाचको वशमें कर लेगा?

दूसरी बात इस सूत्रमें रूपके नाशकी कही है। वास्तवमें यह यौवन क्षणभंगुर है, शरीरका स्वभाव गलनशील है, जीर्ण होकर कुरूप होजाता है, भीतर महा दुर्गंधमय अशुचि है। रूपको देखकर राग करना भारी अविद्या है। ज्ञानी इसके स्वरूपको विचार कर इसे पुद्गलपिंड समझकर मोहसे बचे रहते हैं। आठवें स्मृति प्रस्थान सूत्रमें इसका वर्णन हो चुका है। तो भी जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य दिये जाते हैं–

श्री चन्द्रकृत वैराग्य मणिमालामें है—

मा कुरु यौवनधनगृहगर्वं तव कालस्तु हरिष्यति सर्वं।
इंद्रजालमिदमफलं हित्वा मोक्षपदं च गवेषय मत्वा ॥१८॥
नीलोत्पलदलगतजलचपलं इंद्रजालविद्युत्समतरलं।
किं न वेत्सि संसारमसारं भ्रांत्या जानासि त्वं सारं ॥१९॥

भावार्थ—यह युवानीका रूप, धन, घर आदि इन्द्रजालके समान चंचल हैं व फल रहित हैं, ऐसा जानकर इनका गर्व न कर। जब मरण आयगा तब छूट जायगा ऐसा जानकर तू निर्वाणकी खोज कर। यह संसारके पदार्थ नीलकमल पत्तेपर पानीकी बुन्दके समान या इन्द्रधनुषके समान या बिजलीके समान चंचल हैं। इनको तू असार क्यों नहीं देखता है। भ्रमसे तू इनको सार जान रहा है।

मूलाचार अनगार भावनामें कहा है—

अट्ठिणिछण्णं णालिणिबद्धं कलिमलभरिदं किमिउलपुण्णं।
मंसविलित्तं तयपडिछण्णं सरीरघरं तं सददमचोक्खं ॥ ८३ ॥
एदारिसे सरीरे दुग्गंधे कुणिमपूदियमचोक्खे।
सडणपडणे असारे रागं ण करिंति सप्पुरिसा ॥ ८४ ॥

भावार्थ—यह शरीररूपी घर हड्डियोंसे बना है, नसोंसे बंधा है, मल मूत्रादिसे भरा है, कीड़ोंसे पूर्ण है, मांससे भरा है, चमड़ेसे ढका है, यह तो सदा ही अपवित्र है। ऐसे दुर्गंधित, पीपादिसे भरे अपवित्र सड़ने पड़ने वाले, सार रहित, इस शरीरसे सत्पुरुष राग नहीं करते हैं।

तीसरी बात वेदनाके सम्बन्धमें कही है। कामभोग सम्बन्धी सुख दुःख वेदनाका कथन साधारण जानकर जो ध्यान करते हुए

भी साताकी वेदना झलकती है उसको यहां वेदनाका आस्वाद कहा है। यह वेदना भी अनित्य है। आत्मानन्दसे विलक्षण है। अतएव दुःखरूप है। विकार स्वभावरूप है। इसमें अतीन्द्रिय सुख नहीं है। इस प्रकार सर्व तरहकी वेदनाका राग त्यागना आवश्यक है। जैन सिद्धांतमें जहां सूक्ष्म वर्णन किया है वहां चेतना या वेदनाके तीन भेद किये हैं। (१) कर्मफल चेतना–कर्मोंका फल सुख अथवा दुःख भोगते हुए यह भाव होना कि मैं सुखी हूं या दुःखी हूं। (२) कर्म चेतना–राग या द्वेषपूर्वक कोई शुभ या अशुभ काम करते हुए यह वेदना कि मैं अमुक काम कर रहा हूं (३) ज्ञान-चेतना–ज्ञान स्वरूपकी ही वेदना या ज्ञानका आनंद लेना। इनमेंसे पहली दोको अज्ञान चेतना कहकर त्यागने योग्य कहा है। ज्ञानचेतना शुद्ध है व ग्रहणयोग्य है।

श्री पंचास्तिकायमें कुंदकुंदाचार्य कहते हैं—

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाण मधएक्को।
चेदयदि जीवरासी चेदनाभावेण तिविहेण॥ ३८॥

भावार्थ–कोई जीवराशिको कर्मोंके सुख दुःख फलको वेदे है, कोई जीवराशि कुछ उद्यम लिये सुख दुखरूप कर्मोंके भोगनेके निमित्त इष्ट अनिष्ट विकल्परूप कार्यको विशेषताके साथ वेदे हैं और एक जीवराशि शुद्ध ज्ञान हीको विशेषतासे वेदे हैं। इस तरह चेतना तीन प्रकार है।

ये वेदनायें मुख्यतासे कौन२ वेदते हैं?—

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्ज जुदं।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा॥ ३९॥

भावार्थ–निश्चयसे सर्व ही स्थावर कायिक जीव–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति कायिक जीव मुख्यतासे कर्मफल चेतना रखते हैं अर्थात् कर्मोंका फल सुख तथा दुःख वेदते हैं। द्वेन्द्रियादि सर्व त्रसजीव कर्मफल चेतना सहित कर्म चेतनाको भी मुख्यतासे वेदते हैं तथा अतीन्द्रिय ज्ञानी अर्हंत् आदि शुद्ध ज्ञान चेतनाको ही वेदते हैं। समयसार कलशमें कहा है—

ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धं ।
अज्ञानसंचेतनया तु धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः ॥ ३१ ॥

भावार्थ–ज्ञानके अनुभवसे ही ज्ञान निरन्तर अत्यन्त शुद्ध झलकता है। अज्ञानके अनुभवसे बंध दौड़कर आता है और ज्ञानकी शुद्धिको रोकता है। भावार्थ–शुद्ध ज्ञानका वेदन ही हितकारी है।

(११) मज्झिमनिकाय चूल दुःख स्कंध सूत्र।

एक दफे एक महानाम शाक्य गौतम बुद्धके पास गया और कहने लगा–बहुत समयसे मैं भगवानके उपदिष्ट धर्मको इस प्रकार जानता हूं। लोभ चित्तका उपक्लेश (मल) है, द्वेष चित्तका उपक्लेश है, मोह चित्तका उपक्लेश है, तौ भी एक समय लोभवाले धर्म मेरे चित्तको चिपट रहते हैं तब मुझे ऐसा होता है कि कौनसा धर्म (बात) मेरे भीतर (अध्यात्म) से नहीं छूटा है।

बुद्ध कहते हैं–वही धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा जिससे एक समय लोभधर्म तेरे चित्तको चिपट रहते हैं। हे महानाम! यदि वह धर्म भीतरसे छूटा हुआ होता तौ तू घरमें वास न करता, कामोप-

भोग न करता। चूंकि वह धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा इसलिये तू गृहस्थ है, कामोपभोग करता है। ये कामभोग अप्रसन्न करनेवाले, बहुत दुःख देनेवाले, बहुत उपायास (कष्ट) देनेवाले हैं। इनमें आदिनव (दुष्परिणाम) बहुत हैं। जब आर्य श्रावक यथार्थतः अच्छी तरह जानकर इसे देख लेता है, तो वह कामोंसे अलग, अकुशल धर्मोंसे पृथक् हो, प्रीतिसुख या इनसे भी शांततर सुख पाता है। तब वह कामोंकी ओर न फिरनेवाला होता है। मुझे भी सम्बोधि प्राप्तिके पूर्व ये काम होते थे। इनमें दुष्परिणाम बहुत हैं ऐसा जानते हुए भी मैं कामोंसे अलग शांततर सुख नहीं पासका। जब मैंने इससे भी शांततर सुख पाया तब मैंने अपनेको कामोंकी ओर न फिरनेवाला जाना।

क्या है कामोंका आस्वाद -ये पांच काम गुण हैं (१) इष्ट–मनोज्ञ चक्षुसे जाननेयोग्य रूप, (२) इष्ट–मनोज्ञ श्रोत्रसे जानने-योग्य शब्द, (३) इष्ट–मनोज्ञ घ्राणविज्ञेय गंध, (४) इष्ट–मनोज्ञ जिह्वा विज्ञेय रस, (५) इष्ट–मनोज्ञ कायविज्ञेय स्पर्श। इन पांच काम गुणोंके कारण जो सुख या सौमनस्य उत्पन्न होता है यही कामोंका आस्वाद है।

कामोंका आदिनव इसके पहले अध्यायमें कहा जाचुका है। इस सूत्रमें निर्ग्रंथ (जैन) साधुओंसे गौतमका वार्तालाप दिया है उसको अनावश्यक समझकर यहां न देकर उसका सार यह है। पर-स्पर यह प्रश्न हुआ कि राजा श्रेणिक बिम्बसार अधिक सुख विहारी है या गौतम? तब यह वार्तालापका सार हुआ कि राजा मगध श्रेणिक बिम्बसारसे गौतम ही अधिक सुख-विहारी है।

नोट–इस सूत्रका सार यह है कि राग द्वेष मोह ही दुःखके कारण हैं। उनकी उत्पत्तिके हेतु पांच इन्द्रियोंके विषयोंकी लालसा है। इन्द्रिय भोग योग्य पदार्थोंका संग्रह अर्थात् परिग्रहका सम्बन्ध जहांतक है वहांतक राग द्वेष मोहका दूर होना कठिन है। परिग्रह ही सर्व सांसारिक कष्टोंकी भूमि है। जैन सिद्धांतमें बताया है कि पहले तो सम्यग्दृष्टी होकर यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिये कि विषयभोगोंसे सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता है–सुखसा दिखता है परन्तु सुख नहीं है। अतीन्द्रिय सुख जो अपना स्वभाव है वही सच्चा सुख है। करोड़ों जन्मोंमें इस जीवने पांच इन्द्रियोंके सुख भोगे हैं परन्तु यह कभी तृप्त नहीं होसका। ऐसी श्रद्धा होजाने-पर फिर यह सम्यग्दृष्टी उसी समय तक गृहस्थमें रहता है जबतक भीतरसे पूरा वैराग्य नहीं हुआ। घरमें रहता हुआ भी वह अति लोभसे विरक्त होकर न्यायपूर्वक व संतोषपूर्वक आवश्यक इन्द्रिय भोग करता है तब वह अपनेको उस अवस्थासे बहुत अधिक सुख शांतिका भोगनेवाला पाता है। जब वह मिथ्यादृष्टी था तौ भी गृहवासकी आकुलतासे वह बच नहीं सक्ता। उसकी निरन्तर भावना यही रहती है कि कब पूर्ण वैराग्य हो कि कब गृहवास छोड़कर साधु हो परम सुख शांतिका स्वाद लूं। जब समय आजाता है तब वह परिग्रह त्यागकर साधु होजाता है। जैनोंमें वर्तमान युगके चौवीस महापुरुष तीर्थंकर होगए हैं, जो एक दूसरेके बहुत पीछे हुए। ये सब राज्यवंशी क्षत्रिय थे, जन्मसे आत्मज्ञानी थे। इनमेंसे बार-हवें वासपूज्य, उन्नीसवें मल्लि, बाईसवें नेमि, तेईसवें पार्श्वनाथ,

चौवीसवें महावीर या निग्रन्थनाथपुत्रने कुमारवयमें-राज्य किये विना ही गृहवास छोड दीक्षा ली व साधु हो आत्मध्यान करके मुक्ति प्राप्त की। शेष-१ ऋषभ, २ अजित, ३ संभव, ४ अभिनंदन, ५ सुमति, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्व, ८ चंद्रप्रभु, ९ पुष्पदंत, १० सीतल, ११ श्रेयांश, १३ विमल, १४ अनंत, १५ धर्म, १६ शांति, १७ कुंथु, १८ अरह, २० मुनिसुव्रत, २१ नमि इस तरह १९ तीर्थंकरोंने दीर्घकालतक राज्य किया, गृहस्थके योग्य कामभोग भोगे, पश्चात् अधिक वय होनेपर गृहत्याग निर्ग्रंथ होकर आत्मध्यान करके परम सुख पाया व निर्वाण पद प्राप्त कर लिया। इसलिये परिग्रहके त्याग करनेसे ही लालसा छूटती है। पर वस्तुका सम्बन्ध लोभका कारण होता है। यदि १०) भी पास है तो उनकी रक्षाका लोभ है, न खर्च होनेका लोभ है। यदि गिर जाय तो शोक होता है। जहां किसी वस्तुकी चाह नहीं, तृष्णा नहीं, राग नहीं वहां ही सच्चा सुख भीतरसे झलक जाता है। इसलिये इस सूत्रका तात्पर्य यह है कि इन्द्रिय भोग त्यागने योग्य हैं, दुःखके मूल हैं, ऐसी श्रद्धा रखके घरमें वैराग्य युक्त रहो। जब प्रत्याख्यानावरण कषाय (जो मुनिके संयमको रोकती है) का उपशम होजावे तब गृहत्याग साधुके अध्यात्मीक शांति और सुखमें विहार करना चाहिये।

तत्वार्थसूत्र ७में अध्यायमें कहा है कि परिग्रह त्यागके लिये पांच भावनाएं मानी चाहियेः—

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्ज्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥

भावार्थ—इष्ट तथा अनिष्ट पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें या पदार्थोंमें रागद्वेष नहीं रखना, आवश्यक्तानुसार समभावसे भोजनपान कर लेना।

"मूर्छा परिग्रहः" ॥ १७ ॥ पर पदार्थोंमें ममत्व भाव ही परिग्रह है। बाहरी पदार्थ ममत्व भावके कारण हैं इसलिये गृहस्थी प्रमाण करता है, साधु त्याग करता है। ये दश प्रकारके हैं।—

"क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः" ॥२९॥

(१) क्षेत्र (भूमि), (२) वास्तु (मकान), (३) हिरण्य (चांदी), (४) सुवर्ण (सोना जवाहरात), ५ धन (गो, भैंस, घोड़े, हाथी), ६ धान्य (अनाज), ७ दासी, ८ दास, ९ कुप्य (कपड़े), १० भांड (वर्तन)

"अगार्यनगारश्च" । १९ । व्रती दो तरहके हैं—गृहस्थी (सागार) व गृहत्यागी (अनगार)।

"हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥ "देशसर्वतोऽणुमहती" ॥२॥ "अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

भावार्थ—हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील (अब्रह्म) तथा परिग्रह, इनसे विरक्त होना व्रत है। इन पापोंको एकदेश शक्तिके अनुसार त्यागनेवाला अणुव्रती है। इनको सर्वदेश पूर्ण त्यागनेवाला महाव्रती है। अणुव्रती सागार है, महाव्रती अनगार है। अतएव अणुव्रती अल्प सुखशांतिका भोगी है, महाव्रती महान सुखशांतिका भोगी है।

श्री समंतभद्राचार्य रत्नकरण्डश्रावकाचारमें कहते हैं—

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥ ४७ ॥

भावार्थ—मिथ्यात्वके अंधकारके दूर हो जानेपर जब सम्यग्दर्शन तथा सम्यक्ज्ञानका लाभ होजावे तब साधु राग द्वेषके हटानेके लिये चारित्रको पालते हैं।

रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्तना कृता भवति ।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥ ४८ ॥

भावार्थ—राग द्वेषके छूटनेसे हिंसादि पाप छूट जाते हैं। जैसे जिसको धन प्राप्तिकी इच्छा नहीं है वह कौन पुरुष है जो राजाओंकी सेवा करेगा ।

हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च ।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥ ४९ ॥

भावार्थ—पाप कर्मको लानेवाली मोरी पांच हैं—हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुनसेवा तथा परिग्रह । इनसे विरक्त होना ही सम्यग्ज्ञानीका चारित्र है ।

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम् ।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससङ्गानाम् ॥ ५० ॥

भावार्थः—चारित्र दो तरहका है—पूर्ण (सकल) अपूर्ण (विकल) जो सर्व परिग्रहके त्यागी गृहरहित साधु हैं वे पूर्ण चारित्र पालते हैं। जो गृहस्थ परिग्रह सहित हैं वे अपूर्ण चारित्र पालते हैं ।

कषायैरिन्द्रियैर्दुष्टैर्व्याकुलीक्रियते मनः ।
ततः कर्तुं न शक्नोति भावना गृहमेधिनी ॥

भावार्थ—गृहस्थीका मन क्रोधादि कषाय तथा दुष्ट पांचों इन्द्रियोंकी इच्छाएं इनसे व्याकुल रहता है। इससे गृहस्थी आत्माकी भावना (भले प्रकार पूर्णरूपसे) नहीं कर सक्ता है ।

श्री कुंदकुंदाचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं—

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुःखं वियाण सब्भावं ।
जदि तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं ॥ ६४-१ ॥

भावार्थ–जिनकी इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रीति है उनको स्वाभाविक दुःख जानो । जो पीड़ा या आकुलता न हो तो विषयोंके भोगका व्यापार नहीं होसक्ता ।

ते पुण उदिण्णतण्हा दुहिदा तण्हाहिं विसयसौख्याणि ।
इच्छंति अणुहवंति य आमरणं दुक्खसंतत्ता ॥ ७९ ॥

भावार्थ–संसारी प्राणी तृष्णाके वशीभूत होकर तृष्णाकी दाहसे दुःखी हो इन्द्रियोंके विषयसुखोंकी इच्छा करते रहते हैं और दुखोंसे संतापित होते हुए मरण पर्यंत भोगते रहते हैं (परन्तु तृप्ति नहीं पाते) ।

स्वामी मोक्षपाहुड़में कहते हैं—

ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम ।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं ॥ ६६ ॥
जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया ।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥ ६८ ॥

भावार्थ–जबतक यह नर इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्ति करता है तबतक यह आत्माको नहीं जानता है । जो योगी विषयोंसे विरक्त है वही आत्माको यथार्थ जानता है । जो कोई विषयोंसे विरक्त होकर उत्तम भावनाके साथ आत्माको जानते हैं तथा साधुके तप व मूलगुण पालते हैं वे अवश्य चार गति रूप संसारमें छूट जाते हैं इसमें संदेह नहीं ।

श्री शिवकोटि आचार्य भगवतीआराधनामें कहते हैं—

अप्पायत्ता अज्झप्परदी भोगरमणं परायत्तं ।
भोगरदीए चइदो होदि ण अज्झप्परमणेण ॥ १२७० ॥

भोगरदीए णासो णियदो विग्घा य होंति अदिबहुगा।
अज्झप्परदीए सुभाविदाए ण णासो ण विग्घो वा ॥१२७१॥
णच्चा दुरंतमद्धुव मत्ताणमतप्पयं अविस्सामं।
भोगसुहं तो तह्मा विरदो मोक्खे मदि कुज्जा ॥१२८३॥

भावार्थ—अध्यात्ममें रति स्वाधीन है, भोगोंमें रति पराधीन है भोगोंसे तो छूटना पड़ता है, अध्यात्म रतिमें स्थिर रह सक्ता है। भोगोंका सुख नाश सहित है व अनेक विघ्नोंसे भरा हुआ है। परन्तु भलेप्रकार भाया हुआ आत्मसुख नाश और विघ्नसे रहित है। इन इन्द्रियोंके भोगोंको दुःखरूपी फल देनेवाले, अथिर, अशरण, अतृप्तिके कर्ता तथा विश्राम रहित जानकर इनसे विरक्त हो, मोक्षके लिये भक्ति करनी चाहिये।

(१२) मज्झिमनिकाय अनुमानसूत्र।

एक दफे महा मौद्गलायन बौद्ध भिक्षुने भिक्षुओंसे कहा:— चाहे भिक्षु यह कहता भी हो कि मैं आयुष्मानों (महान भिक्षु) के वचन (दोष दिखानेवाले शब्द) का पात्र हूं, किन्तु यदि वह दुर्वचनी है, दुर्वचन पैदा करनेवाले धर्मोंसे युक्त है और अनुशासन (शिक्षा) ग्रहण करनेमें अक्षत्र और अप्रदक्षिणा-ग्राही (उत्साहरहित) है तो फिर सब्रह्मचारी न तो उसे शिक्षाका पात्र मानते हैं, न अनुशासनीय मानते हैं न उस व्यक्तिमें विश्वास करना उचित मानते हैं।

दुर्वचन पैदा करनेवाले धर्म-(१) पापकारी इच्छाओंके वशीभूत होना, (२) क्रोधके वश होना, (३) क्रोधके हेतु ढोंग करना, (४) क्रोधके हेतु डाह करना, (५) क्रोधपूर्ण वाणी क ना

दोष दिखलानेपर दोष दिखलानेवालेकी तरफ हिंसक भाव करना, (७) दोष दिखलानेवालेपर क्रोध करना, (८) दोष दिखलानेवालेपर उल्टा आरोप करना, (९) दोष दिखलानेवालेके साथ दूसरी दूसरी बात करना, बातको प्रकरणसे बाहर लेजाता है, क्रोध, द्वेष, अप्रत्यय (नाराजगी) उत्पन्न कराता है। (१०) दोष दिखलानेवालेका साथ छोड़ देना, (११) अमरखी होना, (१२) निष्ठुर होना, (१३) ईर्षालु व मत्सरी होना, (१४) शठ व मायावी होना, (१५) जड़ और अतिमानी होना, (१६) तुरन्त लाभ चाहनेवाला, हठी व न त्यागनेवाला होना।

इसके विरुद्ध जो भिक्षु सुवचनी है वह सुवचन पैदा करनेवाले धर्मोंसे युक्त होता है, जो ऊपर लिखे १६ से विरक्त हैं। वह अनुशासन ग्रहण करनेमें समर्थ होता है, उत्साहसे ग्रहण करनेवाला होता है। सब्रह्मचारी उसे शिक्षाका पात्र मानते हैं, अनुशासनीय मानते हैं, उसमें विश्वास उत्पन्न करना उचित समझते हैं।

भिक्षुको उचित है कि वह अपने हीमे अपनेको इस प्रकार समझावे। जो व्यक्ति पापेच्छ है, पापपूर्ण इच्छाओंके वशीभूत है, वह पुद्गल (व्यक्ति) मुझे अप्रिय लगता है, तब यदि मैं भी पापेच्छ या पापपूर्ण इच्छाओंके वशीभूत हूंगा तो मैं भी दूसरोंको अप्रिय हूंगा। ऐसा जानकर भिक्षुको मन ऐसा दृढ़ करना चाहिये कि मैं पापेच्छ नहीं हूंगा। इसी तरह ऊपर लिखे हुए १६ दोषोंके सम्बन्धमें विचार कर अपनेको इनसे रहित करना चाहिये।

भावार्थ—यह है कि भिक्षुको अपने आप इस प्रकार परीक्षण करना चाहिये। क्या मैं पापके वशीभूत हूं, क्या मैं क्रोधी हूं। इसी

तरह क्या मैं ऊपर लिखित दोषोंके वशीभूत हूं। यदि वह देखे कि वह पापके वशीभूत है या क्रोधके वशीभूत है या अन्य दोषके वशीभूत है तो उस भिक्षुको उन बुरे अकुशल धर्मोंके परित्यागके लिये उद्योग करना चाहिये। यदि वह देखे कि उसमें ये दोष नहीं हैं तो उस भिक्षुको प्रामोद्य (खुशी) के साथ रातदिन कुशल धर्मोंको सीखते विहार करना चाहिये।

जैसे दहर (अल्पायु युवक) युवा शौकीन स्त्री या पुरुष परिशुद्ध उज्वल आदर्श (दर्पण) या स्वच्छ जलपात्रमें अपने मुखके प्रतिबिम्बको देखते हुए, यदि वहां रज (मैल) या अंगण (दोष)को देखता है तो उस रज या अंगणके दूर करनेकी कोशिश करता है। यदि वहां रज या अंगण नहीं देखता है तो उसीसे संतुष्ट होता है कि अहो मेरा मुख परिशुद्ध है। इसी तरह भिक्षु अपनेको देखे। यदि अकुशल धर्मोंको अप्रहीण देखे तो उसे उन अकुशल धर्मोंके नाशके लिये प्रयत्न करना चाहिये। यदि इन अकुशल धर्मोंको प्रहीण देखे तो उसे प्रीति व प्रामोद्यके साथ रातदिन कुशल धर्मोंको सीखते हुए विहार करना चाहिये।

नोट-इस सूत्रमें भिक्षुओंको यह शिक्षा दी गई है कि वे अपने भावोंको दोषोंसे मुक्त करें। उन्हें शुद्ध भावसे अपने भावोंकी शुद्धतापर स्वयं ही ध्यान देना चाहिये। जैसे अपने मुखको सदा स्वच्छ रखनेकी इच्छा करनेवाला मानव दर्पणमें मुखको देखता रहता है, यदि जरा भी मैल पाता है तो तुरत मुखको रूमालसे पोछकर साफ कर लेता है। यदि अधिक मैल देखता है तो पानीसे धोकर साफ करता है। इसीतरह साधुको अपने आप अपने दोषोंकी जांच

करनी चाहिये। यदि अपने भीतर दोष दीखें तो उनको दूर करनेका पूरा उद्योग करना चाहिये। यदि दोष न दीखें तो प्रसन्न होकर आगामी दोष न पैदा हों इस बातका प्रयत्न रखना चाहिये। यह प्रयत्न सत्संगति और शास्त्रोंका अभ्यास है। भिक्षुको बहुत करके गुरुके साथ या दूसरे साधुके साथ रहना चाहिये। यदि कोई दोष अपनेमें हो और अपनेको वह दोष न दिखलाई पड़ता हो और दूसरा दोषको बता दे तो उसपर बहुत संतोष मानना चाहिये। उसको धन्यवाद देना चाहिये। कभी भी दोष दिखलानेवाले पर क्रोध या द्वेषभाव नहीं करना चाहिये। जैसे किसीको अपने मुखपर मैलका धब्बा न दीखे और दूसरा मित्र बता दें तो वह मित्र उसपर नाराज न होकर तुर्त अपने मुखके मैलको दूर कर देता है। इसीतरह जो सरल भावसे मोक्षमार्गका साधन करते हैं वे दोषोंके बतानेवाले पर संतुष्ट होकर अपने दोषोंको दूर करनेका उद्योग करते हैं। यदि कोई साधु अपनेमें बड़ा दोष पाते हैं तो अपने गुरुसे एकांतमें निवेदन करते हैं और जो कुछ दंड वे देते हैं उसको बड़े आनन्दसे स्वीकार करते हैं।

जैन सिद्धांतमें पच्चीस कषाय बताए हैं, जिनके नाम पहले कहे जा चुके हैं। इन क्रोध, मान, माया लोभादिके वशीभूत हो मानसिक, वाचिक, व कायिक दोषोंका होजाना सम्भव है। इस लिये साधु नित्य सबेरे व संध्याको प्रतिक्रमण (पश्चाताप) करते हैं व आगामी दोष न हो इसके लिये प्रत्याख्यान (त्याग)की भावना भाते हैं। साधुके भावोंकी शुद्धताको ही साधुपद समझना चाहिये।

समभाव या शांतभाव मोक्ष साधक है, रागद्वेष मोहभाव मोक्ष मार्गमें बाधक है। ऐसा समझ कर अपने भावोंकी शुद्धिका सदा प्रयत्न करना चाहिये।

श्री कुलभद्राचार्य सार समुच्चयमें कहते हैं—

यथा च जायते चेतः सम्यक्शुद्धिं सुनिर्मलाम् ।
तथा ज्ञानविदा कार्यं प्रयत्नेनापि भूरिणा ॥१६१॥

भावार्थ—जिस तरह यह मन भले प्रकार शुद्धिको या निर्मलताको धारण करे उसी तरह ज्ञानीको बहुत प्रयत्न करके आचरण करना चाहिये।

विशुद्धं मानसं यस्य रागादिमलवर्जितम् ।
संसाराग्र्यं फलं तस्य सकलं समुपस्थितम् ॥१६२॥

भावार्थ—जिसका मन रागादि मैलसे रहित शुद्ध है उसीको इस जगतमें मुख्य फल सफलतासे प्राप्त हुआ है।

विशुद्धपरिणामेन शान्तिर्भवति सर्वतः ।
संक्लिष्टेन तु चित्तेन नास्ति शान्तिर्भवेष्वपि ॥१७२॥

भावार्थ—निर्मल भावोंके होनेसे सर्व तरफसे शांति रहती है परन्तु क्रोधादिसे—दुःखित परिणामोंसे भवभवमें भी शांति नहीं मिल सक्ती।

संक्लिष्टचेतसां पुंसां माया संसारवर्धिनी ।
विशुद्धचेतसां वृत्तिः सम्पत्तिवित्तदायिनी ॥१७३॥

भावार्थ—संक्लेश परिणामधारी मानवोंकी बुद्धि संसारको बढ़ानेवाली होती है, परन्तु निर्मल भावधारी पुरुषोंका वर्तन सम्यग्दर्शनरूपी धनको देनेवाला है, मोक्षकी तरफ लेजानेवाला है।

परोऽप्युत्पथमापन्नो निषेद्धुं युक्त एव सः ।
किं पुनः स्वमनोत्यर्थं विषयोत्पथयायिवत् ॥ १७५ ॥

भावार्थ-दूसरा कोई कुमार्गगामी होगया हो तो भी उसे मनाही करना चाहिये, यह तो ठीक है परन्तु विषयोंके कुमार्गमें जानेवाले अपने मनको अतिशयरूप क्यों नहीं रोकना चाहिये ? अवश्य रोकना चाहिये ।

अज्ञानाद्यदि मोहाद्यत्कृतं कर्म सुकुत्सितम् ।
व्यावर्तयेन्मनस्तस्मात् पुनस्तन्न समाचरेत् ॥ १७६ ॥

भावार्थ-यदि अज्ञानके वशीभूत होकर या मोहके आधीन होकर जो कोई अशुभ काम किया गया हो उससे मनको हटा लेवे फिर उस कामको नहीं करे ।

धर्मस्य संचये यत्नं कर्मणां च परिक्षये ।
साधूनां चेष्टितं चित्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १९३ ॥

भावार्थ-साधुओंका उद्योग धर्मके संग्रह करनेमें तथा कर्मोंके क्षय करनेमें होता है तथा उनका चित्त ऐसे चारित्रके पालनमें होता है जिससे सर्व पापोंका नाश होजावे ।

साधकको नित्य प्रति अपने दोषोंको विचार कर अपने भावोंको निर्मल करना चाहिये ।

श्री अमितगति आचार्य सामायिक पाठमें कहते हैं—

एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः प्रमादतः संचरता इतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥

भावार्थ-हे देव ! प्रमादसे इधर उधर चलते हुए एकेन्द्रिय आदि प्राणी यदि मेरे द्वारा नाश किये गये हों, जुदे किये गए हों,

मिला दिये गए हों, दुःखित किये गए हों तो यह मेरा अयोग्य कार्य मिथ्या हो। अर्थात् मैं इस भूलको स्वीकार करता हूं।

विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारिलोपनं तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥ ६ ॥

भावार्थ—मोक्षमार्गसे विरुद्ध चलकर, क्रोधादि कषाय व पांचों इन्द्रियोंके वशीभूत होकर मुझ दुर्बुद्धिने जो चारित्रमें दोष लगाया हो वह मेरा मिथ्या कार्य मिथ्या हो अर्थात् मैं अपनी भूलको स्वीकार करता हूं।

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषायनिर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे वैद्य सर्पके सर्व विषको मंत्रोंको पढ़कर दूर कर देता है वैसे ही मैं मन, वचन, काय तथा क्रोधादि कषायोंके द्वारा किये गए पापोंको अपनी निन्दा, गर्हा, आलोचना आदिसे दूर करता हूं, प्रायश्चित्त लेकर भी उस पापको धोता हूं।

(१३) मज्झिमनिकाय चेतोखिलसूत्र।

गौतमबुद्ध कहते हैं—भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षुके पांच चेतोखिल (चित्तके कील) नष्ट नहीं हुए, ये पांचों उसके चित्तमें बद्ध हैं, छिन्न नहीं हैं, वह इस धर्म विषयमें वृद्धिको प्राप्त होगा यह संभव नहीं है।

पांच चेतोखिल—(१) शास्ता, (२) धर्म, (३) संघ, (४) शील, इन चारमें संदेह युक्त होता है, इनमें श्रद्धालु नहीं होता।

इसलिये उसका चित्त तीव्र उद्योगके लिये नहीं झुकता। चार चेतोखिल तो ये हैं (५) सब्रह्मचारियोंके विषयमें कुपित, असंतुष्ट, दूपितचित्त होता है इसलिये उसका चित्त तीव्र उद्योगके लिये नहीं झुकता; ये पांच चेतोखिल हैं। इसी तरह जिस किसी भिक्षुके पांच चित्तबंधन नहीं कटे होते हैं वह धर्म विनयमें वृद्धिको नहीं प्राप्त हो सकता।

पांच चित्तबंधन—(१) कामों (कामभोगों) में अवीतराग, अवीतप्रेम, अविगतपिपास, अविगत परिदाह, अविगत तृष्णा रखना, (२) कायमें तृष्णा रखना, (३) रूपमें तृष्णा रखना ये तीन चित्तबंधन हैं, (४) यथेच्छ उदरभर भोजन करके शय्या सुख, स्पर्श सुख, आलस्य सुखमें फंसा रहना यह चौथा है, (५) किसी देवनिकाय देवयोनिका प्रणिधान (दृढ़ कामना) रखके ब्रह्मचर्य आचरण करता है। इस शील, व्रत, तप, या ब्रह्मचर्यसे मैं देवता या देवतामेंसे कोई होऊं यह पांचमां चित्त बंधन है।

इसके विरुद्ध—जिस किसी भिक्षुके ऊपर लिखित पांच चेतोखिल प्रहीण हैं, पांच चित्तबन्धन समुच्छिन्न हैं, वह इस धर्ममें वृद्धिको प्राप्त होगा यह संभव है।

ऐसा भिक्षु (१) छन्दसमाधि प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, (२) वीर्यसमाधि प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, (३) चित्तसमाधि प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, (४) इंद्रियसमाधि प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, (५) विमर्श (उत्साह) समाधि-

प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है । ऐसा भिक्षु निर्वेद (वैराग्य) के योग्य है, संबोधि (परमज्ञान) के योग्य है, सर्वोत्तम योगक्षेम (निर्वाण) की प्राप्तिके लिये योग्य है ।

जैसे आठ, दस या बारह मुर्गीके अँडे हों, ये मुर्गीद्वारा भले-प्रकार सेये, परिस्वेदित, परिभावित हों, चाहे मुर्गीकी इच्छा न भी हो कि मेरे बच्चे स्वस्तिपूर्वक निकल आवें तोभी वे बच्चे स्वस्तिपूर्वक निकल आनेके योग्य हैं । ऐसे ही भिक्षुओ ! उत्सोढ़िके पंद्रह अंगोंसे युक्त भिक्षु निर्वेदके लिये, सम्बोधिके लिये, अनुत्तर योगखेम प्राप्तिके लिये योग्य है ।

नोट–इस सूत्रमें निर्वाणके मार्गमें चलनेवालेके लिये पंद्रह बातें उपयोगी बताई हैं—

(१) पांच चित्तके कांटे–नहीं होने चाहिये । भिक्षुकी अश्रद्धा, देव, धर्म गुरु, चारित्र तथा साधर्मी साधनोंमें होना चित्तके कांटे हैं । जब श्रद्धा न होगी तब वह उन्नति नहीं कर सक्ता । इस-लिये भिक्षुकी दृढ़ श्रद्धा आदर्श आप्तमें, धर्ममें, गुरुमें, व चारित्रमें व सहधर्मियोंमें होनी चाहिये, तब ही वह उत्साहित होकर चारि-त्रको पालेगा, धर्मको बढ़ावेगा, आदर्श साधु होकर अरहंत पदपर पहुंचनेकी चेष्टा करेगा ।

(२) पांच चित्त बन्धन–साधकका मन पांच बातोंमें उलझा नहीं होना चाहिये । यदि उसका मन काममोगोंमें, (२) शरीरकी पुष्टिमें, (३) रूपकी सुन्दरता निरखनेमें, (४) इच्छानुकूल भोजन करके सुखपूर्वक लेटे रहने, निन्द्रा लेने व आलस्यमें समय बितानेमें

(५) व आगामी देवगतिके भोगोंके प्राप्त करनेमें उलझा रहेगा तो वह संसारकी कामनामें लगा रहनेसे मुक्तिके साधनको नहीं कर सकेगा । साधकका चित्त इन पांचों बातोंसे वैराग्य युक्त होना चाहिये ।

(३) **पांच उद्योग**–साधकका उद्योग होना चाहिये कि वह (१) **छन्द समाधियुक्त** हो, सम्यक् समाधिके लिये उत्साहित हो, (२) **वीर्य समाधियुक्त** हो, आत्मवीर्यको लगाकर सम्यक् समाधिके लिये उद्योगशील हो, (३) **चित्त समाधिके** लिये प्रयत्नशील हो, कि वह चित्तको रोककर समाधिमें लगावे, (४) **इन्द्रिय समाधि**-इन्द्रियोंको रोककर अतीन्द्रिय भावमें पहुंचनेका उद्योग करे. (५) विमर्श समाधि–समाधिके आदर्शपर चढ़नेका उत्साही हो ।

आत्मध्यानके लिये मन व इन्द्रियोंको निरोधकर भीतरी उत्साहसे, आत्म वीर्यको लगाकर स्मरण युक्त होकर आत्मसमाधिका लाभ करना चाहिये । निर्विकल्प समाधि या स्वानुभवको जागृत करना चाहिये । इसीसे यथार्थ विवेक या वैराग्य होगा, परम ज्ञानका लाभ होगा व निर्वाण प्राप्त होसकेगा । जो ठीक ठीक उद्योग करेगा वह फलको न चाहते हुए भी फल पाएगा जैसे–मुर्गी अंडोंका ठीकर सेवन करेगी तब उनमेंसे बच्चे कुशलपूर्वक निकलेंगे ही । इस सूत्रमें भी मोक्षकी सिद्धिका अच्छा उपदेश है । जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य दिये जाते हैं । व्यवहार सम्यक्तमें देव, आगम या धर्म, गुरुकी श्रद्धाको ही सम्यक्त कहा है । **रत्नमालामें** कहा है—

सम्यक्त्वं सर्वजन्तूनां श्रेयः श्रेयः पदार्थिनां ।
विना तेन व्रतः सर्वोऽप्यकल्प्यो मुक्तिहेतवे ॥ ६ ॥

निर्विकल्पश्चिदानन्दः परमेष्ठी सनातनः ।
दोषातीतो जिनो देवस्तदुपज्ञं श्रुतिः परा ॥ ७
निरम्बरो निरारम्भो नित्यानन्दपदार्थिनः ।
धर्मदिक्कर्मधिक् साधुर्गुरुरित्युच्यते बुधैः ॥ ८ ॥
अमीषां पुण्यहेतूनां श्रद्धानं तन्निगद्यते ।
तदेव परमं तत्वं तदेव परमं पदम् ॥ ९ ॥
संवेगादिपरः शान्तस्तत्वनिश्चयवान्नरः ।
जन्तुर्जन्मजरातीतः पदवीमवगाहते ॥ १३ ॥

भावार्थ—कल्याणकारी पदार्थोंका श्रद्धान रखना सर्व प्राणीमात्रका कल्याण करनेवाला है। श्रद्धानके विना सर्व ही व्रतचारित्र मोक्षके कारण नहीं होसक्के। प्रथम पदार्थ सच्चा शास्ता या देव है जो निर्विकल्प हो, चिदानंद पूर्ण हो, परमात्म पदधारी हो, स्वरूपकी अपेक्षा सनातन हो, सर्व रागादि दोष रहित हो, कर्म विजई हो वही देव है। उसीका उपदेशित वचन सच्चा शास्त्र है या धर्म है। जो वस्त्रादि परिग्रह रहित हो, खेती आदि आरम्भसे मुक्त हो, नित्य आनन्द पदका अर्थी हो, धर्मकी तरफ दृष्टि रखता हो वही साधु या गुरु कर्मोंको जलानेवाला बुद्धिवानों द्वारा कहा गया है। इस तरह देव, शास्त्र या धर्म तथा साधुका श्रद्धान करना, जो पुण्यके कारण हैं, सम्यग्दर्शनरूपी परम तत्व कहा गया है, यही श्रद्धा परमपदका कारण है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य पंचास्तिकायमें कहते हैं—

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्ममिम जा य खलु चेट्ठा ।
अणुगमणं वि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥ १३६ ॥

भावार्थ—साधकका शुभ राग या प्रीतिभाव वही कहा जाता

है जो उसकी अरहंत व सिद्ध परमात्मामें व साधुमें भक्ति हो, धर्म-साधनका उद्योग हो तथा गुरुओंकी आज्ञानुसार चारित्रका पालन हो।

स्वामी कुंदकुन्दाचार्य **प्रवचनसारमें** कहते हैं–

ण हवदि समणोत्ति मदो संजमतवसुत्तसंपजुत्तोवि ।
जदि सद्दहदि ण अत्थे आदपधाणे जिणक्खादे ॥ ८५–३ ॥

भावार्थ–जो कोई साधु संयमी, तपस्वी व सूत्रके ज्ञाता हो परन्तु जिन कथित आत्मा आदि पदार्थोंमें जिसकी यथार्थ श्रद्धा नहीं है वह वास्तवमें श्रमण या साधु नहीं है।

स्वामी कुन्दकुन्द **मोक्षपाहुडमें** कहते हैं—

देव गुरुम्मिय भत्तो साहम्मिय संजदेसु अणुरत्तो ।
सम्मत्तमुव्वहंतो झाणरओ होइ जोई सो ॥ ५२ ॥

भावार्थ–जो योगी सम्यग्दर्शनको धारता हुआ देव तथा गुरुकी भक्ति करता है, साधर्मी संयमी साधुओंमें प्रीतिमान है वही ध्यानमें रुचि करनेवाला होता है।

शिवकोटि आचार्य भगवती आराधनामें कहते हैं—

अरहंतसिद्धचेइय, सुदे य धम्मे य साधुवग्गे य ।
आयरियेसूवज्झा-, एसु पवयणे दंसणे चावि ॥ ४६ ॥
भत्ती पूया वण्णज-, णणं च णासणमवण्णवादस्स ।
आसादणपरिहारो, दंसणविणओ समासेण ॥ ४७ ॥

भावार्थ–श्री अरहंत शास्ता आप्त, सिद्ध परमात्मा, उनकी मूर्ति, शास्त्र, धर्म, साधु समुह, आचार्य, उपाध्याय, वाणी और सम्यग्दर्शन इन दस स्थानोंमें भक्ति करना, पूजा करनी, गुणोंका वर्णन, कोई निन्दा करे तो उसको निवारण करना, अविनयको

हटाना, यह सब संक्षेपसे सम्यग्दर्शनका विनय है। व्रतीमें माया, मिथ्या, निदान तीन शल्य नहीं होने चाहिये। अर्थात् कपटसे, अश्रद्धासे व भोगाकांक्षासे धर्म न पाले।

तत्वार्थसारमें कहा है—

मायानिदानमिथ्यात्वशल्याभावविशेषतः ।
अहिंसादिव्रतोपेतो व्रतीति व्यपदिश्यते ॥ ७८ ॥

भावार्थ-वही अहिंसा आदि व्रतोंका पालनेवाला व्रती कहा जाता है जो माया, मिथ्यात्व व निदान इन तीन शल्यों (कीलों व कांटों) से रहित हो।

मोक्षमार्गका साधक कैसा होना चाहिये।

श्री कुंदकुंदाचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं—

इहलोग णिरावेक्खो अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्मि ।
जुत्ताहारविहारो रहिदकसाओ हवे समणो ॥ ४२-३ ॥

भावार्थ—जो मुनि इस लोकमें इन्द्रियोंके विषयोंकी अभिलाषासे रहित हो, परलोकमें भी किसी पदकी इच्छा नहीं रखता हो, योग्य परिमित लघु आहार व योग्य विहारको करनेवाला हो, क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोंका विजयी हो, वही श्रमण या साधु होता है।

स्वामी कुंदकुंद बोधपाहुडमें कहते हैं—

णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा ।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५० ॥

भावार्थ—जो स्नेह रहित हैं, लोभ रहित हैं, मोह रहित हैं, विकार रहित हैं, क्रोधादिकी कलुषतासे रहित हैं, भय रहित हैं, आशा तृष्णासे रहित हैं, उन्हींको साधु दीक्षा कही गई है।

वट्टकेरस्वामी मूलाचार समयसारमें कहते हैं—

भिक्खं चर वस रण्णे थोवं जेमेहि मा बहू जंप।
दुःखं सह जिण णिद्दा मेत्तिं भावेहि सुट्ठु वेरग्गं ॥ ४ ॥
अव्ववहारी एक्को झाणे एयग्गमणो भव णिरारंभो।
चत्तकसायपरिग्गह पयत्तचेट्ठो असंगो य ॥ ५ ॥

भावार्थ—भिक्षासे भोजन कर, वनमें रह थोड़ा भोजन कर, दुःखोंको सह, निद्राको जीत, मैत्री और वैराग्यभावनाओंको भले-प्रकार विचार कर' लोक व्यवहार न कर, एकाकी रह, ध्यानमें लीन हो, आरम्भ मत कर, क्रोधादि कषाय रूपी परिग्रहका त्याग कर, उद्योगी रह, व असंग या मोहरहित रह।

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झइ ॥ १२२ ॥
जदं तु चरमाणस्स दयापेहुस्स भिक्खुणो।
णवं ण बज्झदे कम्मं पोराण च विधूयदि ॥ १२३ ॥

भावार्थ-हे साधु ! यत्नपूर्वक देखके चल, यत्नसे व्रत पालनका उद्योग कर, यत्नसे भूमि देखकर बैठ, यत्नसे शयन कर, यत्नसे भोजन कर, यत्नसे बोल, इस तरह वर्तनसे पाप बंध न होगा। जो दयावान साधु यत्नपूर्वक आचरण करता है उनके नए कर्म नहीं बंधते, पुराने दूर होजाते हैं।

श्री शिवकोटि भगवती आराधनामें कहते हैं—

जिदरागो, जिददोसो, जिदिंदिओ जिदभओ जिदकसाओ।
रदि अरदि मोहमहणो, झाणोवगओ सदा होइ ॥ ६८ ॥

भावार्थ—जिसने रागको जीता है, द्वेषको जीता है, इन्द्रियोंको

जीता है, मदको जीता है, कषायोंको जीता है, रति अरति व मोहका जिसने नाश किया है वही सदाकाल ध्यानमें उपयुक्त रह सक्ता है ।

श्री शुभचंद्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

विरम विरम संगान्मुंच मुंच प्रपंचं-
विसृज विसृज मोहं विद्धि विद्धि स्वतत्वम् ॥
कलय कलय वृत्तं पश्य पश्य स्वरूपं ।
कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्दहेतोः ॥ ४२–१९ ॥

भावार्थ-हे भाई ! तू परिग्रहसे विरक्त हो, जगतके प्रपंचको छोड़, मोहको विदा कर, आत्मतत्वको समझ, चारित्रका अभ्यास कर, आत्मस्वरूपको देख, मोक्ष सुखके लिये पुरुषार्थ कर ।

(१४) मज्झिमनिकाय द्वेधा वितर्क सूत्र ।

गौतम बुद्ध कहते हैं—भिक्षुओ ! बुद्धत्व प्राप्तिके पूर्व भी बोधिसत्व होते वक्त मेरे मनमें ऐसा होता था कि क्यों न दो टूक वितर्क करते करते मैं विहरूं—जो काम वितर्क, व्यापाद (द्वेष) वितर्क, विहिंसा वितर्क इन तीनोंको मैंने एक भागमें किया और जो नैष्काम्य (काम भोग इच्छा रहित) वितर्क, अव्यापाद वितर्क, अविहिंसा वितर्क इन तीनोंको एक भागमें किया। भिक्षुओ ! सो इस प्रकार प्रमाद रहित, आतापी (उद्योगी), प्रहितात्मा (आत्म संयमी) हो विहरते भी मुझे काम वितर्क उत्पन्न होता था। सो मैं इस प्रकार जानता था । उत्पन्न हुआ यह मुझे काम वितर्क और यह आत्म आबाधाके लिये है, पर आबाधाके लिये है, उभय आबा-

धाके लिये है। यह प्रज्ञानिरोधक, विघात पक्षिक (हानिके पक्षका), निर्वाणको नहीं ले जानेवाला है। यह सोचते वह काम वितर्क अस्त हो जाता था। इसतरह बार बार उत्पन्न होनेवाले काम-वितर्कको मैं छोड़ता ही था, हटाता ही था, अलग करता ही था। इसी प्रकार व्यापाद वितर्कको तथा विहिंसा वितर्कको जब उत्पन्न होता था तब मैं अलग करता ही था।

भिक्षुओ! भिक्षु जैसे जैसे अधिकतर वितर्क करता है, विचार करता है वैसे वैसे ही चित्तको झुकना होता है। यदि भिक्षुओ! भिक्षु काम वितर्कको या व्यापादवितर्कको या विहिंसा वितर्कको अधिकतर करता है तो वह निष्काम वितर्कको या अव्यापाद वितर्कको या अविहिंसा वितर्कको छोड़ता है, और कामादि वितर्कको बढ़ाता है। उसका चित्त कामादि वितर्ककी ओर झुक जाता है।

जैसे भिक्षुओ! वर्षाके अंतिम मासमें (शरद कालमें) जब फसल भरी रहती है तब ग्वाला अपनी गायोंकी रखवाली करता है। वह उन गायोंसे वहां (भरे हुए खेतों) से डंडेसे हांकता है, मारता है, रोकता है, निवारता है। सो किस हेतु! वह ग्वाला उन खेतोंमें चरनेके कारण वध, बन्धन, हानि या निन्दाको देखता है। ऐसे ही भिक्षुओ! मैं अकुशल धर्मोंके दुष्परिणाम, अपकार, संक्लेशको और कुशल धर्मोंमें अर्थात् निष्कामता आदिमें सुपरिणाम और परिशुद्धताका संरक्षण देखता था।

भिक्षुओ! सो इस प्रकार प्रमादरहित विहरते यदि निष्कामता वितर्क, अव्यापाद वितर्क या अविहिंसा वितर्क उत्पन्न होता था,

सो मैं इस प्रकार जानता था कि उत्पन्न हुआ यह मुझे निष्कामता आदि वितर्क—यह न आत्म आबाधा, न पर आबाधा, न उभय आबाधाके लिये है यह प्रज्ञावर्द्धक है, अविघात पक्षिक है और निर्वाणको लेजानेवाला है। रातको भी या दिनको भी यदि मैं ऐसा वितर्क करता, विचार करता तो मैं भय नहीं देखता। किंतु बहुत देर वितर्क व विचार करते मेरी काया क्लान्त (थकी) होजाती, कायाके क्लान्त होनेपर चित्त अपहत (शिथिल) होजाता, चित्तके अपहत होनेपर चित्त समाधिसे दूर हट जाता था। सो मैं अपने भीतर (अध्यात्ममें) ही चित्तको स्थापित करता था, बढ़ाता था, एकाग्र करता था। सो किस हेतु? मेरा चित्त कहीं अपहत न होजावे।

भिक्षुओ! भिक्षु जैसे जैसे अधिकतर निष्कामता वितर्क, अव्यापाद वितर्क या अविहिंसा वितर्कका अधिकतर अनुवितर्क करता है तो वह कामादि वितर्कको छोड़ता है, निष्कामता आदि वितर्कको बढ़ाता है। उस बाधित निष्कामता अव्यापाद, अविहिंसा वितर्ककी ओर झुकता है। जैसे भिक्षुओ! ग्रीष्मके अंतिम भागमें जब सभी फसल जमाकर गांममें चली जाती है ग्वाला गायोंको रखता है। वृक्षके नीचे या चौड़ेमें रहकर उन्हें केवल याद रखना होता है कि ये गायें हैं। ऐसे ही भिक्षुओ! याद रखना मात्र होता था कि ये धर्म हैं। भिक्षुओ! मैंने न दबनेवाला वीर्य (उद्योग) आरंभ कर रखा था, न भूलनेवाली स्मृति मेरे सन्मुख थी, शरीर मेरा अचंचल, शान्त था, चित्त समाहित एकाग्र था सो मैं भिक्षुओं! प्रथम ध्यानको, द्वितीय ध्यानको, तृतीय ध्यानको, चतुर्थ

ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। पूर्व निवास अनुस्मरणके लिये, प्राणियोंके च्युति उत्पादके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाता था। तथा समाहित चित्त, तथा परिशुद्ध, परिमोदात, अनंगण, विगत क्लेश, मृदुभूत, कम्मनीय, स्थित, एकाग्र चित्त होकर आस्रवोंके क्षयके लिये चित्तको झुकाता था। इस तरह रात्रिके पिछले पहर तीसरी विद्या प्राप्त हुई, अविद्या दूर होगई, विद्या उत्पन्न हुई, तम चला गया, आलोक उत्पन्न हुआ। जैसा उद्योगशील अप्रमादी तत्वज्ञानी वा आत्मसंयमीको होता है।

जैसे भिक्षुओ! किसी महावनमें महान गहरा जलाशय हो और उसका आश्रय ले महान् मृगोंका समूह विहार करता है। कोई पुरुष उस मृग समूहका अनर्थ आकांक्षी, अहित आकांक्षी, अयोग क्षेम आकांक्षी उत्पन्न होवे। वह उस मृग समूहके क्षेम, कल्याणकारक, प्रीतिपूर्वक गन्तव्य मार्गको बंद कर दे और एकचर (अकेले चलने लायक) कुमार्गको खोल दे और एक चारिका (जाल) रख दे। इस प्रकार वह महान् मृगसमूह दूसरे समयमें विपत्तिमें तथा क्षीणताको प्राप्त होवेगा। और भिक्षुओ! उस महान मृगसमूहका कोई पुरुष हिताकांक्षी योग क्षेमकांक्षी उत्पन्न होवे, वह उस मृगसमूहके क्षेम कल्याणकारक, प्रीतिपूर्वक गन्तव्य मार्गको खोल दे, एकचर कुमार्गको बन्द कर दे और (चारिका) जालका नाश कर दे। इस प्रकार वह मृगसमूह दूसरे समयमें वृद्धि, विरूढ़ि और विपुलताको प्राप्त होवेगा।

भिक्षुओ! अर्थके समझानेके लिये मैंने यह उपमा कही है।

यहां यह अर्थ है—गहरा महान जलाशय यह कामों (कामनाओं, भोगों) का नाम है। महान मृगसमूह यह प्राणियोंका नाम है। अनर्थाकांक्षी, अहिताकांक्षी, अयोगक्षेमकांक्षी पुरुष यह मार (पापी कामदेव) का नाम है। कुमार्ग यह आठ प्रकारके मिथ्या मार्ग हैं। जैसे—(१) मिथ्यादृष्टि, (२) मिथ्या संकल्प, (३) मिथ्या वचन, (४) मिथ्या कर्मान्त (कायिक कर्म) (५) मिथ्या आजीव (जीविक) (६) मिथ्या व्यायाम, (७) मिथ्या स्मृति, (८) मिथ्या समाधि। एकचर यह नन्दी-रागका नाम है, एक चारिका (जाल) अविद्याका नाम है। भिक्षुओं! अर्थाकांक्षी, हिताकांक्षी, योगक्षेमाकांक्षी, यह तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्धका नाम है। क्षेम, स्वस्तिक, प्रीति-गमनीय मार्ग यह आर्य अष्टांगिक मार्गका नाम है। जैसे कि—(१) सम्यक्दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक समाधि। इस प्रकार भिक्षुओं! मैंने क्षेम, स्वस्तिक प्रीतिगमनीय मार्गको खोल दिया। दोनों ओरसे एक चारिका (अविद्या) को नाश कर दिया। भिक्षुओ! श्रावकोंके हितैषी, अनुकम्पक, शास्ताको अनुकम्पा करके जो करना था वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया। भिक्षुओ! यह वृक्ष मूल है, ये सूने घर हैं। ध्यानरत होओ। भिक्षुओ! प्रमाद मत करो, पीछे अफसोस करनेवाले मत बनना, यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन है।

नोट—यह सूत्र बहुत उपयोगी है, बहुत विचारने योग्य है।

दोहक वितर्कका नाम जैन सिद्धांतमें भेदविज्ञान है। कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिंसावितर्क इन तीनोंमें राग द्वेष

आजाते हैं। काम और राग एक हैं, व्यापाद द्वेषका पूर्व भाव, विहिंसा आगेका भाव है। दोनों द्वेषमें आते हैं। रागद्वेष ही संसारका मूल है, त्यागने योग्य है और वीतरागता तथा वीतद्वेषता ग्रहण करने योग्य है। ऐसा वारवार विचार करनेसे—राग व द्वेष जब उठे तब उनका स्वागत न करनेसे उनको स्वपर बाधाकारी जाननेसे, व वीतरागता व वीतद्वेषताको स्वागत करनेसे, उनको स्वपरको अबाधाकारी जाननेसे, इस तरह भेदविज्ञानका वारवार अभ्यास करनेसे रागद्वेष मिटता है और वीतरागभाव बढ़ता है। चित्तमें रागद्वेषका संस्कार रागद्वेषको बढ़ाता है। चित्तमें वीतरागता व वीतद्वेषताका संस्कार वैराग्यको बढ़ाता है व रागद्वेषको घटाता है।

रागभाव होनेसे अपने भीतर आकुलता होती है, चिन्ता होती है, पदार्थ मिलनेकी घबड़ाहट होती है, मिलनेपर रक्षा करनेकी आकुलता होती है, वियोग होनेपर शोककी आकुलता होती है। सच्चा आत्मीक भाव ढक जाता है। कर्मसिद्धांतानुसार कर्मका बंध होता है। रागसे पीड़ित होकर हम स्वार्थसिद्धिके लिये दूसरोंको बाधा देकर व राग पैदा करके अपना विषय पोषण करते हैं। तीव्र राग होता है तो अन्याय, चोरी, व्यभिचार आदि कर लेते हैं। अति रागवश विषयभोग करनेसे गृहस्थ आप भी रोगी व निर्बल होजाता है व स्वस्त्रीको भी रोगी व निर्बल बना देता है। इसतरह यह राग स्वपर बाधाकारी है। इसीतरह द्वेष या हिंसक भाव भी है, अपनी शांतिका नाश करता है। दूसरोंकी तरफ कटुक वचनप्रहार, वध आदि करनेसे दूसरेको बाधाकारी होता है। अपनेको कर्मका बन्ध कराता है। इसतरह यह द्वेष भी स्वपर बाधाकारी है, मोक्षमार्गमें

बाधक है, संसार मार्गवर्द्धक है, ऐसा विचारना चाहिये। इसके विरुद्ध निष्कामभाव या वीतरागभाव तथा वीतद्वेष या अहिंसकभाव अपने भीतर शांति व सुख उत्पन्न करता है। कोई आकुलता नहीं होती है। दूसरे भी जो संयोगमें आते हैं व वाणीको सुनते हैं उनको भी सुखशांति होती है। वीतराग तथा अहिंसामई भावसे किसी भी प्राणीको कष्ट नहीं दिया जासक्ता, किसीके प्राण नहीं पीड़े जाते। सर्व प्राणी मात्र अभय भावको पाते हैं। रागद्वेषसे जब कर्मोंका बन्ध होता है तब वीतरागभावसे कर्मोंका क्षय होकर निर्वाण प्राप्त होता है।

ऐसा वारवार विचारकर भेदविज्ञानके अभ्याससे वीतराग या वीतद्वेष भावकी वृद्धि करनी चाहिये तब ही ध्यानकी सिद्धि होसकेगी। भेदविज्ञानमें तो विचार होते हैं। चित्त चंचल रहता है। समाधान व शांति नहीं होती है। इसलिये साधक विचार करतेर अध्यात्मरत होजाता है, अपनेमें एकाग्र होजाता है, ध्यानमग्न होजाता है, तब चित्तको परम-शांति प्राप्त होती है। जब ध्यानमें चित्त न लगे तब फिर भेदविज्ञानका मनन करते हुए अपनेको कामभाव व द्वेषभाव या हिंसात्मक भावसे रक्षित करे। सूत्रमें ग्वालेका दृष्टान्त इसीलिये दिया है कि ग्वाला इस बातकी सावधानी रखता है कि गाएं खेतोंको न खालें। जब खेत हरेभरे होते हैं तब गायोंको वारवार जाते हुए रोकता है। जब खेत फसल रहित होते हैं तब गायोंको स्मरण रखता है, उनसे खेतोंकी हानिका भय नहीं रखता है। इसीतरह जब तक कामभाव व द्वेषभाव जागृत होरहे हैं, उद्योग करते भी रागद्वेष होजाते हैं, तबतक साधकको वारवार विचार करके उनसे चित्तको

हटाना चाहिये। जब ये शांत होगए हों तब तो सावधान होकर निश्चिन्त होकर आत्मध्यान करना चाहिये। स्मरण रखना चाहिये कि फिर कहीं किन्हीं कारणोंसे रागद्वेष न होजावें।

दूसरा दृष्टांत जलाशय तथा मृगोंका दिया है. कि जैसे मृग जलाशयके पास चरते हों, कोई शिकारी जाल बिछा दे व जालमें फंसनेका मार्ग खोल दें तब वे मृग जालमें फंसकर दुःख उठाते हैं, वैसे ही ये संसारी प्राणी कामभोगोंसे भरे हुए संसारके भारी जलाशयके पास घूम रहे हैं। यदि वे भोगोंकी नन्दी या तृष्णाके वशीभूत हों तो वे मिथ्या मार्गपर चलकर अविद्याके जालमें फंस जावेंगे व दुःख उठावेंगे। मिथ्या मार्ग मिथ्या **श्रद्धान**, **मिथ्या ज्ञान** व **मिथ्या चारित्र** है। यही अष्टांगरूप **मिथ्यामार्ग** है। निर्वाणको हितकारी न जानना, संसारमें लिप्त रहनेको ही ठीक श्रद्धान करना **मिथ्यादृष्टि** है। निर्वाणकी तरफ जानेका संकल्प न करके संसारकी तरफ जानेका संकल्प या विचार करना **मिथ्या संकल्प** या मिथ्या ज्ञान है। शेष छः बातें मिथ्या चारित्रमें गर्भित हैं। मिथ्या कठोर दुःखदाई विषय पोषक वचन बोलना, **मिथ्या वचन** है. संसारवर्द्धक कार्य करना **मिथ्या कर्मान्त** है, असत्यसे व चोरीसे आजीविका करके अशुद्ध, रागवर्धक, रागकारक भोजन करना, **मिथ्या आजीव** है। संसारवर्धक धर्मके व तपके लिये उद्योग करना, **मिथ्या व्यायाम** है। संसारवर्धक क्रोधादि कषायोंकी व विषय भोगोंकी पुष्टिकी स्मृति रखना **मिथ्या स्मृति** है। विषयाकांक्षासे व किसी परलोकके लोभसे ध्यान लगाना **मिथ्या समाधि** है। यह सब अविद्यामें फंसनेका

मार्ग है। इससे बचनेके लिये श्रीगुरुने दयालु होकर उपदेश दिया कि विषयराग छोड़ो, निर्वाणके प्रेमी बनो और अष्टांग मार्ग या सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इस रत्नत्रय मार्गको पालो, सच्चा निर्वाणका श्रद्धान व ज्ञान रक्खो, हितकारी संसारनाशक वचन बोलो, ऐसी ही क्रिया करो, शुद्ध निर्दोष भोजन करो, शुद्ध भावके लिये उद्योग या व्यायाम करो, निर्वाणतत्वका स्मरण करो व निर्वाणभावमें या अध्यात्ममें एकाग्र होकर सम्यक्समाधि भजो। यही अविद्याके नाशका व विद्याके प्रकाशका मार्ग है, यही निर्वाणका उपाय है। आत्मध्यानके लिये प्रमाद रहित होकर एकांत सेवनका उपदेश दिया गया है।

जैन सिद्धांतमें इस कथन संबन्धी नीचे लिखे वाक्य उपयोगी हैं—

समयसारजीमें श्री कुंदकुंदाचार्य कहते हैं:—

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥७७॥

भावार्थ—ये रागद्वेषादि आस्रव भाव अपवित्र हैं, निर्वाणसे विपरीत हैं व संसार—दुःखोंके कारण हैं ऐसा जानकर ज्ञानी जीव इनसे अपनेको अलग करता है। जब भीतर क्रोध, मान, माया लोभ या रागद्वेष उठ खड़े होते हैं अध्यात्मीक पवित्रता बिगड़ जाती है, गन्दापना या अशुचिपना होजाता है। अपना स्वभाव तो शांत है, इन रागद्वेषका स्वभाव अशांत है, इससे ये विपरीत हैं। अपना स्वभाव सुखमई है, रागद्वेष वर्तमानमें भी दुःख देते हैं, वे भविष्यमें अशुभ कर्मबंधका दुःखदाई फल प्रगट करते हैं। ज्ञानीको ऐसा विचारना चाहिये।

अहमिक्को खलु सुद्धो य णिम्ममो णाणदंसणसमग्गो ।
तह्मि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि ॥ ७८ ॥

भावार्थ—मैं निर्वाण स्वरूप आत्मा एक हूं, शुद्ध हू, परकी ममतासे रहित हूं, ज्ञानदर्शनसे पूर्ण हूं । इसतरह मैं अपने शुद्ध स्वभावमें स्थित होता हुआ, उसीमें तन्मय होता हुआ इन सर्व ही रागद्वेषादि आस्रवोंको नाश करता हूं ।

समयसार कलशमें अमृतचंद्राचार्य कहते हैं—

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥ ६-६ ॥
भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्म्मणां संवरेण ।
बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं ।
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥ ८-६ ॥

भावार्थ—रागद्वेष बाधाकारी है, वीतरागभाव सुखकारी है, मेरा स्वभाव वीतराग है, रागद्वेष पर हैं, कर्मकृत विकार हैं । इस तरहके भेदके ज्ञानकी भावना लगातार तब तक करते रहना चाहिये जब तक ज्ञान परसे छूटकर ज्ञान ज्ञानमें प्रतिष्ठाको न पावे, अर्थात् जब तक वीतराग ज्ञान न हो जावे । भेद ज्ञानके वार वार उछलनेसे शुद्ध आत्मतत्वका लाभ होता है । शुद्ध तत्वके लाभसे रागद्वेषका ग्राम ऊजड़ हो जाता है, तब नवीन कर्मोका आस्रव रुककर संवर होजाता है, तब ज्ञान परम संतोषको पाता हुआ अपने निर्मल एक स्वरूप, श्रेष्ठ प्रकाशको रखता हुआ व सदा ही उद्योत रहता हुआ अपने ज्ञान स्वभावमें ही झलकता रहता है ।

श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

रागद्वेषद्वयीदीर्घनेत्राकर्षणकर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ॥ ११ ॥

भावार्थ—यह जीव चिरकालसे अज्ञानके कारण रागद्वेषसे कर्मोंको खींचता हुआ इस संसारसमुद्रमें भ्रमण कर रहा है। उक्त आचार्य **समाधिशतकम** कहते हैं—

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं स तत्त्वं नेतरो जनः ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जिनका चित्त रागद्वेषादिक लहरोंसे क्षोभित नहीं है वही अपने शुद्ध स्वरूपको देखता है, परन्तु रागीद्वेषी जन नहीं देख सक्ता है। **सार समुच्चयमें** कहा है—

रागद्वेषमयो जीवः कामक्रोधवशे यतः।
लोभमोहमदाविष्टः संसारे संसरत्यसौ ॥ २४ ॥
कषायातपतप्तानां विषयामयमोहिनाम्।
संयोगायोगखिन्नानां सम्यक्त्वं परमं हितम् ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जो जीव रागद्वेषमई है, काम, क्रोधके वशमें है, लोभ, मोह व मदसे घिरा हुआ है, वह संसारमें भ्रमण करता ही है। क्रोधादि कषायोंके आतापसे जो तप्त है व जो इन्द्रिय विषयरूपी रोगसे या विषसे मूर्छित है व जो अनिष्ट संयोग व इष्ट वियोगसे पीड़ित है उसके लिये **सम्यग्दर्शन** परम हितकारी है।

आत्मानुशासनमें कहा है—

मुहुः प्रसार्य सज्ज्ञानं पश्यन् भावान् यथास्थितान्।
प्रीत्यप्रीती निराकृत्य ध्यायेदध्यात्मविन्मुनिः ॥ १७७ ॥

भावार्थ—अध्यात्मका ज्ञाता मुनि वारवार सम्यग्ज्ञानको फैलाकर जैसे पदार्थोंका स्वरूप है वैसा उनको देखता हुआ रागद्वेषको दूर करके आत्माको ध्याता है ।

तत्वानुशासनम कहा है—

न मुह्यति न संशेते न स्वार्थानध्यवस्यति ।
न रज्यते न च द्वेष्टि किंतु स्वस्थः प्रतिक्षणं ॥ २३७ ॥

भावार्थ—ज्ञानी न तो मोह करते हैं, न संशय करते हैं, न ज्ञानमें प्रमाद लाते हैं, न राग करते हैं, न द्वेष करते हैं, किंतु सदा अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित होकर सम्यक् समाधिको प्राप्त करते हैं।

ज्ञानार्णवम कहा है—

बोध एव दृढः पाशो हृषीकमृगबन्धने ।
गारुडश्च महामंत्रः चित्तभोगिविनिग्रहे ॥ १४–७ ॥

भावार्थ—इन्द्रियरूपी मृगोंको बांधनेके लिये सम्यग्ज्ञान ही दृढ़ फांसी है तथा चित्तरूपी सर्पको वश करनेके लिये सम्यग्ज्ञान ही गारुडी मंत्र है ।

(१५) मज्झिमनिकाय वितर्क संस्थान सूत्र ।

गौतम बुद्ध कहते हैं—भिक्षुको पांच निमित्तोंको समय समय पर मनमें चिन्तवन करना चाहिये ।

(१) भिक्षुको उचित है जिस निमित्तको लेकर, जिस निमित्तको मनमें करके रागद्वेष मोहवाले पापकारक अकुशल वितर्क (भाव) उत्पन्न होते हैं, उस निमित्तको छोड़ दूसरे कुशल निमित्तको मनमें

करे। ऐसा करनेसे छन्द (राग) सम्बन्धी दोष व मोह सम्बन्धी अकुशल वितर्क नष्ट होते हैं, अस्त होते हैं, उनके नाशसे अपने भीतर ही चित्त ठहरता है, स्थिर होता है, एकाग्र होता है, समाहित होता है। जैसे राज सूक्ष्म आणीसे मोटी आणीको निकालकर फेंक देता है।

(२) उस भिक्षुको उस निमित्तको छोड़ दूसरे कुशल संबंधी निमित्तको मनमें करने पर भी यदि रागद्वेष मोह संबन्धी अकुशल वितर्क उत्पन्न होते ही है तो उस भिक्षुको उन वितर्कोंके आदिनव (दुष्परिणाम) की जांच करनी चाहिये कि ये मेरे वितर्क अकुशल हैं, ये मेरे वितर्क सावद्य (पापयुक्त) हैं। ये मेरे वितर्क दुःखविपाक (दुःख) हैं। इन वितर्कोंके आदिनवकी परीक्षा करनेपर उसके राग द्वेष मोह बुरे भाव नष्ट होते हैं, अस्त होते हैं, उनके नाशसे चित्त अपने भीतर ठहरता है, समाहित होता है। जैसे कोई शृंगार पसंद अल्पवयस्क तरुण पुरुष या स्त्री मरे सांप, मरे कुत्ता या आदमीके मुर्देके कंठमें लग जानेसे घृणा करे वैसे ही भिक्षुको अकुशल निमित्तोंको छोड़ देना चाहिये।

(३) यदि उस भिक्षुको उन वितर्कोंके आदिनवको जांचते हुए भी राग, द्वेष, मोह सम्बन्धी अकुशल वितर्क उत्पन्न होते ही हैं तो उस भिक्षुको उन वितर्कोंको यादमें लाना नहीं चाहिये। मनमें न करना चाहिये ऐसा करनेसे वे वितर्क नाश होते हैं और चित्त अपने भीतर ठहरता है। जैसे दृष्टिके सामने आनेवाले रूपोंके देखनेकी इच्छा न करनेवाला आदमी आंखोंको मूंदले या दूसरेकी ओर देखने लगे।

(४) यदि उस भिक्षुको उन वितर्कोंके मनमें न लानेपर भी रागद्वेष मोह सम्बन्धी बुरे भाव उत्पन्न होते ही हैं तो उस भिक्षुको उन वितर्कोंके संस्कारका संस्थान (कारण) मनमें करना चाहिये। ऐसा करनेसे वे वितर्क नाश होते हैं जैसे भिक्षुओ! कोई पुरुष शीघ्र आजाता है उसको ऐसा हो क्यों मैं शीघ्र जाता हूं क्यों न धीरे२ चलूं, वह धीरे२ चले, फिर ऐसा हो क्यों न मैं बैठ जाऊँ, फिर वह बैठ जावे. फिर ऐसा हो क्यों न मैं लेट जाऊँ, फिर वह लेट जावे, वह पुरुष मोटे ईर्यापथसे हटकर सूक्ष्म ईर्यापथको स्वीकार करे। इसी तरह भिक्षुको उचित है कि वह उन वितर्कोंके संस्कारके संस्थानको मनमें विचारे।

(५) यदि उस भिक्षुको उन वितर्कोंके वितर्क-संस्कार-संस्थानको मनमें करनेसे भी रागद्वेष मोह सम्बन्धी अकुशल वितर्क उत्पन्न होते ही हैं तो उसे दांतोंको दांतोंपर रखकर, जिह्वाको तालूसे चिपटाकर, चित्तसे चित्तका निग्रह करना चाहिये, संतापन व निर्पीडन करना चाहिये। ऐसा करनेसे वे रागद्वेष मोहभाव नाश होते हैं। जैसे बलवान पुरुष दुर्बलको शिरसे, कंधेसे पकडकर निग्रहीत करे, निपीड़ित करे, संतापित करे।

इस तरह पांच निमित्तोंके द्वारा भिक्षु वितर्कके नाना मार्गोंको वश करनेवाला कहा जाता है। वह जिस वितर्कको चाहेगा उसका वितर्क करेगा। जिस वितर्कको नहीं चाहेगा उस वितर्कको नहीं करेगा। ऐसे भिक्षुने तृष्णारूपी बन्धनको हटा दिया। अच्छी तरह जानकर, साक्षात् कर, दुःखका अंत कर दिया।

नोट—इस सूत्रमें रागद्वेष मोहके दूर करनेका विधान है। वास्तवमें निमित्तोंके आधीन भाव होते हैं, भावोंकी सम्हालके लिये निमित्तोंको बचाना चाहिये। यहां पांच तरहसे निमित्तोंको टालनेका उपदेश दिया है। (१) जब बुरे निमित्त हों जिनसे रागद्वेष मोह होता है तब उनको छोड़कर वैराग्यके निमित्त मिलावे जैसे स्त्री, नपुंसक, बालक, श्रृंगार, कुटुम्बादिका निमित्त छोड़कर एकान्त सेवन, वन निवास, शास्त्रस्वाध्याय, साधुसंगतिका निमित्त मिलावे तब वे बुरे भाव नाश होजावेंगे।

(२) बुरे निमित्तोंके छोड़नेपर भी अच्छे निमित्त मिलाने पर भी यदि रागद्वेष मोह पैदा हों तो उनके फलको विचारे कि इनसे मेरेको यहां भी कष्ट होगा, भविष्यमें भी कष्ट होगा, मैं निर्वाण मार्गसे दूर चला जाऊंगा। ये भाव अशुद्ध हैं, त्यागने योग्य हैं। ऐसा बार बार विचारनेसे वे रागादि भाव दूर होजावेंगे।

(३) ऐसा करनेपर भी रागद्वेषादि भाव पैदा हों तो उनको स्मरण नहीं करना चाहिये। जैसे ही वे मनमें आवें मनको हटा लेना चाहिये। मनको तत्व विचारादिमें लगा देना चाहिये।

(४) ऐसा करनेपर भी यदि रागद्वेष, मोह पैदा हो तो उनके संस्कारके कारणोंको विचार करे। इसतरह धीरे२ वे रागादि दूर होजायँगे।

(५) ऐसा होते हुए भी यदि रागादि भाव पैदा हों तो बलात्कार चित्तको हटाकर तत्वविचारमें लगानेका अभ्यास करना चाहिये। पुनः पुनः उत्तम भावोंके संस्कारसे बुरे भावोंके संस्कार मिट जाते हैं।

जैन सिद्धांतानुसार भी यही बात है कि राग, द्वेष, मोहको त्यागे विना वीतरागता सहित ध्यान नहीं होसकेगा। इसलिये इन भावोंको दूर करनेका ऊपर लिखित प्रयत्न करे। दूसरा प्रयत्न आत्मध्यानका भी जरूरी है। जितना२ आत्मध्यान द्वारा भाव शुद्ध होगा उतना२ उन कषायरूपी कर्मोंकी शक्ति क्षीण होगी, जो भावी कालमें अपने विपाकपर रागादि भावोंके पैदा करते हैं। इस तरह ध्यानके बलसे हम उस मोहकर्मको जितना२ क्षीण करेंगे उतना२ रागद्वेषादि भाव नहीं होगा।

वास्तवमें सम्यग्दर्शन ही रागादि दूर करनेका मूल उपाय है। जिसने संसारको असार व निर्वाणको सार समझ लिया वह अवश्य रागद्वेष मोहके निमित्तोंसे श्रद्धापूर्वक बचेगा और वैराग्यके निमित्तोंमें वर्तन करेगा। धैर्यके साथ उद्योग करनेसे ही रागादि भावोंपर विजय प्राप्त होगी।

जैन सिद्धांतके कुछ उपयोगी वाक्य ये हैं—

समाधिशतकमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं—

अविद्याभ्याससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदेव ज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्वेऽवतिष्ठते ॥ ३७ ॥

भावार्थ—अविद्याके अभ्यासके संस्कारसे मन लाचार होकर रागी, द्वेषी, मोही होजाता है, परन्तु यदि ज्ञानका संस्कार डाला जावे, सत्य ज्ञानके द्वारा विचारा जावे तो यह मन स्वयं ही आत्माके सच्चे स्वरूपमें ठहर जाता है।

यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।
तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात् ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जब किसी तत्त्वज्ञानीके मनमें मोहके कारण रागद्वेष पैदा होजावे उसी समय उसे उचित है कि वह शान्तभावसे अपने स्वरूपमें ठहरकर निर्वाणस्वरूप अपने आत्माकी भावना करे । राग-द्वेष लौकिक संसर्गमें होते हैं अतएव उसको छोड़े ।

जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः ।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥ ७२ ॥

भावार्थ—जगतके लोगोंसे बातचीत करनेसे मनकी चंचलता होती है, तब चित्तमें राग, द्वेष, मोह विकार पैदा होजाते हैं । इस-लिये योगीको उचित है कि मानवोंके संसर्गको छोड़े ।

स्वामी पूज्यपाद इष्टोपदेशमें कहते हैं—

अभवच्चित्तविक्षेप एकान्ते तत्त्वसंस्थितिः ।
अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्त्वं निजात्मनः ॥ ३६ ॥

भावार्थ—तत्वोंको भले प्रकार जाननेवाला योगी ऐसे एकांतमें जावे जहां चित्तको कोई क्षोभके या रागद्वेषके पैदा करनेके निमित्त न हो और वहां आसन लगाकर तत्वस्वरूपमें तिष्ठे, आलस्य निद्राको जीते और अपने निर्वाणस्वरूप आत्माका अभ्यास करे ।

संसारमें अकुशल मार्ग या पाप पांच हैं—हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह इनसे बचनेके लिये पांच पांच भावनाएं जैन सिद्धांतमें बताई हैं । जो उनपर ध्यान रखता है वह उन पांचों पापोंसे बच सक्ता है ।

श्री उमास्वामी महाराज तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं—

(१) हिंसासे बचनेकी पांच भावनाएँ—

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४-७॥

(१) वचनगुप्ति—वचनकी सम्हाल, पर पीड़ाकारी वचन न कहा जावे, (२) मनोगुप्ति—मनमें हिंसाकारक भाव न लाऊं, (३) ईर्यासमिति—चार हाथ जमीन आगे देखकर शुद्ध भूमिमें दिनमें चलूं, (४) आदाननिक्षेपण समिति—देखकर वस्तुको उठाऊं व रखूं, (५) आलोकित पानभोजन—देखकर भोजन व पान करूँ।

(२) असत्यसे बचनेकी पांच भावनाएं—

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥ ५–७ ॥

(१) क्रोध प्रत्याख्यान-क्रोधसे बचूं क्योंकि यह असत्यका कारण है।

(२) लोभ प्रत्याख्यान लोभसे बचूं क्योंकि यह असत्यका कारण है।

(३) भीरुत्व प्रत्याख्यान—भयसे बचूं क्योंकि यह असत्यका कारण है।

(४) हास्य प्रत्याख्यान—हंसीसे बचूं क्योंकि यह असत्यका कारण है।

(५) अनुवीची भाषण-शास्त्रके अनुसार वचन कहूं।

(३) चोरीसे बचनेकी पांच भावनाएं—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पञ्च ॥ ६–७ ॥

(१) शून्यागार–शूने खाली, सामान रहित, वन, पर्वत, मैदानादिमें ठहरना। (२) विमोचितावास—छोड़े हुए, उजड़े हुए मकानमें ठहरना। (३ परोपरोधाकरण—जहां आप हो कोई आवे तो मना न करे या जहां कोई रोके वहां न ठहरे। (४) भैक्ष्यशुद्धि—

भोजन शुद्ध व दोष रहित लेवे। (५) सधर्माविसंवाद–स्वधर्मी जनोंसे झगड़ा न करे, इससे सत्य धर्मका लोप होता है।

(४) कुशीलसे बचनेकी पांच भावनाएं—

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥ ७–७ ॥

(१) स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग–स्त्रियोंमें राग बढ़ानेवाली कथाके सुननेका त्याग, (२) तन्मनोहरांगनिरीक्षण त्याग–स्त्रियोंके मनोहर अङ्गोंको राग सहित देखनेका त्याग, (३) पूर्वरतानुस्मरण त्याग–पहले भोगोंके स्मरणका त्याग, (४) वृष्येष्टरस त्याग–कामोद्दीपक इष्ट रस खानेका त्याग, (५) स्वशरीरसंस्कार त्याग–अपने शरीरके शृंगार करनेका त्याग।

(५) परिग्रहसे बचनेकी पांच भावनाएं–ममता त्यागकी भावनाएं—

" मनोज्ञामनोज्ञविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच। "

अच्छे या बुरे पांचों इन्द्रियोंके पदार्थोंमें राग व द्वेष नहीं करना। जो कुछ खानपान स्थान व संयोग प्राप्त हो उनमें संतोष रखना। इन्द्रियोंकी तृष्णाको मिटानेका यही उपाय है।

सार समुच्चयमें कहा है—

ममत्वाज्जायते लोभो लोभाद्रागश्च जायते।
रागाच्च जायते द्वेषो द्वेषाद्दुःखपरंपरा ॥ २३३ ॥
निर्ममत्वं परं तत्वं निर्ममत्वं परं सुखं।
निर्ममत्वं परं बीजं मोक्षस्य कथितं बुधैः ॥ २३४ ॥

भावार्थः—ममतासे लोभ होता है, लोभसे राग होता है, रागसे द्वेष होता है, द्वेषसे दुःखोंकी परिपाटी चलती है। इसलिये ममता-रहितपना परम तत्व है, निर्मलता परम सुख है, निर्मलता ही मोक्षका परम बीज है, ऐसा विद्वानोंने कहा है।

यैः संतोषामृतं पीतं तृष्णातृट्प्रणाशनं ।
तैश्च निर्वाणसौख्यस्य कारणम् समुपार्जितम् ॥ २४७ ॥

भावार्थ—जिन्होंने तृष्णारूपी प्यास बुझानेवाले संतोषरूपी अमृतको पिया है उन्होंने निर्वाणसुखके कारणको प्राप्त कर लिया है।

परिग्रहपरिष्वङ्गाद्रागद्वेषश्च जायते ।
रागद्वेषौ महाबन्धः कर्मणां भवकारणम् ॥ २५४ ॥

भावार्थ—धन धान्यादि परिग्रहोंको स्वीकार करनेसे राग और द्वेष उत्पन्न होता ही है। रागद्वेष ही कर्मोंके महान बंधके कारण हैं उन्हींसे संसार बढ़ता है।

कुसंसर्गः सदा त्याज्यो दोषाणां प्रविधायकः ।
स गुणोऽपि जनस्तेन लघुतां याति तत् क्षणात् ॥ २६९ ॥

भावार्थ—दोषोंको उत्पन्न करनेवाली कुसंगतिको सदा छोड़ना योग्य है। उस कुसंगतिसे गुणी मानव भी दमभरमें हलका होजाता है। जो कोई मन, वचन, कायसे रागद्वेषोंके निमित्त बचाएगा व निज अध्यात्ममें रत होगा वही समाधिको जागृत करके सुखी होगा, संसारके दुःखोंका अन्त कर देगा।

(१६) मज्झिमनिकाय ककचूयम (ककचोपम) सूत्र।

गौतमबुद्ध कहते हैं—एक दफे मैंने भिक्षुओंको बुलाकर कहा—भिक्षुओं! मैं एकासन (एक) भोजन सेवन करता हूं। (एकासन-भोजनं भुंजामि) एकासन भोजनका सेवन करनेमें स्वास्थ्य, निरोग, स्फूर्ति, बल और प्राशु विहार (कुशलपूर्वक रहना) अपनेमें पाता हूं। भिक्षुओं! तुम भी एकासन भोजन सेवन कर स्वास्थ्यको प्राप्त करो। उन भिक्षुओंको मुझे अनुशासन करनेकी आवश्यक्ता नहीं थी। केवल याद दिलाना ही मेरा काम था जैसे—उद्यान (सुभूमि)में चौराहेपर कोड़ा सहित घोड़े जुता आजाने व (उत्तम घोड़ोंका) रथ खड़ा हो उसे एक चतुर रथाचार्य, अश्वको दमन करनेवाला सारथी बाएं हाथमें जोतको पकड़कर दाहने हाथमें कोडेको ले जैसे चाहे, जिधर चाहे लेजावे, लौटावे ऐसे ही भिक्षुओं! उन भिक्षुओंको मुझे अनुशासन करनेकी आवश्यक्ता न थी। केवल याद दिलाना ही मेरा काम था।

इसलिये भिक्षुओ! तुम भी अकुशल (बुराई) को छोड़ो। कुशल धर्मों (अच्छे कामों) में लगो। इस प्रकार तुम भी इस धर्म विनयमें वृद्धि, विरुद्धि व विपुलताको प्राप्त होगे। जैसे गांवके पास सघन-तासे आच्छादित महान साल (सालू) का वन हो उसका कोई हितकारी पुरुष हो वह उस सालके रसको अपहरण करनेवाली टेढी डालियोंको काटकर बाहर लेजावे, वनके भीतरी भागको अच्छी तरह साफ करदे और जो सालकी शाखाएं सीधी सुन्दर तौरसे निकली हैं, उन्हें अच्छी तरह रक्खे इसप्रकार वह साल वन वृद्धि व विपु-

लताको प्राप्त होगा । ऐसे ही भिक्षुओ ! तुम भी बुराईको छोड़ो. कुशल धर्मोंमें लगो, इस प्रकार धर्म विनयमें उन्नति करोगे ।

भिक्षुओ ! भूतकालमें इसी श्रावस्ती नगरीमें वैदेहिका नामकी गृहपत्नी थी। उसकी कीर्ति फैली हुई थी कि वैदेहिका सुरत है, निष्कलह है और उपशांत है । वैदेहिकाके पास काली नामकी दक्ष, आलस्यरहित, अच्छे प्रकार काम करनेवाली दासी थी। एक दफे काली दासीके मनमें हुआ कि मेरी स्वामिनीकी यह मंगल कीर्ति फैली हुई है कि यह उपशांत है। क्या मेरी आर्या भीतरमें क्रोधके विद्यमान रहते उसे प्रगट नहीं करती या अविद्यमान रहती ? क्यों न मैं आर्याकी परीक्षा करूं ?

एक दफे काली दासी दिन चढे उठी तब आर्याने कुपित हो, असंतुष्ट हो भौंहें टेढी करली और कहा—क्योंरे दिन चढ़े उठती है ! तब काली दासीको यह हुआ कि मेरी आर्याके भीतर क्रोध विद्यमान है। क्यों न और भी परीक्षा करूं। काली और दिन चढ़ाकर उठी तब वैदेहिने कुपित हो कटु वचन कहा, तब कालीको यह हुआ कि मेरी आर्याके भीतर क्रोध है। क्यों न मैं और भी परीक्षा करूं। तब वह तीसरी दफे और भी दिन चढ़े उठी, तब वैदेहिकाने कुपित हो किवाड़की बिलाई उसके मारदी, शिर फूट गया, तब काली दासीने शिरके लोहू बहाते पड़ोसियोंसे कहाकि देखो, इस उपशांताके कामको। तब वैदेहिकाकी अपकीर्ति फैली कि यह अनुपशांत है।

इसी प्रकार भिक्षुओं! एक भिक्षु तब ही तक सुरत, निष्कलह उपशांत है, जबतक वह अप्रिय शब्दपथमें नहीं पड़ता। जब उसपर

कासिम अक्खड़पन पड़ता है तब भी तो उसे सुरत, निष्कलंक और उपशांत रहना चाहिये। मैं उस भिक्षुको सुवच नहीं कहता जो भिक्षा आदिके कारण सुवच होता है, मृदुभाषी होता है। ऐसा भिक्षु भिक्षा दिके न मिलनेपर सुवच नहीं रहता। जो भिक्षु केवल धर्मका सत्कार करते व पूजा करते सुवच होता है, उसे मैं सुवच कहता हूं। इसलिये भिक्षुओं! तुम्हें इस प्रकार सीखना चाहिये "केवल धर्मका सत्कार करते पूजा करते सुवच होऊंगा, मृदु भाषी होऊंगा।"

भिक्षुओ! ये पांच वचनपथ (बात कहनेके मार्ग) हैं जिनसे कि दूसरे तुमसे बात करते बोलते हैं। (१) कालसे या अकालसे, (२) भूत (यथार्थ) से या अभूतसे, (३) स्नेहसे या परुषता (कटुता) से, (४) सार्थकतासे या निरर्थकतासे, (५) मैत्री पूर्ण चित्तसे या द्वेषपूर्ण चित्तसे। भिक्षुओ! चाहे दूसरे कालसे बात करें या अकालसे, भूतसे अभूतसे, या स्नेहसे या द्वेषसे, सार्थक या निरर्थक, मैत्री-पूर्ण चित्तसे या द्वेषपूर्ण चित्तसे तुम्हें इस प्रकार सीखना चाहिये—"मैं अपने चित्तको विकारयुक्त न होने दूंगा और न दुर्वचन निकालूंगा, मैत्रीभावसे हितानुकम्पी होकर विहरूंगा न कि द्वेषपूर्ण चित्तसे। उस विरोधी व्यक्तिको भी मैत्रीभाव चित्तसे आप्लावित कर विहरूंगा। उसको लक्ष्य करके सारे लोकको विपुल, विशाल, अप्रमाण मैत्रीपूर्ण चित्तसे आप्लावित कर अवैरता—अव्यापादिता (द्रोहरहितता) से परिप्लावित (भिगोकर) विहरूंगा।" इस प्रकार भिक्षुओ! तुम्हें सीखना चाहिये।

(१) जैसे कोई पुरुष हाथमें कुदाल लेकर आए और वह ऐसा कहे कि मैं इस महापृथ्वीको अपृथ्वी करूंगा, वह जहांतहां खोदे, मिट्टी फेंके और माने कि यह अपृथ्वी हुई तो क्या यह महा पृथ्वीको अपृथ्वी कर सकेगा ? नहीं, क्यों नहीं कर सकेगा ? महा-पृथ्वी गंभीर है, अप्रमेय है। वह अपृथ्वी (पृथ्वीका अभाव) नहीं की जासक्ती । वह पुरुष नाहकमें हैरानी और परेशानीका भागी होगा । इसी प्रकार पृथ्वीके समान चित्त करके तुम्हें क्षमावान होना चाहिये :

(२) और जैसे भिक्षुओ ! कोई पुरुष लाख, हल्दी, नील या मजीठ लेकर आए और यह कहे कि मैं आकाशमें रूप (चित्र) लिखूंगा तो क्या वह आकाशमें चित्र लिख सकेगा ? नहीं, क्योंकि आकाश अरूपी है, अदर्शन है, वहां रूपका लिखना सुकर नहीं। वह पुरुष नाहकमें हैरानी और परेशानीका भागी होगा । इसी तरह पांच वचनपथ होनेपर भी तुम्हें सर्वलोकको आकाश समान चित्तमें वैररहित देखकर रहना चाहिये ।

(३) और जैसे भिक्षुओ ! कोई पुरुष जलती तृणकी उल्काको लेकर आए और यह कहे कि मैं इस तृण उल्कासे गंगानदीको संतप्त करूंगा, परितप्त करूंगा तो क्या यह जलती तृण उल्कासे गंगा नदीको संतप्त कर सकेगा ? नहीं, क्योंकि गंगानदी गंभीर है, अप्रमेय है। वह जलती तृण उल्कासे नहीं संतप्त की जासकी। वह पुरुष नाहकमें हैरानी उठाएगा । इसीप्रकार पांच वचनपथके होते हुए तुम्हें यह सीखना चाहिये कि मैं सारे लोकको गंगा समान चित्तसे अप्रमाण अवैरभावसे परिप्लावित कर विहरूंगा ।

(४) और जैसे एक मर्दित, मृदु, खर्खराहट रहित बिल्लीके चमड़ेकी खाल हो, तब कोई पुरुष काठ या ठीकरा लेकर आए और बोले कि मैं इस काठसे बिल्लीकी खालको खुर्खुरी बनाऊंगा तो क्या वह कर सकेगा? नहीं, क्योंकि बिल्लीकी खाल मर्दित है, मृदु है, वह काठसे या ठीकरेसे खुर्खुरी नहीं की जासक्ती। इसी तरह पांचों वचनपथके होनेपर तुम्हें सीखना चाहिये कि मैं सर्वलोकको बिल्लीकी खालके समान चित्तसे वैरभावरहित भावसे भरकर विहरूंगा।

(५) भिक्षुओं! चोर लुटेरे चाहे दोनों ओर मुठिया लगे, आरेसे अंग अंगको चीरे तौभी जो भिक्षु मनको द्वेषयुक्त करे तो वह मेरा शासनकर (उपदेशानुसार चलनेवाला) नहीं है। वहांपर भी भिक्षुओं! ऐसा सीखना चाहिये कि मैं अपने चित्तको विकारयुक्त न होने दूंगा न दुर्वचन निकालूंगा। मैत्रीभावसे हितानुकम्पी होकर विहरूंगा, न द्वेषपूर्ण चित्तसे। उस विरोधीको भी मैत्रीपूर्ण चित्तसे आप्लावित कर विहरूंगा। उसको लक्ष्य करके सारे लोकको विपुल, विशाल, अप्रमाण, मैत्रीपूर्ण चित्तसे भरकर अवैरता व अव्यापादितासे भरकर विहरूंगा।

भिक्षुओं! इस ककचोपम (आरेके दृष्टांतवाले) उपदेशको निरंतर मनमें करो। यह तुम्हें चिरकालतक हित, सुखके लिये होगा।

नोट–इस सूत्रमें नीचे प्रकार सुन्दर शिक्षाएं हैं–

(१) भिक्षुको दिन रातमें केवल दिनमें एकबार भोजन करना चाहिये, यही शिक्षा गौतमबुद्धने दी थी व आप भी एकासन करते थे। योगीको, त्यागीको, ध्यानके अभ्यासीको दिनमें एक ही

दफे मात्रा सहित अल्पभोजन करके काल बिताना चाहिये। स्वास्थ्यके लिये व प्रमाद त्यागके लिये व शांतिपूर्ण जीवनके लिये यह बात आवश्यक है। जैन सिद्धांतमें भी साधुको एकासन करनेका उपदेश है। साधुके २८ मूल गुणोंमें यह एकासन या एकभुक्त मूलगुण है—अवश्य कर्तव्य है।

(२) भिक्षुओंको गुरुकी आज्ञानुसार बड़े प्रेमसे चलना चाहिये। जैसा इस सूत्रमें कहा है कि मैं भिक्षुओंको केवल उनका कर्तव्य स्मरण करा देता था, वे सहर्ष उनपर चलते थे। इसपर दृष्टांत योग्य घोड़े संजुते रथका दिया है। हांकनेवालेके संकेत मात्रसे जिधर वह चाहे घोडे चलते हैं, हांकनेवालेको प्रसन्नता होती है, घोड़ोंको भी कोई कष्ट नहीं होता है। इसी तरह गुरु व शिष्यका व्यवहार होना चाहिये।

(३) भिक्षुओंको सदा इस बातमें सावधान रहना चाहिये कि वह अपने भीतरसे बुराइयोंको हटावें, राग द्वेष मोहादि भावोंको दूर करे तथा निर्वाण साधक हितकारी धर्मोको ग्रहण करें। इसपर दृष्टांत सालके बनका दिया है कि चतुर माली रसको सुखानेवाली डालियोंको दूर करता है और रसदार शाखाओंकी रक्षा करता है तब वह बनरूप फलता है। इसीतरह भिक्षुको प्रमादरहित होकर अपनी उन्नति करनी चाहिये।

(४) क्रोधादि कषायोंको भीतरसे दूर करना चाहिये। तथा निर्बल पर क्रोध न करना चाहिये, क्षमाभाव रखना चाहिये। निमित्त पड़ने पर भी क्रोध नहीं करना चाहिये। यहां वैदेहिका

गृहिणी और काली दासीका दृष्टांत दिया है। वह गृहिणी ऊपरसे शांत थी, भीतरसे क्रोधयुक्त थी। जो दासी विनयी व स्वामिनीकी आज्ञानुसार सब काम करनेवाली थी वह यदि कुछ देरसे उठी हो तो स्वामिनीको शांत भावसे कारण पूछना चाहिये। यदि वह कारण पूछती क्रोध न करती तो उसकी बातसे उसको संतोष होजाता। वह कह देती कि शरीर अस्वस्थ होनेसे देरमे उठी हूं। इस दृष्टांतको देकर भिक्षुओंको उपदेश दिया गया है कि स्वार्थसिद्धिके लिये ही शांत भाव न रक्खो किन्तु धर्मलाभके लिये शांतभाव रक्खो। क्रोधभाव बुरा है ऐसा जानकर कभी क्रोध न करो तथा साधुको कष्ट पड़ने पर भी, इच्छित वस्तु न मिलने पर भी मृदुभाषी कोमल-परिणामी रहना चाहिये।

(५) उत्तम क्षमा या भाव अहिंसा या विश्वप्रेम रखनेकी बड़ी शिक्षा साधुओंको दी गई है कि उनको किसी भी कारण मिलने पर, दुर्वचन सुननेपर या शरीरके टुकड़े किये जाने पर भी मनमें विकारभाव न लाना चाहिये, द्वेष नहीं करना चाहिये. उप-सर्गकर्तापर भी मैत्रीभाव रखना चाहिये।

पांच तरहसे प्रवचन कहा जाता है–(१) समयानुसार कहना, (२) सत्य कहना, (३) प्रेमयुक्त कहना, (४) सार्थक कहना, (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे कहना। पांच तरहसे दुर्वचन कहा जाता है–(१) विना अवसर कहना, (२) असत्य कहना, (३) कठोर वचन कहना, (४) निरर्थक कहना, (५) द्वेषपूर्ण चित्तसे कहना। साधुका कर्तव्य है कि चाहे कोई सुवचन कहे या कोई दुर्वचन कहे दोनों दशाओंमें सम-

भाव रखना चाहिये। उसे मैत्रीभाव अनुकम्पा भाव ही रखना चाहिये। उसकी अज्ञान दशापर दयाभाव लाकर क्रोध नहीं करना चाहिये। क्षमा या मैत्रीभाव रखनेके लिये साधुको नीचे लिखे दृष्टांत दिये हैं–

(१) साधुको पृथ्वीके समान क्षमाशील होना चाहिये। कोई पृथ्वीका सर्वथा नाश करना चाहे तौभी वह नहीं कर सक्ता, पृथ्वीका अभाव नहीं किया जासक्ता। वह परम गंभीर है, सहनशील है। वह सदा बनी रहती है। इसी तरह भले ही कोई शरीरको नाश करें, साधुको भीतरसे क्षमावान व गंभीर रहना चाहिये तब उसका नाश नहीं होगा, वह निर्वाणमार्गी बना रहेगा, (२) साधुको आकाशके समान निर्लेप निर्मल व निर्विकार रहना चाहिये। जैसे आकाशमें चित्र नहीं लिखे जासकते वैसे ही निर्मल चित्तको विकारी व क्रोधयुक्त नहीं बनाया जासक्ता।

(३) साधुको गंगा नदीके समान शांत, गंभीर व निर्मल रहना चाहिये। कोई गंगाको मसालसे जलाना चाहे तो असंभव है, मसाल स्वयं बुझ जायगी। इसीतरह साधुको कोई कितना भी कष्ट देकर क्रोधी या विकारी बनाना चाहे परन्तु साधुको गंगाजलके समान शांत व पवित्र रहना चाहिये।

(४) साधुको बिल्लीकी चिकनी खालके समान कोमल चित्त रहना चाहिये। कोई उस खालको काष्टके टुकड़ेसे खुरखुरा करना चाहे तो वह नहीं कर सक्ता, इसीतरह कोई कितना कारण मिलावे साधुको नम्रता, मृदुता, सरलता, शुचिता, क्षमाभाव नहीं त्यागना चाहिये।

(५) साधुको यदि लुटेरे आरेसे चीर भी डालें तो भी मैत्रीभाव या क्षमाभावको नहीं त्यागना चाहिये।

इस सूत्रमें बहुत ही बढ़िया उत्तम क्षमा व अहिंसा धर्मका उपदेश है। जैन सिद्धांतमें भी ऐसा ही कथन है।

कुछ उपयोगी वाक्य नीचे दिये जाते हैं—

श्री वट्टकेरस्वामी मूलाचार अनगारभावनामें कहते हैं—

अक्खोमक्खणमेत्तं भुंजंति मुणी पाणधारणणिमित्तं।
पाणं धम्मणिमित्तं धम्मं पि चरंति मोक्खट्ठं ॥ ४९ ॥

भावार्थ–जैसे गाड़ीके पहियेमें तैल देकर रक्षा की जाती है ऐसे मुनिराज प्राणोंकी रक्षानिमित्त भोजन करते हैं। प्राणोंको धर्मके निमित्त रखते हैं। धर्मको मोक्षके लिये आचरण करते हैं।

श्री कुंदकुंदस्वामी प्रवचनसारमें कहते हैं—

समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।
समलोट्ठुकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो ॥ ६२–३ ॥

भावार्थ–जो शत्रु व मित्र वर्गपर समभाव रखता है, सुख व दुःख पड़ने पर समभावी रहता है, प्रशंसा व निन्दा होनेपर निर्विकारी रहता है, कंकड़ व सुवर्णको समान देखता है, जीने या मरनेमें हर्ष विषाद नहीं करता है वही श्रमण या साधु है।

श्री वट्टकेरस्वामी मूलाचार अनगार भावनामें कहते हैं—

वसुधम्मि वि विहरंता पीडं ण करेंति कस्सइ कयाइ।
जीवेसु दयावण्णा माया जह पुत्तभंडेसु ॥ ३२ ॥

भावार्थ–साधुजन पृथ्वीमें विहार करते हुए किसीको भी कभी पीड़ा नहीं देते हैं। वे सर्व जीवोंपर ऐसी दया रखते हैं जैसे माताका प्रेम पुत्र पुत्री आदि पर होता है।

श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासनमें कहते हैं:—

अधीत्य सकलं श्रुतं चिरमुपास्य घोरं तपो ।
यदीच्छसि फलं तयोरिह हि लाभपूजादिकम् ॥
छिनत्सि सुतपस्तरोः प्रसवमेव शून्याशयः ।
कथं समुपलप्स्यसे सुरसमस्य पक्वं फलम् ॥ १८९ ॥

भावार्थ-सर्व शास्त्रोंको पढ़कर तथा दीर्घ कालतक घोर तप साधन कर यदि तू शास्त्रज्ञान और तपका फल इस लोकमें लाभ, पूजा, सत्कार आदि चाहता है तो तू विवेकशून्य होकर सुंदर तपरूपी वृक्षके फूलको ही तोड़ डालता है। तब तू उस वृक्षके मोक्षरूपी पके फलको कैसे पा सकेगा? तपका फल निर्वाण है, यही भावना करनी योग्य है। श्री शुभचंद्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

अभयं यच्छ भूतेषु कुरु मैत्रीमनिन्दिताम् ।
पश्यात्मसदृशं विश्वं जीवलोकं चराचरम् ॥ ५२-८ ॥

भावार्थ—सर्व प्राणियोंको अभयदान दो, सर्वमें प्रशंसनीय मैत्रीभाव करो, जगतके सर्व स्थावर व त्रस प्राणियोंको अपने समान देखो। श्री सारसमुच्चयमें कहते हैं—

मैत्र्यङ्गना सदोपास्या हृदयानन्दकारिणी ।
या विधत्ते कृतोपास्तिश्चित्तं विद्वेषवर्जितं ॥ २६० ॥

भावार्थ—मनको आनन्द देनेवाली मैत्रीरूपी स्त्रीका सदा सेवन करना चाहिये। उसकी उपासना करनेसे चित्तसे द्वेष निकल जाता है।

सर्वसत्वे दया मैत्री यः करोति सुमानसः ।
जयत्यसावरीन् सर्वान् बाह्याभ्यन्तरसंस्थितान् ॥ २६१ ॥

भावार्थ—जो कोई मनुष्य सर्व प्राणीमात्रपर दया तथा मैत्री-भाव करता है वह बाहरी व भीतरी रहनेवाले सर्व शत्रुओंको जीत लेता है।

मनस्याह्लादिनी सेव्या सर्वकालसुखप्रदा।
उपसेव्या त्वया भद्र ! क्षमा नाम कुलाङ्गना ॥ २६९ ॥

भावार्थ—मनको प्रसन्न रखनेवाली व सर्वकाल सुख देनेवाली ऐसी क्षमा नाम कुलवधूका हे भद्र! सदा ही तुझे सेवन करना चाहिये।

आत्मानुशासनमें कहा है—

हृदयसरसि यावन्निर्मलेप्यत्यगाधे।
वसति खलु कषायग्राहचक्रं समन्तात् ॥
श्रयति गुणगणोऽयं तन्न तावद्विशङ्कं।
समदमयमशेषैस्तान् विजेतुं यतस्व ॥ २१३ ॥

भावार्थ—हे साधु! तेरे मनरूपी गंभीर निर्मल सरोवरके भीतर जबतक सर्व तरफ क्रोधादि कषायरूपी मगरमच्छ बस रहे हैं तबतक गुणसमूह निशंक होकर तेरे भीतर आश्रय नहीं कर सके। इसलिये तू यत्न करके शांत भाव, इन्द्रियदमन व यम नियम आदिके द्वारा उनको जीत।

वैराग्यमणिमालामें श्रीचंद्र कहते हैं—

शृणु मे वचनं कुरु सारं चेत्त्वं वांछसि संसृतिपारं।
मोहं त्यक्त्वा कामं क्रोधं त्यज भज त्वं संयमवरबोधं ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे भाई! यदि तू संसार-समुद्रके पार जाना चाहता है तो मेरा यह सार वचन मान कि तू मोहको त्याग, कामभाव व क्रोधको छोड़ और तू संयम सहित उत्तम ज्ञानका भजन कर।

देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

अप्पसमाणा दिट्ठा जीवा सव्वेवि तिहुवणत्थावि।
जो मज्झत्थो जोई ण य तूसइ णेव रूसेइ ॥ ३७ ॥

भावार्थ—जो योगी अपने समान तीन लोकके जीवोंको देख-कर मध्यस्थ या वैराग्यवान् रहता है—न वह किसीपर क्रोध करता है न किसीपर हर्ष करता है।

(१७) मज्झिमनिकाय अलगद्दमय सूत्र।

गौतमबुद्ध कहते हैं—कोई२ मोघ पुरुष गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुत धर्म, वैदल्य, इन नौ प्रकारके धर्मोपदेशको धारण करते हैं वे उन धर्मोंको धारण करते भी उनके अर्थको प्रज्ञासे नहीं परखते हैं। अर्थोंको प्रज्ञासे परखे विना धर्मोंका आशय नहीं समझते। वे या तो उपारंभ (सहायता) के लाभके लिये धर्मको धारण करते हैं या वादमें प्रमुख बननेके लाभके लिये धर्मको धारण करते हैं और उसके अर्थको नहीं अनुभव करते हैं। उनके लिये यह विपरीत तरहसे धारण किये धर्म अहित और दुःखके लिये होते हैं। जैसे भिक्षुओ ! कोई अलगद्द (सांप) चाहनेवाला पुरुष अलगद्दकी खोजमें घूमता हुआ एक महान् अलगद्दको पाए और उसे देहसे या पूंछसे पकड़े, उसको वह अलगद्द उलटकर हाथमें, बांहमें या अन्य किसी अंगमें डंस ले। वह उसके कारण मरणको या मरणसमय दुःखको प्राप्त होवे, ऐसे ही वह भिक्षु ठीक न समझनेवाला दुःख पावेगा।

परन्तु जो कोई कुलपुत्र धर्मोपदेशको धारण करते हैं, उन धर्मोंको धारणकर उनके अर्थको प्रज्ञासे परखते हैं. प्रज्ञासे परखकर धर्मोंके अर्थको समझते हैं वे उपारंभ लाभ व वादमें प्रमुख बननेके लिये धर्मोंको धारण नहीं करते हैं. वे उनके अर्थको अनुभव करते हैं। उनके लिये यह सुग्रहीत धर्म चिरकाल तक हित और सुखके लिये होते हैं। जैसे भिक्षुओ ! कोई अलगर्द गवेषी पुरुष एक महान् अलगर्दको देखे, उसको सांप पकड़नेके अजपद दंडसे अच्छी तरह पकड़े। गर्दनसे ठीक तौरपर पकड़े, फिर चाहे वह अलगर्द उस पुरुषके हाथ, पांव, या किसी और अंगको अपने देहसे परिवेष्ठित करे, किंतु वह उसके कारण मरणको व मरण समान दुःखको नहीं प्राप्त होगा।

मैं बेड़ीकी भांति निस्तरण (पार जाने) के लिये तुम्हें धर्मको उपदेशता हूं, पकड़ रखनेके लिये नहीं। उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूं—

जैसे भिक्षुओ ! कोई पुरुष कुमार्गमें जाते एक ऐसे महान् समुद्रको प्राप्त हो जिसका इधरका तीर भयसे पूर्ण हो और उधरका तीर क्षेमयुक्त और भयरहित हो। वहां न पार लेजानेवाली नाव हो न इधरसे उधर जानेके लिये पुल हो। तब उसके मनमें हो—क्यों न मैं तृण काष्ठ—पत्र जमाकर बेड़ा बांधूं और उस बेड़ेके सहारे स्वस्तिपूर्वक पार उतर जाऊं। तब वह बेड़ा बांधकर उस बेड़ेके सहारे पार उतर जाए। उत्तीर्ण होजानेपर उसके मनमें ऐसा हो—यह बेड़ा मेरा बड़ा उपकारी हुआ है क्यों न मैं इसे शिरपर या

कंधेपर रखकर जहां इच्छा हो वहां जाऊं तो क्या ऐसा करनेवाला उस बेड़ेमें कर्तव्य पालनेवाला होगा ? नहीं। किंतु वह उस बेड़ेसे दुःख उठानेवाला होगा। परन्तु यदि पारंगत पुरुषको ऐसा हो— क्यों न मैं इस बेड़ेको स्थलपर रखकर या पानीमें डालकर जहां इच्छा हो वहां जाऊ तो भिक्षुओ ! ऐसा करनेवाला पुरुष उस बेड़ेके सम्बन्धमें कर्तव्य पालनेवाला होगा। ऐसे ही भिक्षुओ ! **मैंने बेडेकी भांति निस्तरणके लिये तुम्हें धर्मोको उपदेशा है, पकड़ रखनेके लिये नहीं।** धर्मको बेड़ेके समान (कुल्लूपम) उपदेश जानकर तुम **धमको भी छोड दो. अधर्मकी तो बात ही क्या ?**

भिक्षुओ ! ये छः **दृष्टि-स्थान** हैं। आर्यधर्मसे अज्ञानी पुरुष रूप (Matter) को 'यह मेरा है' 'यह मैं हूं' 'यह मेरा आत्मा है' इस प्रकार समझता है इसी तरह (२) वेदनाको, (३) संज्ञाको, (४) संस्कारको, (५) विज्ञानको, (६) जो कुछ भी यह देखा, सुना, यादमें आया, ज्ञात, प्राप्त, पर्योषित (खोजा), और मन द्वारा अनुविचारित (पदार्थ) है उसे भी 'यह मेरा है' 'यह मैं हूं' 'यह मेरा आत्मा है' इस प्रकार समझता है। जो यह (छः) दृष्टि स्थान हैं सो लोक है. सोई आत्मा है, मैं मरकर सोई नित्य, ध्रुव, शाश्वत, निर्विकार (अविपरिणाम धर्मा) आत्मा होऊँगा और अनन्त वर्षोंतक वैसा ही स्थित रहूंगा। इसे भी यह मेरा है' 'यह मैं हूं' 'यह मेरा आत्मा' है इस प्रकार समझता है।

परन्तु भिक्षुओ ! आर्य धर्मसे परिचित ज्ञानी आर्य श्रावक (१) रूपको 'यह मेरा नहीं' 'यह मैं नहीं हूं' 'यह मेरा आत्मा

नहीं है'—इस प्रकार समझता है इसी तरह, (२) वेदनाको (३) संज्ञाको (४) संस्कारको, (५) विज्ञानको, (६) उसे कुछ भी देखा सुना या मनद्वारा अनुविचारित है उसको जो यह (छः) दृष्टि स्थान है सो लोक है सो आत्मा है इत्यादि। यह मेरा आत्मा नहीं है। इस प्रकार समझता है। वह इस प्रकार समझते हुए अशनित्रास (भल) को नहीं प्राप्त होता।

क्या है बाहर अशनिपरित्रास—किसीको ऐसा होता है अहो पहले यह मेरा था, अहो अब यह मेरा नहीं है, अहो मेरा होवे, अहो उसे मैं नहीं पाता हूं। वह इस प्रकार शोक करता है, दुःखित होता है, छाती पीटकर क्रन्दन करता है। इस प्रकार बाहर अशनिपरित्रास होता है।

क्या है बाहरी अशनि-अपरित्रास—

जिस किसी भिक्षुको ऐसा नहीं होता यह मेरा था, अहो इसे मैं नहीं पाता हूं वह इस प्रकार शोक नहीं करता है, मूर्छित नहीं होता है। यह है बाहरी अशनि-अपरित्रास।

क्या है भीतर अशनिपरित्रास—किसी भिक्षुको यह दृष्टि होती है। सो लोक है, सो ही आत्मा है, मैं मरकर सोई नित्य, ध्रुव, शाश्वत निर्विकार होऊंगा और अनन्त वर्षोंतक वैसे ही रहूंगा। वह तथागत (बुद्ध) को सारे ही दृष्टिस्थानोंके अधिष्ठान, पर्युत्थान (उठने), अभिनिवेश (आग्रह) और अनुशयों (मलों) के विनाशके लिये, सारे संस्कारोंको शमनके लिये, सारी उपाधियोंके परित्यागके लिये और तृष्णाके क्षयके लिये, विराग, निरोध (रागादिके नाश) और

निर्वाणके लिये धर्मोपदेश करते सुनता हैं। उसको ऐसा होता है— 'मैं उच्छिन्न होऊंगा, और मैं नष्ट होऊंगा। हाय ! मैं नहीं रहूंगा ! वह शोक करता है, दुःखित होता है, मूर्छित होता है। इस प्रकार अशनि परित्रास होतः है। क्या है अशनि अपरित्रास, जिस किसी भिक्षुको ऊपरकी ऐसी दृष्टि नहीं होती है वह मूर्छित नहीं होता है।

भिक्षुओ ! उस परिग्रहको परिग्रहण करना चाहिये जो परिग्रह कि नित्य, ध्रुव, शाश्वत्, निर्विकार अनन्तवीर्य वैसा ही रहे। भिक्षुओ ! क्या ऐसे परिग्रहको देखते हो ! नहीं। मैं भी ऐसे परिग्रहको नहीं देखता जो अनन्त वर्षोंतक वैसा ही रहे। मैं उस आत्मवादको स्वीकार नहीं करता जिसके स्वीकार करनेसे शोक, दुःख व दौर्मनस्य उत्पन्न हो। न मैं उस दृष्टि निश्चय (धारणाके विषय) का आश्रय लेता हूं जिससे शोक व दुःख उत्पन्न हो। भिक्षुओ ! आत्मा और आत्मीयके ही सत्यतः उपलब्ध होनेपर जो यह दृष्टि स्थान सोई लोक है सोई आत्मा है इत्यादि। क्या यह केवल पूरा बालधर्म नहीं है। वास्तवमें यह केवल पूरा बालधर्म है तो क्या मानते हो भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य-अनित्य है। जो आपत्ति है वह दुःखरूप है या सुखरूप है—दुःखरूप है। जो अनित्य, दुःख स्वरूप और परिवर्तनशील, विकारी है क्या उसके लिये यह देखना—यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मरा आत्मा है, योग्य है ? नहीं। उसी तरह वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञानको 'यह मेरा आत्मा नहीं' ऐसा देखना चाहिये।

इसलिये भिक्षुओ ! भीतर (शरीरमें) या बाहर, स्थूल या सूक्ष्म, उत्तम या निकृष्ट, दूर या निकट, जो कुछ भी भूत, भविष्य वर्तमान रूप है, वेदना है, संज्ञा है, संस्कार है, विज्ञान है वह सब मेरा नहीं है। 'यह मैं नहीं हूं' 'यह मेरा आत्मा नहीं है' ऐसा भले प्रकार समझकर देखना चाहिये।

ऐसा देखनेपर बहुश्रुत आर्यश्रावक रूपमें भी निर्वेद (उदासीनता) को प्राप्त होता है, वेदनामें भी, संज्ञामें भी, संस्कारमें भी, विज्ञानमें भी निर्वेदको प्राप्त होता है। निर्वेदसे विरागको प्राप्त होता है। विराग प्राप्त होनेपर विमुक्त होजाता है। रागादिसे विमुक्त होनेपर 'मैं विमुक्त होगया' यह ज्ञान होता है फिर जानता है—जन्म क्षय होगया, ब्रह्मचर्यवास पूरा होगया, करणीय कर लिया, यहां और कुछ भी करनेको नहीं है। इस भिक्षुने अविद्याको नाश कर दिया है, उच्छिन्नमूल, अभावको प्राप्त, भविष्यमें न उत्पन्न होने लायक कर दिया है। इसलिये यह उक्षिप्त परिघ (जूएसे मुक्त) है। इस भिक्षुने पौर्वभविक (पुनर्जन्म सम्बन्धी) जाति संस्कार (जन्म दिलानेवाले पूर्वकृत कर्मोंके चित्त प्रवाह पर पड़े संस्कार) को नाश कर दिया है, इसलिये यह संकीर्ण परिख (खाई पार) है। इस भिक्षुने तृष्णाको नाश कर दिया है इसलिये यह अत्यूढ़ हरीसिक (जो हलकी हरीस जैसे दुनियांके भारको नहीं उठाए है) है। इस भिक्षुने पांच अवरभागीय संयोजनों (संसारमें फंसानेवाले पांच दोष—(१) सत्कायदृष्टि—शरीरादिमें आत्मदृष्टि, (२) विचिकित्सा—संशय, (३) शीलव्रत परामर्श—व्रत आचरणका अनुचित अभिमान, (४)

काम छन्द—भोगोंसे राग (५) व्यापाद (द्वेषभाव) नाश कर दिया है इसलिये वह **निरर्गल** (लगानरूपी संसारसे मुक्त) है। इस भिक्षुका **अभिमान** (हूंका अभिमान) नष्ट होता है। भविष्यमें न उत्पन्न होनेलायक होता है, इसलिये वह **पन्त ध्वज** (जिसकी रागादिकी ध्वजा गिर गई है), **पन्त भार** (जिसका भार गिर गया है), **विसंयुक्त** (रागादिसे विमुक्त) होता है। इसप्रकार मुक्त भिक्षुको इन्द्रादि देवता नहीं जान सक्ते कि इस तथागत (भिक्षु) का विज्ञान इसमें निश्रित है, क्योंकि इस शरीरमें ही तथागत **अनू-अनुवेद्य** (अज्ञेय) है।

भिक्षुओ ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण ऐसे (ऊपर लिखित) वादको माननेवाले, ऐसा कहनेवाले मुझे असत्य, तुच्छ, मृषा, अभूत, झूठ लगाते हैं कि श्रमण गौतम वैनेयिक (नहींके वादको माननेवाला) है। वह **विद्यमान सत्व (जीव या आत्मा) के उच्छेदका** उपदेश करता है। **भिक्षुओ ! जो कि मैं नहीं कहता।**

भिक्षुओ ! पहले भी और अब भी मैं उपदेश करता हूं, दुःखको और दुःख निरोधको। यदि भिक्षुओ ! तथागतको दूसरे निन्दते उससे तथागतको चोट, असंतोष और चित्त विकार नहीं होता। यदि दूसरे तथागतका सत्कार या पूजन करते हैं उससे तथागतको आनन्द, सोमनस्क, चित्तका प्रसन्नताऽतिरेक नहीं होता। जब दूसरे तथागतका सत्कार करते हैं तब तथागतको ऐसा होता है जो पहले ही त्याग दिया है। उसीके विषयमें इस प्रकारके कार्य किये जाते हैं। इसलिये भिक्षुओ ! यदि दूसरे तुम्हें भी निन्दें तो

उसके लिये तुम्हें चित्त विकार न आने देना चाहिये। यदि दूसरे तुम्हारा सत्कार करें तो उनके लिये तुम्हें भी ऐसा होना चाहिये। जो पहले त्याग दिया है उसीके विषयमें ऐसे कार्य किये जारहे हैं।

इसलिये भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ो, उसका छोडना चिरकाल तक तुम्हारे हित सुखके लिये होगा। भिक्षुओ! क्या तुम्हारा नहीं है? रूप तुम्हारा नहीं है इसे छोड़ो। इसी तरह वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान तुम्हारा नहीं है इन्हें छोड़ो। जैसे इस जेतवनमें जो तृण, काष्ट, शाखा, पत्र हैं उसे कोई अपहरण करे, जलाये या जो चाहे सो करे, तो क्या तुम्हें ऐसा होना चाहिये। 'हमारी चीजको वह अपहरण कर रहा है?' नहीं, सो किस हेतु!—यह हमारा आत्मा या आत्मीय नहीं है। ऐसे ही भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है उसे छोड़ो। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान तुम्हारा नहीं है इसे छोड़ो।

भिक्षुओ! इसप्रकार मैंने धर्मका उत्तान, विवृत, प्रकाशित, आवरण रहित करके अच्छी तरह व्याख्यान किया है (स्वाख्यात है)। ऐसे स्वाख्यात धर्ममें उन भिक्षुओंके लिये कुछ उपदेश करनेकी जरूरत नहीं है जो कि (१) अर्हत् क्षीणास्रव (रागादि मलसे रहित) होगए हैं, ब्रह्मचर्यवास पूरा कर चुके, कृत करणीय, भार मुक्त, सच्चे अर्थको प्राप्त, परिक्षीण भव संयोजन (जिनके भवसागरमें डालनेवाले बंधन नष्ट होगए हैं) सम्याज्ञानियुक्त (यथार्थ ज्ञानसे जिनकी मुक्ति होगई है) है (२) ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जिन भिक्षुओंके पांच (ऊपर कथित) अवरभागीय संयोजन नष्ट होगए हैं, वे

सभी औपपातिक (देव) हो। वहां जो परिनिर्वाणको प्राप्त होनेवाले हैं, उस लोकसे लौटकर नहीं आनेवाले (अनावृत्तिधर्मा, अनागामी) हैं। (३) ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जिन भिक्षुओंके राग द्वेष मोह तीन संयोजन नष्ट होगए हैं, निर्बल होगए हैं वे सारे सकृदागामी (सकृद्—एकवार ही इस लोकमें आकर दुःखका अंत करेंगे) होंगे। (४) ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जिन भिक्षुओंके तीन संयोजन (राग द्वेष मोह) नष्ट होगए वे सारे नवर्तित होनेवाले संबोधि (बुद्धके ज्ञान) परायण स्रोतापन्न (निर्वाणकी ओर लेजानेवाले प्रवाहमें स्थिर रीतिसे आरूढ़) हैं।

भिक्षुओ! ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जो भिक्षु श्रद्धानुसारी हैं, धर्मानुसारी हैं वे सभी संबोधि परायण हैं। इसप्रकार मैंने धर्मका अच्छी तरह व्याख्यान किया है। ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जिनकी मेरे विषयमें श्रद्धा मात्र, प्रेम मात्र भी है वे सभी स्वर्गपरायण (स्वर्गगामी) हैं।

नोट—इस सूत्रमें स्वानुभवगम्य निर्वाणका या शुद्धात्माका बहुत ही बढ़िया उपदेश दिया है जो परम कल्याणकारी है। इसको बारबार मनन कर समझना चाहिये। इसका भावार्थ यह है—

(१) पहले यह बताया है कि शास्त्रको या उपदेशको ठीक ठीक समझकर केवल धर्म लाभके लिये पालना चाहिये, किसी लाभ व सत्कारके लिये नहीं। इस पर दृष्टांत सर्पका दिया है। जो सर्पको ठीक नहीं पकड़ेगा उसे सर्प काट खाएगा, वह मर जायगा। परन्तु जो सर्पको ठीकर पकड़ेगा वह सर्पको वश कर लेगा। इसी तरह

जो धर्मके असली तत्वको उल्टा समझ लेगा उसका अहित होगा। परन्तु जो ठीक ठीक भाव समझेगा उसका परम हित होगा। यही बात जैन सिद्धांतमें कही है कि ख्याति लाभ पूजादिकी चाहके लिये धर्मको न पाले, केवल निर्वाणके लिये ठीक२ समझकर पालें, विपरीत समझेगा तो बाहरी ऊंचासे ऊंचा चारित्र पालनेपर भी मुक्ति नहीं होगी। जैसे यहां प्रज्ञासे समझनेका उपदेश है वैसे ही जैन सिद्धांतमें कहा है कि प्रज्ञासे या भेद विज्ञानसे पदार्थको समझना चाहिये कि मैं निर्वाण स्वरूप आत्मा भिन्न हूं व सर्व रागादि विकल्प भिन्न हैं।

(२) दूसरी बात इस सूत्रमें बताई है कि एक तरफ निर्वाण परम सुखमई है, दूसरी तरफ महा भयंकर संसार है। बीचमें भव-समुद्र है। न कोई दूसरी नाव है न पुल है। जो आप ही भव-समुद्र तरनेकी नौका बनाता है व आप ही इसके सहारे चलता है वह निर्वाण पर पहुंच जाता है। जैसे किनारे पर पहुंचने पर चतुर पुरुष जिस नावके द्वारा चल कर आया था उसको फिर पकड़ कर धरता नहीं–उसे छोड देता है, उसी तरह ज्ञानी निर्वाण पहुंच कर निर्वाण मार्गको छोड देता है। साधन उसी समय तक आवश्यक है जबतक साध्य सिद्ध न हो, फिर साधनकी कोई जरूरत नहीं। सूत्रमें कहा है कि धर्म भी छोडने लायक है तब अधर्मकी क्या बात। यही बात जैन सिद्धांतमें बताई है कि मोक्षमार्ग निश्चय धर्म और व्यवहार धर्मसे दो प्रकारका है। इनमें निश्चय धर्म ही यथार्थ मार्ग है, व्यवहार धर्म केवल निमित्त कारण है। निश्चय धर्म

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमय शुद्धात्मानुभव है या सम्यक्समाधि है, व्यवहार धर्म पूर्ण रूपसे साधुका चारित्र है. अपूर्णरूपसे गृहस्थका चारित्र है। गृही भी आत्मानुभवके लिये पूजापाठ जप तपादि करता है। जब स्वात्मानुभव निश्चयधर्मपर पहुंचता है तब व्यवहार स्वयं छूट जाता है। जब स्वानुभव नहीं होसक्ता फिर व्यवहारका आलम्बन लेता है। स्वानुभव उपादान कारण है। जब ऊंचा स्वानुभव होता है तब उससे नीचा छूट जाता है। साधु भी व्यवहार चारित्र-द्वारा आत्मानुभव करते हैं, आत्मानुभवके समय व्यवहारचारित्र स्वयं छूट जाता है। जब आत्मानुभवसे हटते हैं फिर व्यवहारचारित्रका सहारा लेते हैं। इस अभ्याससे जब ऊंचा आत्मानुभव होता है तब नीचा छूट जाता है। इसी तरह जब निर्वाण रूप आप होजाता है, अनंतकालके लिये परम शांत व स्वानुभवरूप होजाता है तब उसका साधनरूप स्वानुभव छूट जाता है।

जैन सिद्धांतमें उन्नति करनेकी चौदह श्रेणियां बताई हैं, इनको पार करके मोक्ष लाभ होता है। मोक्ष हुआ, श्रेणियां दूर रह जाती हैं।

वे गुणस्थानके नामसे कहे जाते हैं—उनके नाम हैं (१) मिथ्यादर्शन, (२) सासादन, (३) मिश्र, (४) अविरति सम्यग्दर्शन, (५) देशविरत, (६) प्रमत्त विरत, (७) अप्रमत्त विरत, (८) अपूर्व-करण, (९) अनिवृत्तिकरण, (१०) सूक्ष्मलोभ, (११) उपशांत मोह, (१२) क्षीण मोह, (१३) सयोगकेवली जिन, (१४) अयोगकेवली जिन। इनमेंसे पहले पांच गृहस्थ श्रावकोंके होते हैं. छठेसे बारहवें तक साधुओंके व तेरह तथा चौदहवें गुणस्थान अर्हन्त सशरीर पर-

मध्यमाके होते हैं। ज्ञान व ध्यानसे आगे सर्व गुणस्थान ध्यान व समाधिरूप हैं। जैसे निर्वाणका मार्ग स्वानुभवरूप निर्विकल्प है वैसे निर्वाण भी स्वानुभवरूप निर्विकल्प है। कार्य होनेपर नीचेका स्वानुभव स्वयं छूट जाता है।

फिर इस सूत्रमें बताया है कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञानको व जो कुछ देखा सुना, अनुभवा व मनसे विचार किया है उसे छोड़दो। उसमें मेरापना न करो। यह सब न मेरा है न यह मैं हूं, न मेरा आत्मा है ऐसा अनुभव करो। यह वास्तवमें भेद विज्ञानका प्रकार है।

जैन सिद्धांतके अनुसार मतिज्ञान व श्रुतज्ञान पांच इन्द्रिय व मनसे होनेवाला पराधीन ज्ञान है, वह आप निर्वाणस्वरूप नहीं है। निर्वाण निर्विकल्प है, स्वानुभवगम्य है, वही मैं हूं या आत्मा है इस भावसे विरुद्ध सर्व ही इन्द्रिय व मनद्वारा होनेवाले विकल्प त्यागने योग्य हैं। यही यहां भाव है। इन्द्रियोंके द्वारा रूपका ग्रहण करता है। पांचों इन्द्रियोंके सर्व विषय रूप हैं, फिर उनके द्वारा सुख-दुःख वेदना होती है, फिर उन्हींकी संज्ञारूप बुद्धि रहती है, उसीका बारबार चित्तपर असर पड़ना संस्कार है, फिर वही एक धारणारूप ज्ञान होजाता है, इसीको विज्ञान कहते हैं। वास्तवमें ये पांचों ही त्यागनेयोग्य हैं। इसी तरह मनकेद्वारा होनेवाला सर्व विकल्प त्यागनेयोग्य हैं। जैन सिद्धान्तमें बताया है कि यह आप आत्मा अतीन्द्रिय है, मन व इन्द्रियोंसे अगोचर है। आपसे आप ही अनुभवगम्य है। श्रुतज्ञानका फल जो भावरूप स्वसंवेदनरूप आत्मज्ञान

है उसके सिवाय सर्व विचाररूप ज्ञान पराधीन व त्यागनेयोग्य है, स्वानुभवमें कार्यकारी नहीं है। फिर सूत्रमें यह बताया है कि छः दृष्टियोंका समुदायरूप जो लोक है वही आत्मा है, मैं मरकर नित्य, अपरिणामी ऐसा आत्मा होजाऊंगा। इसका भाव यही समझमें आता है कि जो कोई वादी आत्माको व जगतको सबको एक ब्रह्मरूप मानते हैं व यह व्यक्ति ब्रह्मरूप नित्य होजायगा इस सिद्धांतका निषेध किया है। इस कथनसे अजात, अमृत, शाश्वत, शांत, पंडित वेद-नीय, तर्क अगोचर निर्वाण स्वरूप शुद्धात्माका निषेध नहीं किया है। उस स्वरूप मैं हूं ऐसा अनुभव करना योग्य है। उस सिवाय मैं कोई और नहीं हूं न कुछ मेरा है, ऐसा यहां भाव है।

(४) फिर यह बताया है कि जो इस ऊपर लिखित मिथ्या-दृष्टिको रखता है उसे ही भय होता है। मोही व अज्ञानीको अपने नाशका भय होता है। निर्वाणका उपदेश सुनकर भी वह नहीं सम-झता है। रागद्वेष मोहके नाशको निर्वाण कहते हैं। इससे वह अपना नाश समझ लेता है। जो निर्वाणके यथार्थ स्वभाव पर दृष्टि रखता है, जिसे कोई भय नहीं रहता है, वह संसारके नाशको हितकारी जानता है।

(५) फिर यह बताया है कि निर्वाणके सिवाय सर्व परिग्रह नाशवंत हैं। उसको जो अपनाता है वह दुःखित होता है। जो नहीं अपनाता है वह सुखी होता है। ज्ञानी भीतर वाहर, स्थूल सूक्ष्म, दूर या निकट, भूत, भविष्य, वर्तमानके सर्व रूपोंको, परमाणु या स्कंधोंको अपना नहीं मानता है। इसी तरह उनके निमित्तसे

होनेवाले त्रिकाल सम्बन्धी वेदना, संज्ञा, संस्कार व विज्ञानको अपना नहीं मानता है। जो मैं परसे भिन्न हूं ऐसा अनुभव करता है वही ज्ञानी है, वही संसार रहित मुक्त होजाता है।

(६) फिर इस सूत्रमें बताया है कि जो बुद्धको नास्तिक-वादका या सर्वथा सत्यके नाशका उपदेशदाता मानते हैं सो मिथ्या है। बुद्ध कहते हैं कि मैं ऐसा नहीं कहता। मैं तो संसारके दुःखोंके नाशका उपदेश देता हूं।

(७) फिर यह बताया है कि जैसा मैं निन्दा व प्रशंसामें समभाव रखता हूं व शोकित व आनंदित नहीं होता हूं वैसा भिक्षु-ओंको भी निंदा व प्रशंसामें समभाव रखना चाहिये।

(८) फिर यह बताया है कि जो तुम्हारा नहीं है उसे छोड़ो। रूपादि विज्ञान तक तुम्हारा नहीं है इसे छोडो। यही स्वाख्यात भलेप्रकार कहा हुआ) धर्म है।

(९) फिर यह बताया है कि जो स्वाख्यात धर्मपर चलते हैं वे नीचेप्रकार अवस्थाओंको यथासंभव पाते हैं—

(१) क्षीणास्रव हो मुक्त होजाते हैं, (२) देव गतिमें जाकर अनागामी होजाते हैं वहींसे मुक्ति पालेते हैं, (३) देवगतिसे एक-वार ही यहां आकर मुक्त होंगे, उनको सकृदागामी कहते हैं, (४) स्रोतापन्न होजाते हैं, संसार सम्बन्धी रागद्वेष मोह नाश करके संबोधि-परायण ज्ञानी होजाते हैं, ऐसे भी श्रद्धा मात्रसे स्वर्गगामी हैं।

जैन सिद्धांतमें भी बताया है जो मात्र अविरत सम्यग्दृष्टी हैं, चारित्र रहित सत्य स्वाख्यात धर्मके श्रद्धावान हैं सच्चे प्रेमी हैं,

वे मरकर प्रायः स्वर्गमें जाते हैं। कोई देव गतिमें जाकर कई जन्मोंमें, कोई एक जन्म मनुष्यका लेकर, कोई उसी शरीरसे निर्वाण पालेते हैं। जैसे यहां राग द्वेष मोहको तीन संयोजन या मल बताया है वैसे ही जैन सिद्धांतमें बताया है। इनका त्यागना ही मोक्षमार्ग है व यही मोक्ष है।

जैनसिद्धांतके कुछ वाक्य—

श्री अमितिगत आचार्य तत्वभावनामें कहते हैं-

यावच्चेतसि बाह्यवस्तुविषयः स्नेहः स्थिरो वर्तते।
तावन्नश्यति दुःखदानकुशलः कर्मप्रपंचः कथम् ॥
आर्द्रत्वे वसुधातलस्य सजटाः शुष्यंति किं पादपाः।
मृज्जत्तापनिपातरोधनपराः शाखोपशाखिन्विताः ॥ ९६ ॥

भावार्थ-जबतक तेरे मनमें बाहरी पदार्थोंसे राग भाव स्थिर होरहा है तबतक किस तरह दुःखकारी कर्मोंका तेरा प्रपंच नाश होसक्ता है। जब पृथ्वी पानीसे भीजी हुई है तब उसके ऊपर सूर्य तापको रोकनेवाले अनेक शाखाओंसे मंडित जटाधारी वृक्ष कैसे सूख सक्ते हैं?

शूरोऽहं शुभधीरहं पटुरहं सर्वाधिकश्रीरहं।
मान्योहं गुणवानहं विभुरहं पुंसामहं चाग्रणीः ॥
इत्यात्मन्नपहाय दुष्कृतकरीं त्वं सर्वथा कल्पनाम्।
शश्वद्ध्याय तदात्मतत्वममलं नैश्रेयसी श्रीर्यतः ॥ ६२ ॥

भावार्थ-मैं शूर हूं, मैं बुद्धिशाली हूं, मैं चतुर हूं, मैं धनमें श्रेष्ठ हूं, मैं मान्य हू, मैं गुणवान हूं, मैं बलवान हूं, मैं महान पुरुष हूं। इन पापकारी कल्पनाओंको हे आत्मन्! छोड़ और निरंतर अपने

शुद्ध आत्मतत्वका ध्यान कर, जिससे अपूर्व निर्वाण लक्ष्मीका लाभ हो।

नाहं कस्यचिदस्मि कश्चन न मे भावः परो विद्यते।
मुक्त्वात्मानमपास्तकर्मसमितिं ज्ञानेक्षणालंकृतिम्॥
यस्यैषा मतिरस्ति चेतसि सदा ज्ञातात्मतत्वस्थितेः।
बंधस्तस्य न यंत्रितं त्रिभुवनं सांसारिकैर्बन्धनैः॥ ११॥

भावार्थ-मेरे सिवाय मैं किसीका नहीं हूं न कोई परभाव मेरा है। मैं तो सर्व कर्मजालसे रहित, ज्ञानदर्शनसे विभूषित एक आत्मा हूं, इसको छोड़कर कुछ मेरा नहीं है। जिसके मनमें यह बुद्धि रहती है उस तत्वज्ञानी महात्माके तीन लोकमें कहीं भी संसारके बंधनोंसे बन्ध नहीं होता है।

मोहांधानां स्फुरति हृदये बाह्यमात्मीयबुद्धया।
निर्मोहानां व्यपगतमलः शश्वदात्मैव नित्यः॥
यत्तद्भेदं यदि विविदिषा ते स्वकीयं स्वकीये-
मोहं चित्त ! क्षपयसि तदा किं न दुष्टं क्षणेन॥ ८८॥

भावार्थ-मोहसे अन्ध जीवोंके भीतर अपनेसे बाहरी वस्तुमें आत्मबुद्धि रहती है, मोह रहितोंके भीतर केवल निर्वाण स्वरूप शुद्ध नित्य आत्मा ही अकेला बसता है। जब तू इस भेदको जानता है तब तू अपना दुष्ट मोह उन सबसे क्षणमात्रमें क्यों नहीं छोड़ देता है।

तत्वज्ञानतरंगिणीमें ज्ञानभूषण भट्टारक कहते हैं-

कीर्तिं वा पररंजनं ख विषयं केचिन्निजं जीवितं।
संतानं च परिग्रहं भयमपि ज्ञानं तथा दर्शनं॥
अन्यस्याखिलवस्तुनो रुग्युति तद्धेतुमुद्दिश्य च।
कुर्युः कर्म विमोहिनो हि सुधियश्चिद्रूपलब्ध्यै परं॥ ९-९॥

भावार्थ-इस संसारमें मोही पुरुष कीर्तिके लिये, कोई पर-रंजनके लिये, कोई इन्द्रिय विषयके लिये, कोई जीवनकी रक्षाके लिये, कोई संतान, कोई परिग्रह प्राप्तिके लिये, कोई भय मिटानेके लिये, कोई ज्ञानदर्शन बढ़ानेके लिये, कोई राग मिटानेके लिये धर्मकर्म करते हैं, परन्तु जो बुद्धिमान हैं वे शुद्ध चिद्रूपकी प्राप्तिके लिये ही यत्न करते हैं।

समयसार कलशमें श्री अमृतचंद्राचार्य कहते हैं—

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामिसमस्तकर्म्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्।
दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं
विन्दन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य संचेतनां ॥ ३०-१० ॥

भावार्थ-ज्ञानी जीव रागद्वेष विभावोंको छोड़कर सदा अपने स्वभावको स्पर्श करते हुए, पूर्व व आगामी व वर्तमानके तीन काल सम्बन्धी सर्व कर्मोंसे अपनेको रहित जानते हुए स्वात्म रमणरूप चारित्रमें आरुढ़ होते हुए आत्मीक आनन्द-रससे पूर्ण प्रकाशमयी ज्ञानकी चेतनाका स्वाद लेते हैं।

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः।
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥ ३२-१० ॥

भावार्थ-भूत भविष्य वर्तमान सम्बन्धी मन वचन काय द्वारा कृत, कारित, अनुमोदनासे नौ प्रकारके सर्व कर्मोंको त्यागकर मैं परम निष्कर्म भावको धारण करता हूं।

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां।
भूमिं श्रयन्ति कथमप्यपनीतमोहाः ॥

ते साधकत्वमभिगम्य भवन्ति सिद्धाः ।
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ॥ २०–११ ॥

भावार्थ–जो ज्ञानी सर्व प्रकार मोहको दूर करके ज्ञानमयी अपनी निश्चल भूमिका आश्रय लेते हैं वे मोक्षमार्गको प्राप्त होकर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं, परन्तु अज्ञानी इस शुद्धात्मीक भावको न पाकर संसारमें भ्रमण करते हैं।

तत्वार्थसारमें कहते हैं—

अकामनिर्जरा बालतपो मन्दकषायता ।
सुधर्मश्रवणं दानं तथायतनसेवनम् ॥ ४२–४ ॥
सरागसंयमश्चैव सम्यक्त्वं देशसंयमः ।
इति देवायुषो ह्येते भवन्त्यास्रवहेतवः ॥ ४३–४ ॥

भावार्थ–देव आयु बांधकर देवगति पानेके कारण ये हैं–(१) अकाम निर्जरा–शांतिसे कष्ट भोग लेना, (२) बालतप–आत्मानुभव रहित इच्छाको रोकना, (३) मन्द कषाय-क्रोधादिकी बहुत कमी, (४) धर्मानुराग सहित भिक्षुका चारित्र पालना, (५) गृहस्थ श्रावकका संयम पालना, (६) सम्यग्दर्शन मात्र होना।

सार समुच्चयमें कहा है—

आत्मानं स्नापयेन्नित्यं ज्ञाननीरेण चारुणा ।
येन निर्मलतां याति जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥ ३१४ ॥

भावार्थ–अपनेको सदा पवित्र ज्ञानरूपी जलसे स्नान कराना चाहिये। इसी स्नानसे यह जीव जन्म जन्मके मलसे छूटकर पवित्र होजाता है।

(१८) मज्झिमनिकाय वम्मिक (वल्मीक) सूत्र ।

एक देवने आयुष्यमान् कुमार काश्यपसे कहा—

भिक्षु ! यह वल्मीक रातको धुंधवाता है, दिनको बलता है ।

ब्राह्मणने कहा-सुमेध ! शस्त्रसे अभीक्षण (काट) सुमेधने शस्त्रसे काटते लंगीको देखा, स्वामी लंगी है ।

ब्रा०-लंगीको फेंक, शस्त्रसे काट । सुमेधने धुंधवाना देखकर कहा धुंधवाता है । ब्रा०-धुंधवानेको फेंक, शस्त्रसे काट ।

सुमेधने कहा-दो रास्ते हैं । ब्रा०-दो रास्ते फेंक ।

सुमेध-चंगवार (टोकरा) है । ब्रा०-चंगवार फेंक दे । सुमेध-कूर्म है । ब्रा०-कूर्म फेंक दे । सुमेध-असिसूना (पशु मारनेका पीढ़ा) है । ब्रा०-असिसूना फेंक दे । सुमेध-मांसपेशी है । ब्रा०-मांसपेशी फेंक दे । सुमेध-नाग है । ब्रा०-रहने दे नागको, मत उसे धक्का दे, नागको नमस्कार कर ।

देवने कहा-इसका भाव बुद्ध भगवानसे पूछना । तब कुमार काश्यपने बुद्धसे पूछा ।

गौतमबुद्ध कहते हैं-(१) वल्मीक यह मातापितासे उत्पन्न, भातदालसे वर्धित, इसी चातुर्भौतिक (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुरूपी) कायाका नाम है जो कि अनित्य है तथा उत्पादन (हटाने) मर्दन, भेदन, विध्वंसन स्वभाववाला है, (२) जो दिनके कामोंके लिये रातको सोचता है, विचारता है, यही रातका धुंधवाना है, (३) जो रातको सोच विचार कर दिनको काया और वचनसे कार्योंमें योग देता है । यह दिनका धधकना है, (४) ब्राह्मण-अर्हत् सम्यक्

सम्बुद्धका नाम है, (५) सुमेध यह शैक्ष्य भिक्षु (जिसकी शिक्षाकी अभी आवश्यक्ता है ऐसा निर्वाण मार्गारूढ़ व्यक्ति) का नाम है, (६) शस्त्र यह आर्य प्रज्ञा (उत्तम ज्ञान) का नाम है, (७) अभीक्षण (काटना) यह वीर्यारंभ (उद्योग) का नाम है, (८) लंगी अविद्याका नाम है। लंगीको फेंक सुमेध—अविद्याको छोड़, शस्त्रसे काट, प्रज्ञासे काट यह अर्थ है, (१०) धुंधुआना यह क्रोधकी परेशानीका नाम है, धुधुआनाके फदे–क्रोध मलको छोड़ दे, प्रज्ञा शस्त्रसे काट यह अर्थ है, (१०) दो रास्ते यह विचिकित्सा (संशय)का नाम है, दो रास्ते फेंक दे, संशय छोड़ दे, प्रज्ञासे काट दे, (११) चंगवार यह पांच नीवरणों (आवरणों) का नाम है जैसे–(१) कामछन्द (भोगोंमें राग), (२) व्यापाद (परपीड़ा करण), (३) स्त्यान-गृद्धि (कायिक मानसिक आलस्य, (४) औद्धत्य-कौकृत्य (उच्छृं-खलता और पश्चाताप) (५) विचिकित्सा (संशय), चंगवार फेंक दे। इन पांच नीवरणोंको छोड़ दे, प्रज्ञासे काट दे, (१२) कूर्म यह पांच उपादान स्कंधोंका नाम है। जैसे कि—

(१) रूप उपादान स्कंध, (२) वेदना उ०, (३) संज्ञा उ०, (४) संस्कार उ०, (५) विज्ञान उ०, इस कर्मको फेंकदे। प्रज्ञा शस्त्रसे इन पांचोंको काट दे। (१३) असिसूना—यह पांच काम-गुणों (भोगों)का नाम है। जैसे (१) चक्षु द्वारा प्रिय विज्ञेय रूप, (२) श्रोत्र विज्ञेय प्रिय शब्द, (३) घ्राण विज्ञेय सुगन्ध, (४) जिह्वा विज्ञेय इष्ट रस, (५) काय विज्ञेय इष्ट स्पृष्टव्य। इस असिसूनाको फेंक दे, प्रज्ञासे इन पांच कामगुणोंको काट दे। (१४) मांसपेशी–

यह नन्दी (राग) का नाम है। इस मांशपेशीको फेंक दे। नन्दी रागको प्रज्ञासे काट दे। (१५) भिक्षु! नाग यह क्षीणास्रव (अर्हत) भिक्षुका नाम है। रहनेदे नागको–मत उसे धक्का दे, नागको नमस्कार कर, यह इसका अर्थ है।

नोट–इस सूत्रमें मोक्षमार्गका गूढ़ तत्वज्ञान बताया है। जैसे सांपकी वल्मीकमें सर्प रहता हो वैसे इस कायरूपी वल्मीकमें निर्वाण स्वरूप अर्हत् क्षीणास्रव शुद्धात्मा रहता है। इस वल्मीकरूपी कायमें क्रोधादि कषायोंका धूआं निकला करता है। इन कषायोंको प्रज्ञासे दूर करना चाहिये। इस कायमें अविद्यारूपी लंगी है। इसको भी प्रज्ञासे दूर करे। इस कायमें संशय या द्विकोटि ज्ञान रूपी दुविधाके दो रास्ते हैं उसको भी प्रज्ञासे छेद डाल। इस कायमें पांच नीवरणोंका टोकरा है। इस टोकरेको भी प्रज्ञासे तोड़ डाल। अर्थात राग, द्वेष, मोह, आलस्य उद्धता और संशयको मिटा डाल। इस कायमें रहते हुए पांच उपादान स्कंधरूपी कूर्म या कछुआ है। इसको प्रज्ञाके द्वारा फेंक दे। अर्थात रूप व रूपसे उत्पन्न वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञानको जो अपने नागरूपी अरहत्का स्वभाव नहीं है उनको भी छोड़ दे। इस कायमें पांच काय गुणरूपी असिसना (पशु मारनेका पीढ़ा) है इसे भी फेंक दे। पांच इन्द्रियोंके मनोज्ञ विषयोंकी चाहको भी प्रज्ञासे मिटा डाल। इस कायमें तृष्णा नदीरूपी मांसकी डली है इसको भी प्रज्ञाके द्वारा दूर करदे। तब इस कायरूपी वल्मीकसे निकलकर यह अर्हत् क्षीणास्रव निर्वाण स्वरूप आत्मारूपी निर्वाणरूप रहेगा।

इस तत्वज्ञानसे साफ प्रगट है कि गौतम बुद्ध निर्वाण स्वरूप आत्माको नागकी उपमा देकर पूजनेकी आज्ञा देते हैं, उसे नहीं फेंकते, उसको स्थिर रखते हैं और जो कुछ भी उसकी प्रतिष्ठाका विरोधी था उस सबको भेदविज्ञान रूपी प्रज्ञासे अलग कर देते हैं। यदि शुद्धात्माका अनुभव या ज्ञान गौतम बुद्धको न होता व निर्वाणको अभावरूप मानते होते तो ऐसा कथन नहीं करते कि सर्व सांसारिक वासनाओंको त्याग कर दो।

सर्व इन्द्रिय व मन सम्बन्धी क्रमवर्ती ज्ञानको अपना स्वरूप न मानो। सर्व चाहनाओंको हटावो। सर्व क्रोधादिको व रागद्वेष मोहको जीत लो। बस, अपना शुद्ध स्वरूप रह जायगा। यही शिक्षा जैन सिद्धांतकी है, निर्वाण स्वरूप आत्मा ही सिद्ध भगवान् है। उसके सर्व द्रव्यकर्म, ज्ञानावरणादि कर्म बंध संस्कार, भावकर्म रागद्वेषादि औपाधिक भाव नोकर्म-शरीरादि बाहरी सर्व पदार्थ नहीं है, न उसके क्रमवर्ती क्षयोपशम अशुद्ध ज्ञान है, न कोई इन्द्रिय है, न मन है। वही ध्यानके योग्य, पूजनके योग्य, नमस्कारके योग्य है। उसके ध्यानसे उसी स्वरूप होजाना है। यही तत्वज्ञान इस सूत्रका भाव है व यही जैन सिद्धांतका मर्म है। गौतमबुद्धरूपी ब्राह्मण नवीन निर्वाणेच्छु शिष्यको ऐसी शिक्षा देते हैं। जबतक शरीरका संयोग है तबतक ये सब ऊपर लिखित उपाधियां रहती हैं, जब वह निर्वाण स्वरूप प्रभु कायसे रहित होकर फिर कायमें नहीं फंसता, वही निर्वाण होजाता है, प्रज्ञा निर्वाण और निर्वाण विरोधी सर्वके भिन्न२ उत्तम ज्ञानको कहते हैं। जैन सिद्धा-

न्तमें प्रज्ञाकी बड़ी भारी प्रशंसा की है। जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य—

श्री कुंदकुंदाचार्य समयसारमें कहते हैं—

जीवो बंधोय तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
पण्णाछेदणएणदु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥ ३१६ ॥

भावार्थ—अपने २ भिन्न २ लक्षणको रखनेवाले जीव और उसके बंधरूप कर्मादि, रागादि व शरीरादि हैं। प्रज्ञारूपी छेनीसे दोनोंको छेदनेसे दोनों अलग रह जाते हैं। अर्थात् बुद्धिमें निर्वाण स्वरूप जीव भिन्न अनुभवमें आता है।

पण्णाए वित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झपरित्त णादव्वा ॥३१९॥

भावार्थ—प्रज्ञा रूपी छेनीसे जो कुछ ग्रहण योग्य है वह चेतनेवाला मैं ही निश्चयसे हूं। मेरे सिवाय बाकी सर्व भाव मुझसे पर हैं, जुदे हैं ऐसा जानना चाहिये।

समयसारकलशमें कहा है—

ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो
जानाति हंस इव वा:पयसोर्विशेषं ।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो
जानीत एव हि करोति न किञ्चनापि ॥ १४—३ ॥

भावार्थ—ज्ञानके द्वारा जो अपने आत्माको और परको अलग अलग इसतरह जानता है जैसे हंस दूध और पानीको अलग २ जानता है। जानकर वह ज्ञानी अपने निश्चल चैतन्य स्वभावमें आरूढ़ रहता हुआ मात्र जानता ही है, कुछ करता नहीं है।

श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिव्वाणु लहेहि ।
पर अप्पा जउ मुणिहि तुहुं तहु संसार भमेहि ॥ १२ ॥

भावार्थ-यदि तू अपनेसे आपको ही अनुभव करेगा तो निर्वाण पावेगा और जो परको आप मानेगा तो तू संसारमें ही भ्रमेगा।

जो परमप्पा सो जि हउं जो हउं सो परमप्पु ।
इउ जाणेविणु जोइआ अण्ण म करहु वियप्पु ॥ २२ ॥

भावार्थ-जो परमात्मा है वही मैं हूं, जो मैं हूं, सो ही परमात्मा है ऐसा समझकर हे योगी! और कुछ विचार न कर।

सुद्धु सचेयण बुद्ध जिणु केवलणाणसहाउ ।
सो अप्पा अणुदिण मुणहु जइ चाहउ सिवलाहु ॥ २६ ॥

भावार्थ-जो तू निर्वाणका लाभ चाहता है तो तू रात दिन उसी आत्माका अनुभव कर जो शुद्ध है, चैतन्यरूप है, ज्ञानी व बुद्ध है, रागादि विजयी जिन है तथा केवलज्ञान स्वभाव धारी है।

अप्पसरूवह जो रमइ छंडवि सहु ववहारु ।
सो सम्माइट्ठी हवइ लहु पावइ भवपारु ॥ ८८ ॥

भावार्थ-जो कोई सर्व लोक व्यवहारसे ममता छोडकर अपने आत्माके स्वरूपमें रमण करता है वही सम्यग्दृष्टी है, वह शीघ्र संसारसे पार होजाता है।

सारसमुच्चयमें कहा है-

शत्रुभावस्थितान् यस्तु करोति वशवर्तिनः ।
प्रज्ञाप्रयोगसामर्थ्यात् स शूरः स च पंडितः ॥ २९० ॥

भावार्थ-जो कोई राग द्वेष मोहादि भावोंको जो आत्माके

शत्रु हैं प्रज्ञाके प्रयोगके बलसे अपने वश कर लेता है वही वीर है व वही पंडित है ।

तत्वानुशासनमें कहा है—

दिधासुः स्वं परं ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थितिं ।
विहायान्यदनर्थित्वात् स्वमेवावैतु पश्यतु ॥ १४३ ॥
नान्योऽस्मि नाहमस्त्यन्यो नान्यस्याहं न मे परः ।
अन्यस्त्वन्योऽहमेवाहमन्योन्यस्याहमेव मे ॥ १४८ ॥

भावार्थ—ध्यानकी इच्छा करनेवाला आपको आप परको पर ठीक ठीक श्रद्धान करके अन्यको अकार्यकारी जानकर छोड़दे, केवल अपनेको ही जाने व देखे । मैं अन्य नहीं हूं न अन्य मुझ रूप है, न अन्यका मैं हूं, न अन्य मेरा है । अन्य अन्य है, मैं मैं हूं, अन्यका अन्य है, मैं मेरा ही हूं, यही प्रज्ञा या भेदविज्ञान है ।

---

(१९) मज्झिमनिकाय रथविनीत सूत्र ।

एक दफे गौतम बुद्ध राजगृहमें थे । तब बहुतसे भिक्षु जातिभूमिक (कपिल वस्तुके निवासी) गौतम बुद्धके पास गए । तब बुद्धने पूछा—भिक्षुओ ! जातिभूमिके भिक्षुओंमें कौन ऐसा संभावित (प्रतिष्ठित) भिक्षु है, जो स्वयं अल्पेच्छ (निर्लोभ) हो और अल्पेच्छकी कथा कहनेवाला हो, स्वयं संतुष्ट हो और संतोषकी कथा कहनेवाला हो, स्वयं प्रविविक्त (एकान्त चिन्तनशील) हो और अविवेककी कथा कहनेवाला हो । स्वयं असंतुष्ट (अनासक्त) हो व असंसर्ग कथा कहनेवाला हो, स्वयं प्रारब्ध वीर्य (उद्योगी) हो, और

वीर्यारम्भकी कथा कहनेवाला हो, स्वयं शीलसम्पन्न (सदाचारी) हो, और शील सम्पदाकी कथा कहनेवाला हो, स्वयं समाधि संपन्न हो और समाधि सम्पदाकी कथा कहनेवाला हो, स्वयं प्रज्ञा सम्पन्न हो और प्रज्ञा सम्पदाकी कथा कहनेवाला हो, स्वयं विमुक्ति सम्पन्न हो और विमुक्ति संपदा कथा कहनेवाला हो, स्वयं विमुक्ति ज्ञान-दर्शन सम्पन्न (मुक्तिके ज्ञानका साक्षात्कार जिसने कर लिया) हो और विमुक्ति ज्ञान दर्शन सम्पदाकी कथा कहता हो, जो सब्रह्मचारियों (सह धर्मियों) के लिये अववादक (उपदेशक), विज्ञापक, संदर्शक, समादयक, समुत्तेजक, सम्प्रहर्षक (उत्साह देनेवाला) हो।

तब उन भिक्षुओंने कहा—कि जाति भूमिमें ऐसा पूर्ण मैत्रायणी पुत्र है तब पास बैठे हुए भिक्षु सारिपुत्रको ऐसा हुआ—क्या कभी पूर्ण मैत्रायणी पुत्रके साथ समागम होगा?

जब गौतमबुद्ध राजग्रहीसे चलकर श्रावस्तीमें पहुंचे तब पूर्ण मैत्रायणी पुत्र भी श्रावस्ती आए और परस्पर धार्मिक कथा हुई। जब पूर्ण मैत्रायणी पुत्र वहीं बचपनमें एक वृक्षके नीचे दिनमें विहार (ध्यान स्वाध्याय) के लिये बैठे थे तब सारि पुत्र भी उसी वनमें एक वृक्षके नीचे बैठे। सायंकालको सारिपुत्र (प्रतिसंलयन) (ध्यान)से उठ पूर्ण मैत्रायणी पुत्रके पास गए और प्रश्न किया। आप बुद्ध भगवानके पास ब्रह्मचर्यवास किस लिये करते हैं। क्या शील विशुद्धिके लिये? नहीं! क्या चित्त विशुद्धिके लिये? नहीं। क्या दृष्टि विशुद्धि (सिद्धांत ठीक करने) के लिये? नहीं। क्या संदेह दूर करनेके लिये? नहीं। क्या मार्ग अमार्गके ज्ञानके दर्शनकी विशुद्धिके

लिये ? नहीं। क्या प्रतिपद (मार्ग) ज्ञानदर्शनकी विशुद्धिके लिये ? नहीं ! क्या ज्ञानदर्शनकी विशुद्धिके लिये ? नहीं ! तब आप किस लिये भगवान्के पास ब्रह्मचर्यवास करते हैं ? उपादान रहित (परिग्रह रहित) परिनिर्वाणके लिये मैं भगवान्के पास ब्रह्मचर्य-वास करता हूं।

सारिपुत्र कहते हैं—तो क्या इन ऊपर लिखित पत्रोंसे अलग उपादान रहित परिनिर्वाण है ? नहीं। यदि इन धर्मोंसे अलग उपादान रहित निर्वाणका अधिकारी भी निर्वाणको प्राप्त होगा, तुम्हें एक उपमा देता हूं। उपमासे भी कोईर विज्ञ पुरुष कहे का अर्थ समझते हैं।

जैसे राजा प्रसेनजित कोसलको श्रावस्तीमें बसते हुए कोई अति आवश्यक काम साकेत (अयोध्या)में उत्पन्न होजावे। वहां जानेके लिये श्रावस्ती और साकेतके बीचमें सात रथ विनीत (डाक) स्थापित करे। तब राजा प्रसेनजित श्रावस्तीसे निकलकर अंतःपुरके द्वारपर पहले रथ विनीत (रथकी डाक) पर चढ़े, फिर दूसरेपर चढे पहलेको छोडदे, फिर तीसरेपर चढ़े दूसरेको छोड़दे। इसतरह चलते चलते सातवें रथ-विनीतसे साकेतके अंतपुरके द्वारपर पहुंच जावे तब वहां मित्र व अमात्यादि राजासे पूंछे—क्या आप इसी रथविनीत द्वारा श्रावस्तीसे साकेत आए हैं ? तब राजा यही उत्तर देगा मैंने बीचमें सात रथ विनीत स्थापित किये थे। श्रावस्तीसे निकलकर चलते २ क्रमशः एकको छोड़ दूसरेपर चढ़ इस सातवें रथविनीतसे साकेतके अंतः-पुरके द्वारपर पहुंच गया हूं। इसी तरह शीलविशुद्धि तभीतक है

जबतक चित्त विशुद्धि न हो। चित्त विशुद्धि तभीतक है जबतक दृष्टि विशुद्धि न हो। दृष्टि विशुद्धि तभीतक है जबतक कांक्षा (संदेह) वितरण विशुद्धि न हो। यह विशुद्धि तभीतक है जबतक मार्गामार्ग ज्ञान दर्शन विशुद्धि न हो। यह विशुद्धि तभीतक है जबतक प्रतिपद्ज्ञानदर्शन विशुद्धि न हो। यह विशुद्धि तभी तक है जबतक ज्ञान दर्शन विशुद्धि न हो। ज्ञान दर्शन विशुद्धि तभी-तक है जबतक उपादान रहित परिनिर्वाणको प्राप्त नहीं होता। मैं इसी अनुपादान परिनिर्वाणके लिये भगवानके पास ब्रह्मचर्य प्राप्त करता हूं।

सारिपुत्र प्रसन्न होजाता है। इस प्रकार दोनों महानागों (महावीरों) ने एक दूसरेको सुभाषितका अनुमोदन किया।

नोट-इस सूत्रसे सच्चे भिक्षुका लक्षण प्रगट होता है जो सबसे पहले कहा है कि अल्पेच्छ हो इत्यादि। फिर यह दिखलाया है कि निर्वाण सर्व उपादान या परिग्रहसे रहित शुद्ध है। उसकी प्राप्तिके लिये सात मार्ग या श्रेणियां हैं। जैसे सात जगह रथ बदलकर मार्गको तय करते हुए कोई श्रावस्तीसे साकेत आवे। चलनेवालेका ध्येय साकेत है। इसी ध्येयको सामने रखते हुए वह सात रथोंके द्वारा पहुंच जावे। इसी तरह साधकका ध्येय निरुपादान निर्वाणपर पहुंचना है। इसीके लिये क्रमशः सात शक्तियोंमें पूर्णता प्राप्त करता हुआ निर्वाणकी तरफ बढ़ता है। (१) शील विशुद्धि या सदाचार पालनेसे चित्तविशुद्धि होगी। कामवासनाओंसे रहित मन होगा। (२) फिर चित्त विशुद्धिसे दृष्टि विशुद्धि होगी अर्थात् श्रद्धा निर्मल

होगी, (३) फिर दृष्टि विशुद्धिसे कांक्षा वितरण विशुद्धि या संदेह-रहित विशुद्धि होगी, (४) फिर इस निःसंदेह भावसे मार्ग अमार्ग ज्ञानदर्शन विशुद्धि होगी अर्थात् सुमार्ग व कुमार्गका यथार्थ भेद-ज्ञानपूर्ण ज्ञानदर्शन होगा, (५) फिर इसके अभ्याससे प्रतिपद् ज्ञान-दर्शन विशुद्धि या सुमार्गके ज्ञानदर्शनकी निर्मलता होगी, (६) फिर इसके द्वारा ज्ञानदर्शन विशुद्धि होगी, अर्थात् ज्ञानदर्शन गुण निर्मल होगा, अर्थात् जैन सिद्धांतानुसार अनंत ज्ञान व अनंत दर्शन प्राप्त होगा, (७) फिर उपादान रहित परिनिर्वाण या मोक्ष प्राप्त होजायगा जहां केवल अनुभवगम्य एक आप निर्वाण स्वरूप-सर्व सांसारिक वासनाओंसे रहित, क्रमवर्ती ज्ञानसे रहित, सिद्ध स्वरूप शुद्धात्मा रह जायगा।

जैन सिद्धांतका भी यही सार है कि जब कोई साधक शुद्धात्मा-नुभवरूप समाधिको प्राप्त होगा जहां संदेहरहित मोक्षमार्गका ज्ञान-दर्शन स्वरूप अनुभव है तब ही मलसे रहित हो, अर्हंत केवली होगा। अनंत ज्ञान व अनंत दर्शनका धनी होगा। फिर आयुके अंतमें शरीर रहित, कर्म रहित, सर्व उपाधि रहित शुद्ध परमात्मा सिद्ध या निर्वाण स्वरूप होजायगा। भावार्थ यही है कि व्यवहारशील व चारित्रके द्वारा निश्चय स्वात्मानुभव रूप सम्यक्समाधि ही निर्वाणका मार्ग है।

जैन सिद्धांतके कुछ वाक्यः—

सारसमुच्चयमें मोक्षमार्ग पथिकका स्वरूप बताया है—

संसारध्वंसिनीं चर्या ये कुर्वंति सदा नराः।
रागद्वेषहतिं कृत्वा ते यान्ति परमं पदम्॥ २१६॥

भावार्थ—जो कोई मानव सदा राग द्वेषको नाश करके संसारको मिटानेवाले चारित्रको पालते हैं वे ही परमपद निर्वाणको पाते हैं।

ज्ञानभावनया शक्ता निभृतेनान्तरात्मना।
अप्रमत्तं गुणं प्राप्य लभन्ते हितमात्मनः॥ २१८॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी महात्मा साधु आत्मज्ञानकी भावनासे सींचे हुए व दृढ़ता रखते हुए प्रमाद रहित ध्यानकी श्रेणियोंमें चढ़कर अपने आत्माका हित पाते हैं।

संसारवासभीरूणां त्यक्तान्तर्बाह्यसंगिनाम्।
विषयेभ्यो निवृत्तानां श्लाघ्यं तेषां हि जीवितम्॥२१९॥

भावार्थ—जो महात्मा संसारके भ्रमणसे भयभीत हैं, तथा रागादि अंतरङ्ग परिग्रह व धनधान्यादि बाहरी परिग्रहके त्यागी हैं तथा पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त हैं उन साधुओंका ही जीवन प्रशंसनीय है।

श्री समन्तभद्राचार्य रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहते हैं—

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः॥४०॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव ऐसे निर्वाणका लाभका ही ध्येय रखके धर्मका सेवन करते हैं जो निर्वाण आनन्दरूप है, जरा रहित है, रोग रहित है, बाधा रहित है, शोक रहित है, भय रहित है, शंका रहित है, जहां परम सुख व परम ज्ञानकी सम्पदा है तथा जो सर्व मल रहित निर्मल शुद्ध है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं—

जो णिहदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्णे।
होज्जं समसुहदुक्खो सो सोक्खं अक्खयं लहदि ॥१०७-२॥
जो खविदमोहकलुसो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे सो अप्पाणं हवदि धादा ॥ १०८-२ ॥
इहलोग णिरावेक्खो अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्मि।
जुत्ताहारविहारो रहिदकसाओ हवे समणो ॥ ४२-३ ॥

भावार्थ—जो मोहकी गांठको क्षय करके साधुपदमें स्थित होकर रागद्वेषको दूर करता है और सुख दुःखमें समभावका धारी होता है वही अविनाशी निर्वाण सुखको पाता है। जो महात्मा मोहरूप मैलको क्षय करता हुआ, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होता हुआ व मनको रोकता हुआ अपने शुद्ध स्वभावमें एकतासे ठहर जाता है, वही आत्माका ध्यान करनेवाला है। जो मुनि इस लोकमें विषयोंकी आशासे रहित है, परलोकमें भी किसी पदकी इच्छा नहीं रखता है, योग्य आहार विहारका करनेवाला है तथा क्रोधादि कषाय रहित है वही साधु है।

श्री कुंदकुंदाचार्य भावपाहुड़में कहते हैं—

जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो।
सो जरमरण विणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं ॥ ६१ ॥

भावार्थ—जो जीव आत्माके स्वभावको जानता हुआ आत्माके स्वभावकी भावना करता है वह जरा मरणका नाश करता है और प्रगटपने निर्वाणको पाता है।

श्री शुभचन्द्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

अतुलसुखनिधानं ज्ञानविज्ञानबीजं
विलयगतकलंकं शांतविश्वप्रचारम् ।
गलितसकलशंकं विश्वरूपं विशालं
भज विगतविकारं स्वात्मनात्मानमेव ॥४२-१३॥

भावार्थ-हे आनन्द ! तू अपने ही आत्माके द्वारा अनंत सुख समुद्र, केवल ज्ञानका बीज, कलंक रहित, सर्व संकल्पविकल्प रहित, सर्वशंका रहित, ज्ञानापेक्षा सर्वव्यापी, महान, तथा निर्विकार आत्माको ही भज, इसीका ही ध्यान कर ।

ज्ञानभूषण भट्टारक तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहते हैं—

संगत्यागो निर्जनस्थानकं च तत्त्वज्ञानं सर्वचिंताविमुक्तिः ।
निर्बाधत्वं योगरोधो मुनीनां मुक्तयै ध्याने हेतवोऽमी निरुक्ताः ॥८-१६॥

भावार्थ—परिग्रहका त्याग, निर्जनस्थान, तत्वज्ञान, सर्व चिंताओंका निरोध, बाधारहितपना, मन वचन काय योगोंकी गुप्ति, ये ही मोक्षके हेतु ध्यानके साधन कहे गए हैं ।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

परदव्वं देहाई कुणइ ममत्तिं च जाम तस्सुवरिं ।
परसमयरदो तावं बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं ॥ ३४ ॥

भावार्थः-पर द्रव्य शरीरादि है। जब तक उनके ऊपर ममता करता है तबतक पर पदार्थमें रत है व तबतक नाना प्रकार कर्मोको बांधता है ।

(२०) मज्झिमनिकाय—निवाय सूत्र ।

गौतमबुद्ध कहते हैं—नैवायिक (बहेलिया शिकारी) यह सोच कर निवाय (मृगोंके शिकारके लिये जंगलमें बोए खेत) नहीं बोता कि इस मेरे बोए निवायको खाकर मृग दीर्घायु हो चिरकाल तक गुजारा करें। वह इसलिये बोता है कि मृग इस मेरे बोए निवायको मूर्छित हो भोजन करेंगे, मदको प्राप्त होंगे, प्रमादी होंगे, स्वेच्छाचारी होंगे (और मैं इनको पकड़ लूंगा)।

भिक्षुओ ! पहले मृगों (के दल) ने इस निवायको मूर्छित हो भोजन किया। प्रमादी हुए (पकडे गए) नैवायिकके चमत्कारसे मुक्त नहीं हुए।

दूसरे मृगों (के दल) ने पहले मृगोंकी दशाको विचार इस निवाय भोजनसे विरत हो भयभीत हो अरण्य स्थानोंमें विहार किया। ग्रीष्मके अंतिम मासमें घास पानीके क्षय होनेसे उनका शरीर अत्यंत दुर्बल होगया, बल वीर्य नष्ट होगया तब नैवायिकके बोए निवायको खानेके लिये लौटे, मूर्छित हो भोजन किया (पकडे गए)।

तीसरे मृगों (क दल) ने दोनों मृगोंके दलोंकी दशाको देख यह सोचा कि हम इस निवायको अमूर्छित हो भोजन करें। उन्होंने अमूर्छित हो भोजन किया। प्रमादी नहीं हुये। तब नैवायिकने उन मृगोंके गमन आगमनके मार्गको चारों तरफसे डंडोंसे घेर दिया। ये भी पकड़ लिये गये।

चौथे मृगों (के दल) ने तीनों मृगोंकी दशाको विचार यह सोचा कि हम वहां आश्रय लें जहां नैवायिककी गति नहीं है, वहां

अमूर्छित होकर निवायको भोजन करें। उन्होंने ऐसा ही किया। स्वेच्छाचारी नहीं हुए। तब नैवायिकको यह विचार हुआ कि ये मृग चतुर हैं। हमारे छोड़े निवायको खाते हैं परन्तु उसने उनके आश्रयको नहीं देख पाया जहांकि वे पकड़े जाते। तब नैवायिकको यह विचार हुआ कि इनके पीछे पड़ेंगे तब सारे मृग इस बोए निवायको छोड़ देंगे, क्यों न हम इन चौथे मृगोंकी उपेक्षा करें, ऐसा सोच उसने उपेक्षित किया। इस प्रकार चौथे मृग नैवायिकके फंदसे छूटे-पकड़े नहीं गए। भिक्षुओ! अर्थको समझनेके लिये यह उपमा कही है। निवाय पांच काम गुणों (पांच इन्द्रिय भोगों) का नाम है। नैवायिक पापी मारका नाम है। मृग समूह श्रमण-ब्राह्मणोंका नाम है। पहले प्रकारके मृगोंके समान श्रमण ब्राह्मणोंने इन्द्रिय विषयोंको मूर्छित हो भोगा-प्रमादी हुए, स्वेच्छाचारी हुए, मारके फंदेमें फंस गए।

दूसरे प्रकारके श्रमण ब्राह्मण पहले श्रमण-ब्राह्मणोंकी दशाको विचार कर, विषयभोगसे सर्वथा विरत हो, अरण्य स्थानोंका अवगाहन कर विहरने लगे। वहां शाकाहारी हुए, जमीनपर पड़े फलोंको खानेवाले हुए। ग्रीष्मके अंत समयमें घास पानीके क्षय होनेपर भोजन न पाकर बल वीर्य नष्ट होनसे चित्तकी शान्ति नष्ट होगई। लौटकर विषय भोगोंको मूर्छित होकर करने लगे। मारके फन्देमें फंस गए।

तीसरे प्रकारके श्रमण ब्राह्मणोंने दोनों प्रकारके श्रमण-ब्राह्मणोंकी दशा विचार यह सोचा क्यों न हम अमूर्छित हो विषयभोग करें? ऐसा सोच अमूर्छित हो विषयभोग किया, स्वेच्छाचारी नहीं हुए

किन्तु उनकी ये दृष्टियां हुईं (इन दृष्टियोंके या नयोंके विचारमें फंस गए) (१) लोक शाश्वत है, (२) (अथवा) यह लोक अशाश्वत है, (३) लोक सान्त है, (४) (अथवा) लोक अनंत है, (५) सोई जीव है, सोई शरीर है, (६) (अथवा) जीव अन्य है, शरीर अन्य है, (७) तथागत (बुद्ध, मुक्त) मरनेके बाद होते हैं, (८) (अथवा) तथागत मरनेके बाद नहीं होते, (९) तथागत मरनेके बाद होते भी हैं, नहीं भी होते, (१०) तथागत मरनेके बाद न होते हैं न नहीं होते हैं। इस प्रकार इन (विकल्प जालोंमें फंसकर) तीसरे श्रमण-ब्राह्मण भी मारके फंदेसे नहीं छूटे।

चौथे प्रकारके श्रमण-ब्राह्मणोंने पहले तीन प्रकारके श्रमण-ब्राह्मणोंकी दशाको विचार यह सोचा कि क्यों न हम वहां आश्रय ग्रहण करें जहां मारकी और मार परिषद्‌की गति नहीं है। वहां हम अमूर्छित हो भोजन करेंगे, मदको प्राप्त न होंगे, स्वेच्छाचारी न होंगे, ऐसा सोच उन्होंने ऐसा ही किया। वे चौथे श्रमण ब्राह्मण मारके फंदेसे छूटे रहे।

कैसे (आश्रय करनेसे) मार और मार परिषद्‌की गति नहीं होती।

(१) भिक्षु कामों (इच्छाओं)से रहित हो, बुरी बातोंसे रहित हो, सवितर्क सविचार विवेकज प्रीतिसुख रूप प्रथम ध्यानको प्राप्त हो, विहरता है। इस भिक्षुने मारको अंधा कर दिया। मारकी चक्षुसे अगम्य बनकर वह भिक्षु पापी मारसे अदर्शन होगया।

(२) फिर वह भिक्षु अवितर्क अविचार समाधिजन्य द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अंधा कर दिया।

(३) फिर वह भिक्षु उपेक्षा सहित, स्मृतिसहित, सुखविहारी तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अंधा कर दिया।

(४) फिर वह भिक्षु अदुःख व असुखरूप, उपेक्षा व स्मृतिसे परिशुद्ध चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(५) फिर वह भिक्षु रूप संज्ञाओंको, प्रतिघ (प्रतिहिंसा) संज्ञाओंको, नानापनकी संज्ञाओंको मनमें न करके "अनन्त आकाश है" इस आकाश आनन्त्य आयतनको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(६) फिर वह भिक्षु आकाश पतनको सर्वथा, अतिक्रमण कर "अनन्त विज्ञान है" इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(७) फिर वह भिक्षु सर्वथा विज्ञान आयतनको अतिक्रमण कर "कुछ नहीं" इस आकिंचन्यायतनको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(८) फिर वह भिक्षु सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमण कर नैव संज्ञा न असंज्ञा आयतनको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(९) फिर वह भिक्षु सर्वथा नैव संज्ञा न असंज्ञायतनको उल्लंघन कर संज्ञावेदयित निरोधको प्राप्त हो विहरता है। प्रज्ञासे देखते हुए इसके आस्रव परिक्षीण होजाते हैं। इस भिक्षुने मारको अन्धा

कर दिया। यह भिक्षु मारकी चक्षुसे अगम्य बनकर पापीसे अदर्शन होगया। लोकसे विसत्तिक (अनासक्त) हो उत्तीर्ण होगया है।

नोट–इस सूत्रमें सम्यक्‌समाधिरूप निर्वाण मार्गका बहुत ही बढ़िया कथन किया है। तीन प्रकारके व्यक्ति मोक्षमार्गी नहीं हैं। (१) वे जो विषयोंमें लम्पटी हैं, (२) वे जो विषयभोग छोड़कर जाते परन्तु वासना नहीं छोड़ते, वे फिर लौटकर विषयोंमें फंस जाते। (३) वे जो विषयभोगोंमें तो मूर्छित नहीं होते, मात्रारूप अप्रमादी हो भोजन करते परन्तु नाना प्रकार विकल्प जालोंमें व संदेहोंमें फंसे रहते हैं, वे भी समाधिको नहीं पाते। चौथे प्रकारके भिक्षु ही सर्व तरह संसारसे बचकर मुक्तिको पाते हैं, जो काम भोगोंसे विरक्त होकर रागद्वेष व विकल्प छोड़कर निश्चिन्त हो, ध्यानका अभ्यास करते हैं। ध्यानके अभ्यासको बढ़ाते बढ़ाते बिलकुल समाधि भावको प्राप्त हो जाते हैं तब उनके आस्रव क्षय होजाते हैं वे संसारसे उत्तीर्ण होजाते हैं। वास्तवमें पांच इन्द्रियरूपी क्षेत्रोंको अनासक्त हो भोगना और तृष्णासे बचे रहना ही निर्वाण प्राप्तिका उपाय है। गृहीपदमें भी ज्ञान वैराग्ययुक्त आवश्यक अर्थ व काम पुरुषार्थ साधते हुए ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। साधु होकर पूर्ण इन्द्रिय विजयी हो, संयम साधनके हेतु सरस नीरस भोजन पाकर ध्यानका अभ्यास बढाना चाहिये। ध्यान समाधिसे विभूषित वीतरागी साधु ही संसारसे पार होता है।

अब जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य काम भोगोंके सम्बन्धमें कहते हैं–

प्रवचनसारमें कहा है:—

ते पुण उदिण्णतण्हा दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि।
इच्छंति अणुहवंति य आमरणं दुक्खसंतत्ता ॥ ७९-१ ॥

भावार्थ-संसारी प्राणी तृष्णाके वशीभूत होकर तृष्णाकी दाहसे दुःखी होते हुए इन्द्रिय भोगोंके सुखोंको बारबार चाहते हैं और भोगते हैं। मरण पर्यन्त ऐसा करते हैं तथापि संतापित रहते हैं।

शिवकोट आचार्य भगवती आराधनामें कहते हैं।

जीवस्स णत्थि तित्ती, चिरं पि भोएहिं भुंजमाणेहिं।
तित्तीपे विणा चित्तं, उव्वूरं उव्वुदं होइ ॥ १२६४ ॥

भावार्थ-चिरकाल तक भोगोंको भोगते हुए भी इस जीवको तृप्ति नहीं होती है। तृप्ति विना चित्त घबड़ाया हुआ उड़ा उड़ा फिरता है। आत्मानुशासनमें कहा है—

दृष्ट्वा जनं व्रजसि किं विषयाभिलाषं
स्वल्पोऽप्यसौ तव महज्जनयत्यनर्थम्।
स्नेहाद्युपक्रमजुषो हि यथातुरस्य
दोषो निषिद्धचरणं न तथेतरस्य ॥ १९१ ॥

भावार्थ-हे मूढ़ ! तू लोगोंकी देखादेखी क्यों विषयभोगोंकी इच्छा करता है। ये विषयभोग थोड़ेसे भी सेवन किये जावें तौभी महान अनर्थको पैदा करते हैं। रोगी मनुष्य थोड़ा भी घी आदिका सेवन करे तो उसको वे दोष उत्पन्न करते हैं, वैसा दूसरेको नहीं उत्पन्न करते हैं। इसलिये विवेकी पुरुषोंको विषयाभिलाष करना उचित नहीं। श्री अमितगति तत्वभावनामें कहते हैं—

ध्यावृत्त्येन्द्रियगोचरोरुगहने लोलं चरिष्णुं चिरं।
दुर्वारं हृदयोदरे स्थिरतरं कृत्वा मनोमर्कटम्॥
ध्यानं ध्यायति मुक्तये भवततेर्निर्मुक्तभोगस्पृहो।
नोपायेन विना कृता हि विषयः सिद्धिं लभन्ते ध्रुवम्॥९४॥

भावार्थ—जो कोई कठिनतासे वश करनेयोग्य इस मनरूपी बंदरको, जो इन्द्रियोंके भयानक वनमें लोभी होकर चिरकालसे चर रहा था, हृदयमें स्थिर करके बांध देते हैं और भोगोंकी वांछा छोड़कर परिश्रमके साथ निर्वाणके लिये ध्यान करते हैं, वे ही निर्वाणको पासक्ते हैं। विना उपायके निश्चयसे सिद्धि नहीं होती।

श्री शुभचंद्र ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

अपि संकल्पिताः कामाः संभवन्ति यथा यथा।
तथा तथा मनुष्याणां तृष्णा विश्वं विसर्पति॥२०-२०॥

भावार्थ—मानवोंको जैसे जैसे इच्छानुसार भोगोंकी प्राप्ति होती जाती है वैसे २ उनकी तृष्णा बढ़ती हुई सर्व लोक पर्यंत फैल जाती है।

यथा यथा हृषीकाणि स्ववशं यान्ति देहिनाम्।
तथा तथा स्फुरत्युच्चैर्हृदि विज्ञानभास्करः॥ ११-२० ॥

भावार्थ—जैसे जैसे प्राणियोंके वशमें इन्द्रियां आती जाती हैं वैसे वैसे आत्मज्ञानरूपी सूर्य्य हृदयमें ऊँचा ऊँचा प्रकाश करता जाता है।

श्री ज्ञानभूषणजी तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहते हैं—

खसुखं न सुखं नृणां किंत्वभिलाषाग्निवेदनाप्रतीकारः।
सुखमेव स्थितिरात्मनि निराकुलत्वाद्विशुद्धपरिणामात्॥४-१७॥
बहून् वारान् मया भुक्तं सविकल्पं सुखं ततः।
तन्नापूर्वं निर्विकल्पे सुखेऽस्तीहा ततो मम॥ १०-१७ ॥

भावार्थ-इन्द्रियजन्यसुख सुख नहीं है किंतु जो तृष्णारूपी आग पैदा होती है उसकी वेदनाका क्षणिक इलाज है। सुख तो आत्मामें स्थित होनेसे होता है, जब परिणाम विशुद्ध हों व निराकुलता हो।

मैंने इन्द्रियजन्य सुखको बारबार भोगा है, वह कोई अपूर्व नहीं है। वह तो आकुलताका कारण है। मैंने निर्विकल्प आत्मीक सुख कभी नहीं पाया, उसीके लिये मेरी भावना है।

(२१) मज्झिमनिकाय-महासारोपम सूत्र।

गौतमबुद्ध कहते हैं-(१) भिक्षुओ! कोई कुल पुत्र श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित (सन्यासी) होता है। "मैं जन्म, जरा, मरण, शोकादि दुःखोंमें पड़ा हूं। दुःखसे लिप्त मेरे लिये क्या कोई दुःखस्कंधके अन्त करनेका उपाय है?" वह इस प्रकार प्रव्रजित हो लाभ सत्कार व प्रशंसाका भागी होता है। इसीसे संतुष्ट हो अपनेको परिपूर्ण संकल्प समझता है कि मैं प्रशंसित हूं, दूसरे भिक्षु अप्रसिद्ध शक्तिहीन हैं। वह इस लाभ सत्कार प्रशंसासे मतवाला होता है, प्रमादी बनता है, प्रमत्त हो दुःखमें पड़ता है।

जैसे सार चाहनेवाला पुरुष सार (हीर या असली रस गूदा) की खोजमें घूमता हुआ एक सारवाले महान वृक्षके रहते हुए उसके सारको छोड़, फल्गु (सार और छिलकेके बीचका काठ) को छोड़, पपड़ीको छोड़, शाखा पत्तेको काटकर और उसे ही सार समझ लेकर चला जावे, उसको आंखवाला पुरुष देखकर ऐसा

कहे कि हे पुरुष ! आपने सारको नहीं समझा । सारसे जो काम करना है वह इस शाखा पत्तेमे न होगा । ऐसे ही भिक्षुओ! यह वह है जिस भिक्षुने ब्रह्मचर्य (बाहरी शील) के शाखा पत्तेको ग्रहण किया और उतनेहीसे अपने कृत्यको समाप्त कर दिया ।

(२) कोई कुल पुत्र श्रद्धासे प्रव्रजित हो लाभ, सत्कार, श्लोकका भागी होता है। वह इससे संतुष्ट नहीं होता व उस लाभादिसे न घमण्ड करता है न दूसरोंको नीच देखता है, वह मतवाला व प्रमादी नहीं होता, प्रमाद रहित हो, शील (सदाचार) का आराधन करता है, उसीसे सन्तुष्ट हो, अपनेको पूर्ण संकल्प समझता है। वह उस शील सम्पदासे अभिमान करता है, दूसरोंको नीच समझता है। यह भी प्रमादी हो दुःखित होता है ।

जैसे भिक्षुओ! कोई सारका खोजी पुरुष छाल और पपड़ीको काटकर व उसे सार समझकर लेकर चला जावे, उसको आंखवाला देखकर कहे कि आप सारको नहीं समझे। सारसे जो काम करना है वह इस छाल और पपड़ीसे न होगा। तब वह दुःखित होता है। ऐसे ही यह शील संपदाका अभिमानी भिक्षु दुःखित होता है । क्योंकि इसमें यहीं अपने कृत्यकी समाप्ति करदी ।

(३) कोई कुलपुत्र श्रद्धानसे प्रव्रजित हो लाभादिसे सन्तुष्ट न हो, शील सम्पदासे मतवाला न हो समाधि संपदाको पाकर उससे संतुष्ट होता है, अपनेको परिपूर्ण संकल्प समझता है। वह उस समाधि संपदासे अभिमान करता है, दूसरोंको नीच समझता है, वह इस तरह मतवाला होता है ।

प्रमादी हो दुःखित होता है। जैसे कोई सार चाहनेवाला सारको छोड़ फल्गु जो छालको काटकर, सार समझकर लेकर चला जावे उसको आंखवाला पुरुष देखकर कहे आप सारको नहीं समझे काम न निकलेगा, तब वह दुःखित होता है। इसी तरह वह कुल-पुत्र दुःखित होता है।

(४) कोई कुलपुत्र श्रद्धासे प्रव्रजित हो लाभादिसे, शील-सम्पदासे व समाधि सम्पदासे मतवाला नहीं होता है। प्रमादरहित हो ज्ञानदर्शन (तत्व साक्षात्कार) का आराधन करता है। वह उस ज्ञानदर्शनमें संतुष्ट होता है। परिपूर्ण संकल्प अपनेको समझता है। वह इस ज्ञानदर्शनसे अभिमान करता है, दूसरोंको नीच समझता है, वह मतवाला होता है, दुःखी होता है।

जैसे भिक्षुओ! सार खोजी पुरुष सारको छोड़कर फल्गुको काटकर सार समझ लेकर चला जावे। उसको आंखवाला पुरुष देखकर कहे कि यह सार नहीं है तब वह दुःखित होता है। इसी तरह यह भिक्षु भी दुःखित होता है।

(५) कोई कुलपुत्र लाभादिसे, शील सम्पदासे, समाधि संपदासे मतवाला न होकर ज्ञान दर्शनसे संतुष्ट होता है। परन्तु पूर्ण संकल्प नहीं होता है। वह प्रमाद रहित हो शीघ्र मोक्षको आराधित करता है। तब यह संभव नहीं कि वह भिक्षु उस सद्यः प्राप्त (तात्कालिक) मोक्षसे च्युत होवे। जैसे सारखोजी पुरुष सारको ही काटकर यही सार है, ऐसा समझ ले जावे, उसे कोई आंखवाला पुरुष देख कर कहे कि अहो! आपने सारको समझा है, आपका

सारसे जो काम लेना है वह मतलब पूर्ण होगा । ऐसे ही वह कुल-पुत्र अकालिक मोक्षसे च्युत न होगा ।

इस प्रकार भिक्षुओ ! यह ब्रह्मचर्य (भिक्षुपद) लाभ, सत्कार श्लोक पानेके लिये नहीं हैं, शील संपत्तिके लाभके लिये नहीं हैं, न समाधि संपत्तिके लाभके लिये हैं, न ज्ञानदर्शन (तत्वको ज्ञान और साक्षात्कार) के लाभके लिये हैं। जो यह न च्युत होनेवाली चित्तकी मुक्ति है इसीके लिये यह ब्रह्मचर्य है, यही सार है, यही अन्तिम निष्कर्ष है ।

नोट—इस सूत्रमें बताया है कि साधकको मात्र एक निर्वाण लाभका ही उद्देश्य रखना चाहिये । जबतक निर्वाणका लाभ न हो तबतक नीचेकी श्रेणियोंमें संतोष नहीं मानना चाहिये, न किसी प्रकारका अभिमान करना चाहिये । जैसे सारको चाहनेवाला वृक्षकी शाखा आदि ग्रहण करेगा तो सार नहीं मिलेगा । जब सारको ही पासकेगा तब ही उसका इच्छित फल सिद्ध होगा। उसी तरह साधुको लाभ सत्कार श्लोकमें संतोष न मानना चाहिये, न अभिमान करना चाहिये । शील या व्यवहार चारित्रकी योग्यता प्राप्तकर भी संतोष मानकर बैठ न रहना चाहिये, आगे समाधि प्राप्तिका उद्यम करना चाहिये । समाधिकी योग्यता होजाने पर फिर समाधिके बलसे ज्ञानदर्शनका आराधन करना चाहिये ! अर्थात् शुद्ध ज्ञानदर्शनमय होकर रहना चाहिये। फिर उससे मोक्षभावका अनुभव करना चाहिये। इस तरह वह शाश्वत् मोक्षको पा लेता है ।

जैन सिद्धांतानुसार भी यही भाव है कि साधुको ख्याति

लाभ पूजाका रागी न होकर व्यवहार चारित्र अर्थात् शीलको अच्छे प्रकार पालकर ध्यान समाधिको बढ़ा कर धर्मध्यानकी पूर्णता करके फिर शुक्लध्यानमें आकर शुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावका अनुभव करना चाहिये। इसीके अभ्याससे शीघ्र ही भाव मोक्षरूप अर्हत् पदको प्राप्त होकर मुक्त होजायगा। फिर मुक्तिसे कभी च्युत नहीं होगा। यहां बौद्ध सूत्रमें जो ज्ञानदर्शनका साक्षात्कार करना कहा है इसीसे सिद्ध है कि वह कोई शुद्ध ज्ञानदर्शन गुण है जिसका गुणी निर्वाण स्वरूप आत्मा है। यह ज्ञान रूप वेदना संज्ञा संस्कार जनित विज्ञानसे भिन्न है। पांच स्कंधोंसे पर है। सर्वथा क्षणिकवादमें अच्युत मुक्ति सिद्ध नहीं होसक्ती है। पाली बौद्ध साहित्यमें अनुभवगम्य शुद्धात्माका अस्तित्व निर्वाणको अजात व अमर माननेसे प्रगटरूपसे सिद्ध होता है, सूक्ष्म विचार करनेकी जरूरत है।

जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य—

श्री नागसेनजी तत्वानुशासनमें कहते हैं—

रत्नत्रयमुपादाय त्यक्त्वा बंधनिबंधनं।
ध्यानमभ्यस्यतां नित्यं यदि योगिन्मुमुक्षसे ॥ २२३ ॥
ध्यानाभ्यासप्रकर्षेण तुद्यन्मोहस्य योगिनः।
चरमांगस्य मुक्तिः स्यात्तदा अन्यस्य च क्रमात् ॥२२४॥

भावार्थ-हे योगी! यदि तू निर्वाणको चाहता है तो तू सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र इस रत्नत्रय धर्मको धारण कर तथा राग द्वेष मोहादि सर्व बंधके कारण भावोंको त्याग कर और भलेप्रकार सदा ध्यान समाधिका अभ्यास कर। जब ध्यानका उत्कृष्ट साधन होजायगा तब उसी शरीरसे निर्वाण पानेवाले योगीका

सर्व मोह क्षय होजायगा तथा जिसको ध्यानका उत्तम पद न प्राप्त होगा व क्रमसे निर्वाणको पावेगा।

समयसारमें कहा है–

वदणियमाणिधरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी॥ १६०॥

भावार्थ–व्रत व नियमोंको पालते हुए तथा शील और तपको करते हुए भी जो परमार्थ जो तत्वसाक्षात्कार है उससे रहित है वह आत्मज्ञान रहित अज्ञानी ही है। पंचास्तिकायमें कहा है—

जस्स हिदयेणुमत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो।
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरोवि॥ १६७॥
तह्मा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि॥ १६९॥

भावार्थ–जिसके मनमें परमाणु मात्र भी राग निर्वाण स्वरूप आत्माको छोड़कर परद्रव्यमें है वह सर्व आगमको जानता हुआ भी अपने शुद्ध स्वरूपको नहीं जानता है। इसलिये सर्व प्रकारकी इच्छाओंसे विरक्त होकर, ममता रहित होकर, तथा परिग्रह रहित होकर किसी परको न ग्रहण करके जो सिद्ध स्वभाव स्वरूपमें भक्ति करता है, मैं निर्वाण स्वरूप हूं ऐसा ध्याता है, वही निर्वाणको पाता है।

मोक्षपाहुडमें कहा है—

सव्वे कसाय मुत्तं गारवमयरायदोसव मोहं।
लोयववहारविरदो अप्पा झाएइ झाणत्थो॥ २७॥

भावार्थ–मोक्षका अर्थी सर्व क्रोधादि कषायोंको छोड़कर,

अहंकार, मद, राग; द्वेष, मोह, व लौकिक व्यवहारसे विरक्त होकर ध्यानमें लीन होकर अपने ही आत्माको ध्याता है ।

शिवकोटि भगवती आराधनामें कहते हैं–

जह जह णिव्वेदुवसम-, वेरग्गदयादमा पवड्ढंति ।
तह तह अब्भासयरं, णिव्वाणं होइ पुरिसस्स ॥ १८६२ ॥
वयरं रदणेसु जहा, गोसीसं चंदणं व गंधेसु ।
वेरुलियं व मणीणं, तह झाणं होइ खवयस्स ॥ १८९४ ॥

भावार्थ–जैसे जैसे साधुमें धर्मानुराग, शांति, वैराग्य, दया, व संयम बढ़ते जाते हैं वैसे निर्वाण अति निकट आता जाता है । जैसे रत्नोंमें हीरा प्रधान है, सुगन्ध द्रव्योंमें गोसीर चंदन प्रधान है, मणियोंमें वैडूर्यमणि प्रधान है तैसे साधुके सर्व व्रत व तपोंमें ध्यान समाधि प्रधान है ।

आत्मानुशासनमें कहा है–

यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकम्पी ।
विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ॥ २२५ ॥

भावार्थ–जो साधु यम नियममें तत्पर हैं, जिनका अंतरङ्ग बहिरंग शांत है, जो समाधि भावको प्राप्त हुए हैं, जो सर्व प्राणीमात्र पर दयावान हैं, शास्त्रोक्त हितकारी मात्रासे आहारके करनेवाले हैं, निंद्राको जीतनेवाले हैं, आत्माके स्वभावका सार जिन्होंने पाया है, वे ही ध्यानके बलसे सर्व दुःखोंके जाल संसारको जला देते हैं ।

समधिगतसमस्ताः सर्वसावद्यदूराः
स्वहितनिहितचित्ताः शान्तसर्वप्रचाराः ।
स्वपरसफलजल्पाः सर्वसंकल्पमुक्ताः
कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः ॥ २२६ ॥

भावार्थ—जिन्होंने सर्व शास्त्रोंका रहस्य जाना है, जो सर्व पापोंसे दूर हैं, जिन्होंने आत्म कल्याणमें अपना मन लगाया है, जिन्होंने सर्व इन्द्रियोंकी इच्छाओंको शमन कर दिया है, जिनकी वाणी स्वपर कल्याणकारिणी है, जो सर्व संकल्पोंसे रहित हैं, ऐसे विरक्त साधु निर्वाणके पात्र क्यों न होंगे ? अवश्य होंगे ।

ज्ञानार्णवमें कहा है—

आशाः सद्यो विपद्यन्ते यान्त्यविद्याः क्षयं क्षणात् ।
म्रियते चित्तभोगीन्द्रो यस्य सा साम्यभावना ॥ ११–२४ ॥

भावार्थ—जिसके समभावकी शुद्ध भावना है, उसकी आशाएं शीघ्र नाश होजाती हैं, अविद्या क्षणभरमें चली जाती है, मनरूपी नाग भी मर जाता है ।

(२२) मज्झिमनिकाय महागोसिंग सूत्र ।

एकसमय गौतम बुद्ध गोसिंग सालवनमें बहुतसे प्रसिद्ध २ शिष्योंके साथ विहार करते थे । जैसे सारिपुत्र, महामौद्गलायन महाकाश्यप, अनुरुद्ध, रेवत, आनन्द आदि ।

महामौद्गलायनकी प्रेरणासे सायंकालको ध्यानसे उठकर प्रसिद्ध भिक्षु सारिपुत्रके पास धर्मचर्चाके लिये आए ।

तब सारिपुत्रने कहा—आवुस आनन्द रमणीय है। गोसिंग सालवन चांदनी रात है। सारी पात्तियोंमें साक फूले हुए हैं। मानो दिव्य गंध बह रही है। आवुस आनन्द! किस प्रकारके भिक्षुसे यह गोसिंग सालवन शोभित होगा?

(१) आनन्द कहते हैं—जो भिक्षु बहुश्रुत, श्रुतधर, श्रुतसंयमी हो, जो धर्म आदि मध्य अन्तमें कल्याण करनेवाले, सार्थक, सव्यंजन, केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यको बखाननेवाले हैं। वैसे धर्मोंको उसने बहुत सुना हो, धारण किया हो, वचनसे परिचय किया हो, मनसे परखा हो, दृष्टि (साक्षात्कार) में धंसा लिया हो, ऐसा भिक्षु चार प्रकारकी परिषदको सर्वांगपूर्ण, पद व्यंजन युक्त स्वतंत्रता पूर्वक धर्मको अनुशयों (चित्रमलों) के नाशके लिये उपदेशे। इस प्रकारके भिक्षु द्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा।

तब सारिपुत्रने रेवतसे पूछा—यह वन कैसे शोभित होगा?

(२) रेवत कहते हैं—भिक्षु यदि ध्यानरत, ध्यानप्रेमी होवे, अपने भीतर चित्तकी एकाग्रतामें तत्पर और ध्यानसे न हटनेवाला, विपश्यना (साक्षात्कारके लिये ज्ञान) से युक्त, शून्य गृहोंको बढ़ानेवाला होवे इस प्रकारके भिक्षु द्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा।

तब सारिपुत्रने अनुरुद्धसे यही प्रश्न किया।

(३) अनुरुद्ध कहते हैं—जो भिक्षु अमानव (मनुष्यसे अगोचर) दिव्यचक्षुसे सहस्रों लोकोंको अवलोकन करे। जैसे आंखवाला पुरुष महलके ऊपर खड़ा सहस्रों चक्रोंके समुदायको देखे, ऐसे भिक्षुसे यह वन शोभित होगा।

तब सारिपुत्रने महाकाश्यपसे यही प्रश्न पूछा ।

(४) महाकाश्यप कहते हैं—भिक्षु स्वयं आरण्यक (वनमें रहनेवाला) हो, और आरण्यताका प्रशंसक हो, स्वयं पिंडपातिक (मधुकरी वृत्तिवाला) हो और पिंडपातिकताका प्रशंसक हो, स्वयं पांसुकूलिक (फेंके चिथड़ोंको पहननेवाला) हो, स्वयं त्रैचीवरिक (सिर्फ तीन वस्त्रोंको पासमें रखनेवाला) हो, स्वयं अल्पेच्छ हो, स्वयं संतुष्ट हो, प्रविविक्त (एकान्त चिंतनरत) हो, संसर्ग रहित हो, उद्योगी हो, सदाचारी हो, समाधियुक्त हो, प्रज्ञायुक्त हो, वियुक्तियुक्त हो, वियुक्तिके ज्ञान दर्शनसे युक्त हो व ऐसा ही उपदेश देनेवाला हो, ऐसे भिक्षुसे यह वन शोभित होगा ।

तब सारिपुत्रने महामोद्गलायनसे यही प्रश्न किया ।

(५) महामोद्गलायन कहते हैं- दो भिक्षु धर्म सम्बन्धी कथा करें । वह एक दूसरेसे प्रश्न पूछे, एक दूसरेको प्रश्नका उत्तर दें, जिद न करें, उनकी कथा धर्म संबंधी चले । इस प्रकारके भिक्षुसे यह वन शोभित होगा ।

तब महामोद्गालयनने सारिपुत्रसे यही प्रश्न किया ।

(६) सारिपुत्र कहते हैं—एक भिक्षु चित्तको वशमें करता है, स्वयं चित्तके वशमें नहीं होता। वह जिस विहार (ध्यान प्रकार) को प्राप्तकर पूर्वाह्न समय विहरना चाहता है । उसी विहारसे पूर्वाह्न समय विहरता है । जिस विहारको प्राप्तकर मध्याह्न समय विहरना चाहता है उसी विहारसे विहरता है, जैसे किसी राजाके पास नाना रङ्गके दुशालोंके करण्डक (पिटारे) भरे हों, वह जिस दुशालेको

पूर्वाह्न समय, जिसे मध्याह्न समय, जिसे संध्या समय धारण करना चाहे उसे धारण करे। इस प्रकार भिक्षुसे यह वन शोभता है।

तब सारिपुत्रने कहा—हम सब भगवानके पास जाकर ये बातें कहें। जैसे वे हमें बतलाएं वैसे हम धारण करें। तब वे भगवान बुद्धके पास गए और सबका कथन सुनाया। तब सारिपुत्रने भगवानसे कहा- किसका कथन सुभाषित है।

(७) गौतम बुद्ध कहते हैं—तुम सभीका भाषित एक एक करके सुभाषित है और मेरा भी सुनो। जो भिक्षु भोजनके बाद भिक्षासे निबटकर, आसन मार शरीरको सीधा रख, स्मृतिको सामने उपस्थित कर संकल्प करता है। मैं तबतक इस आसनको नहीं छोड़ूंगा जबतक कि मेरे चित्तमल चित्तको न छोड़ देंगे। ऐसे भिक्षुसे गोसिंग वन शोभित होगा।

नोट-यह सूत्र साधुको शिक्षाप्रद बहुत उपयोगी है। साधुको एकांतमें ही ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। परम सन्तोषी होना चाहिये। संसर्ग रहित व इच्छा रहित होना चाहिये, ये सब बातें जैन सिद्धान्तानुसार एक साधुके लिये माननीय हैं। जो निर्ग्रन्थ सर्व परिग्रह त्यागी साधु जैनोंमें होते हैं वे वस्त्र भी नहीं रखते हैं, एक मुक्त होते हैं। जैसे यहां निर्जन स्थानमें तीन काल ध्यान करना कहा है वैसे ही जैन साधुको भी पूर्वाह्न मध्याह्न व सन्ध्याको ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। ध्यानके अनेक भेद हैं। जिस ध्यानमें जब चित्त एकाग्र हो उसी प्रकारके ध्यानका तप ध्यावे। अर्थात् आत्माके ज्ञानदर्शन स्वभावका साक्षात्कार करे। साधुको बहुत

शास्त्रोंका मरमी होना चाहिये, यही यथार्थ उपदेश होसकता है। उपदेशका हेतु यही हो कि राग, द्वेष, मोह दूर हों व आत्माको ध्यानकी सिद्धि हो। परस्पर साधुओंको शांति बढ़ानेके लिये धर्म चर्चा भी करनी चाहिये।

जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य—

प्रवचनसारमें कहा है—

जो णिहदमोहदिट्ठी आगमकुसलो विरागचरियम्हि।
अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मोत्ति विसेसिदो समणो॥ ९२-१॥

भावार्थ-जो मिथ्यादृष्टिको नाश कर चुका है, आगममें कुशल है, वीतराग चारित्रमें सावधान है, वही महात्मा साधु धर्मरूप कहा गया है।

बोधपाहुडमें कहा है—

उवसमखमदमजुत्ता सरीरसंक्कारवज्जिया रुक्खा।
मयरायदोसरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया॥ ५२॥
पसुमहिलसंढसंगं कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।
सज्झायझाणजुत्ता पव्वज्जा एरिसा भणिया॥ ५७॥

भावार्थ-जो शांत भाव, क्षमा, इन्द्रिय निग्रहसे युक्त हैं, शरीरके शृंगारसे रहित हैं, उदासीन हैं, मद, राग व द्वेषसे रहित हैं उन्हींके साधुकी दीक्षा कही गई है। जो महात्मा पशु, स्त्री, नपुंसककी संगति नहीं रखते हैं, व्यभिचारी व असदाचारी पुरुषोंकी संगति नहीं करते हैं, खोटी रागद्वेषवर्द्धक कथाएं नहीं करते हैं, स्वाध्याय तथा ध्यानमें विचरते हैं उन्हींके साधुकी दीक्षा कही गई है।

समाधिशतकमें कहा है—

मुक्तिरैकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृतिः॥ ७१॥

भावार्थ-जिसके मनमें निष्कम्प आत्मामें थिरता है उसको अवश्य निर्वाणका लाभ होता है, जिसके चित्तमें ऐसा निश्चल धैर्य नहीं है उसको निर्वाण प्राप्त नहीं होसकता है।

ज्ञानार्णवमें कहा हैः—

निःशेषक्लेशनिर्मुक्तममूर्त्तं परमाक्षरम्।
निष्प्रपंचं व्यतीताक्षं पश्य स्वं स्वात्मनि स्थितं॥ ३४॥

भावार्थ-हे आत्मन्! तू अपने ही आत्मामें स्थित, सर्व क्लेशोंसे रहित, अमूर्तीक, परम अविनाशी, निर्विकल्प और अतींद्रिय अपने ही स्वरूपका अनुभव कर।

रागादिपङ्कविश्लेषात्प्रसन्ने चित्तवारिणि।
परिस्फुरति निःशेषं मुनेर्वस्तुकदम्बकम्॥ १७-२२॥

भावार्थ-रागादि कर्दमके अभावसे जब चित्तरूपी जल शुद्ध होजाता है तब मुनिके सर्व वस्तुओंका स्वरूप स्पष्ट भासता है।

तत्वज्ञान तरंगिणीमें कहा है—

व्रतानि शास्त्राणि तपांसि निर्जने निवासमंतर्बहिःसंगमोचनं।
मौनं क्षमातापनयोगधारणं चिच्चिंतयामा कलयन् शिवं श्रयेत॥ ११-१४॥

भावार्थ-जो कोई शुद्ध चैतन्य स्वरूपके मननके साथ साथ व्रतोंको पालता है, शास्त्रोंको पढ़ता है। तप करता है, निर्जनस्थानमें रहता है, बाहरी भीतरी परिग्रहका त्याग करता है, मौन धारता है, क्षमा पालता है व आतापन योग धारता है वही मोक्षको पाता है।

(२३) मज्झिमनिकाय महागोपालक सूत्र ।

गौतमबुद्ध कहते हैं—भिक्षुओ ! ग्यारह बातों (अंगों) से युक्त गोपालक गोयूथकी रक्षा करनेके अयोग्य हैं-(१) रूप (वर्ण) का जाननेवाला नहीं होता, (२) लक्षणमें भी चतुर नहीं होता, (३) काली मक्खियोंको हटानेवाला नहीं होता, (४) घावका ढाकनेवाला नहीं होता, (५) धुआं नहीं करता, (६) तीर्थ (जलका उतार) नहीं जानता, (७) पानको नहीं जानता, (८) वीथी (डगर) को नहीं जानता, (९) चरागाहका जानकार नहीं होता, (१०) बिना छोड़े (सारे) को दुह लेता है, (११) गायोंके पितर, गायोंके स्वामी वृषभ (सांड) हैं, उनकी अधिक पूजा (भोजनादि प्रदान) नहीं करता।

ऐसे ही ग्यारह बातोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म विनयमें वृद्धि विरूढ़ि विपुलता पानेके अयोग्य है। भिक्षु-(१) रूपको जाननेवाला नहीं होता। जो कोई रूप है वह सब चार महाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, तेज) और चार भूतोंको लेकर बना है उसे यथार्थसे नहीं जानता।

(२) लक्षणमें चतुर नहीं होता—भिक्षु यह यथार्थसे नहीं जानता कि कर्मके कारण (लक्षण) से बाल (अज्ञ) होता है और कर्मके लक्षणसे पण्डित होता है।

(३) भिक्षु आसाटिक (काली मक्खियों) का हटानेवाला नहीं होता है—भिक्षु उत्पन्न काम (भोग वासना) के वितर्कका स्वागत करता है, छोडता नहीं, हटाता नहीं, अलग नहीं करता, अभावको प्राप्त नहीं करता, इसी तरह उत्पन्न व्यापाद (परपीड़ा) के

वितर्कका, उत्पन्न हिंसाके वितर्कका, तथा अन्य उत्पन्न होते अकुशल धर्मोंका स्वागत करता है, छोड़ता नहीं।

(४) भिक्षु व्रण (घाव) का ढाकनेवाला नहीं होता है— भिक्षु आंखसे रूपको देखकर उसके निमित्त (अनुकूल प्रतिकूल होने) का ग्रहण करनेवाला होता है। अनुव्यंजन (पहचान) का ग्रहण करनेवाला होता है। जिस विषयमें इस चक्षु इन्द्रियको संवर न रखनेपर लोभ और दौर्मनस्य आदि बुराइयां अकुशल धर्म आ चिपटते हैं उसमें संयम करनेके लिये तत्पर नहीं होता। चक्षुइन्द्रियकी रक्षा नहीं करता, चक्षुइन्द्रियके संवरमें लग्न नहीं होता। इसी तरह श्रोत्रसे शब्द सुनकर, घ्राणसे गंध सूंघकर, जिह्वासे रस चखकर, कायासे स्पृश्यको स्पर्शकर, मनसे धर्मको जानकर निमित्तका ग्रहण करनेवाला होता है। इनके संयममें लग्न नहीं होता।

(५) भिक्षु धुआं नहीं करता—भिक्षु सुने अनुसार, जाने अनुसार, धर्मको दूसरोंके लिये विस्तारसे उपदेश करनेवाला नहीं होता।

(६) भिक्षु तीर्थको नहीं जानता—जो वह भिक्षु बहुश्रुत, आगम प्राप्त, धर्मधर, विनयधर, मात्रिका धर है उन भिक्षुओंके पास समय समयपर जाकर नहीं पूछता, नहीं प्रश्न करता कि यह कैसे है, इसका क्या अर्थ है, इसलिये वह भिक्षु अविवृतको विवृत नहीं करता, खोलकर नहीं बतलाता, अस्पष्टको स्पष्ट नहीं करता, अनेक प्रकारके शंका-स्थानवाले धर्मोंमें उठी शंकाका निवारण नहीं करता।

(७) भिक्षु पानको नहीं जानता—भिक्षु तथागतके बतलाये धर्म विनयके उपदेश किये जाते समय उसके अर्थवेद (अर्थ ज्ञान) को नहीं पाता।

(८) भिक्षु तीर्थको नहीं जानता-भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग (सम्यग्दर्शन, सम्यक्समाधि) को ठीक ठीक नहीं जानता।

(९) भिक्षु गोचरमें कुशल नहीं होता-भिक्षु चार स्मृति प्रस्थानोंको ठीक ठीक नहीं जानता (देखो अध्याय-८ कायस्मृति, वेदनास्मृति, चित्तस्मृति. धर्मस्मृति)।

(१०) भिक्षु विना छोड़े अशेषका दूहनेवाला होता है-भिक्षुओंको श्रद्धालु गृहपति भिक्षान्न, निवास, आसन, पथ्य और-धिकी सामग्रियोंसे अच्छी तरह सन्तुष्ट करते हैं, वहां भिक्षु मात्रासे (मर्यादारूप) ग्रहण करना नहीं जानता।

(११) भिक्षु चिरकालसे प्रव्रजित संघके नायक जो स्थविर भिक्षु हैं उन्हें अतिरिक्त पूजासे पूजित नहीं करता-भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके लिये गुप्त और प्रगट मैत्रीयुक्त कायिक कर्म, वाचिक कर्म और मानस कर्म नहीं करता।

इस तरह इन ग्यारह धर्मोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म विनयमें वृद्धि-विरूढ़िको प्राप्त करनेमें अयोग्य है।

भिक्षुओ, ऊपर लिखित ग्यारह बातोंसे विरोधरूप ग्यारह धर्मोंसे युक्त गोपालक गोयूथकी रक्षा करनेके योग्य होता है। इसी प्रकार ऊपर कथित ग्यारह धर्मोंसे विरुद्ध ग्यारह धर्मोंसे युक्त भिक्षु वृद्धि-विरूढ़ि, विपुलता प्राप्त करनेके योग्य है। अर्थात् भिक्षु-(१) रूपका यथार्थ जाननेवाला होता है, (२) बाल और पण्डितके कर्म लक्षणोंको जानता है, (३) काम, व्यापाद, हिंसा, लोभ, दौर्मनस्य आदि अनुकल धर्मोंका स्वागत नहीं करता है, (४) पांचों इन्द्रिय व

छठे मनसे जानकर निमित्तग्राही नहीं होता- वैराग्यवान रहता है, (५) जाने हुए धर्मको दूसरोंके लिये विस्तारसे उपदेश करता है, (६) बहुत श्रुत भिक्षुओंके पास समय समय पर प्रश्न पूछता है, (७) तथागतके बतलाए धर्म और विनयके उपदेश किये जाते समय अर्थ ज्ञानको पाता है, (८) आर्य-अष्टांगिक मार्गको ठीक २ जानता है, (९) चारों स्मृति प्रस्थानोंको ठीक ठीक जानता है, (१०) भोजनादि ग्रहण करनेमें मात्राको जानता है, (११) स्थविर भिक्षुओंके लिये गुप्त और प्रकट मैत्रीयुक्त कायिक, वाचिक, मानस कर्म करता है।

नोट-इस सूत्रमें मूर्ख और चतुर ग्वालेका दृष्टान्त देकर अज्ञानी साधु और ज्ञानी साधुकी शक्तिका उपयोगी वर्णन किया है। वास्तवमें जो साधु इन ग्यारह सुधर्मोसे युक्त होता है वही निर्वाणमार्गकी तरफ बढ़ता हुआ उन्नति कर सक्ता है, उसे (१) सर्व पौद्गलिक रचनाका ज्ञाता होकर मोह त्यागना चाहिये। (२) पंडितके लक्षणोंको जानकर स्वयं पंडित रहना चाहिये। (३) क्रोधादि कषायोंका त्यागी होना चाहिये। (४) पांच इन्द्रिय व मनका संयमी होना चाहिये। (५) परोपकारादि धर्मका उपदेश होना चाहिये। (६) विनय सहित बहुज्ञातासे शंका निवारण करते रहना चाहिये। (७) धर्मोपदेशके सारको समझना चाहिये। (८) मोक्षमार्गका ज्ञाता होना चाहिये। (९) धर्मरक्षक भावनाओंको स्मरण करना चाहिये। (१०) संतोषपूर्वक अल्पाहारी होना चाहिये। (११) बड़ोंकी सेवा मैत्रीयुक्त भावसे मन वचन कायसे करनी चाहिये। जैन सिद्धान्तानुसार भी ये सब गुण साधुमें होने चाहिये।

जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य—

सारसमुच्चयमें कहा है—

ज्ञानध्यानोपवासैश्च परीषहजयैस्तथा ।
शीलसंयमयोगैश्च स्वात्मानं भावयेत् सदा ॥ ८ ॥

भावार्थ—साधुको योग्य है कि शास्त्रज्ञान, आत्मध्यान, तथा उपवासादि तप करते हुए, तथा क्षुधा तृषा, दुर्वचन, आदि परीषहोंको जीतते हुए, शील संयम तथा योगाभ्यासके साथ अपने शुद्धात्माकी या निर्वाणकी भावना करे ।

गुरुशुश्रूषया जन्म चित्तं सद्ध्याननचिन्तया ।
श्रुतं यस्य समे याति विनियोगं स पुण्यभाक् ॥ १९ ॥

भावार्थ-जिसका जन्म गुरुकी सेवा करनेमें, मन यथार्थ ध्यानके साधनमें, शास्त्रज्ञान समताभावके धारणमें काम आता है वही पुण्यात्मा है ।

कषायान् शत्रुवत् पश्येद्विषयान् विषवत्तथा ।
मोहं च परमं व्याधिमेवमूचुर्विचक्षणः ॥ ३९ ॥

भावार्थ—कामक्रोधादि कषायोंको शत्रुके समान देखे, इन्द्रियोंके विषयोंको विषके बराबर जाने, मोहको बड़ा भारी रोग जाने, ऐसा ज्ञानी आचार्योंने उपदेश दिया है ।

धर्मामृतं सदा पेयं दुःखतंकविनाशनम् ।
यस्मिन् पीते परं सौख्यं जीवानां जायते सदा ॥ ६२ ॥

भावार्थ—दुःखरूपी रोगोंको नाश करनेवाले धर्मामृतका सदा पान करना चाहिये । अर्थात् धर्मके स्वरूपको भक्तिसे जानना, सुनना व मनन करना चाहिये, जिस धर्मामृतके पीनेसे जीवोंको परम सुख सदा ही रहता है ।

निःसंगिनोऽपि वृत्ताढ्या निःस्नेहाः सुश्रुतिप्रियाः।
अभूषाऽपि तपोभूषास्ते पात्रं योगिनः सदा ॥ २०१ ॥

भावार्थ-जो परिग्रह रहित होने पर भी चारित्रके धारी हैं, जगतके पदार्थोंमें स्नेहरहित होने पर भी सत्य आगमके प्रेमी हैं, भूषण रहित होने पर भी तप ध्यानादि आभूषणोंके धारी हैं ऐसे ही योगी सदा धर्मके पात्र हैं।

मोक्षपाहुड़में कहा है—

उद्धद्धमज्झलोये केई मज्झं ण अहयमेगागी।
इयभावणाए जोई पावंति हु सासयं ठाणं ॥ ८१ ॥

भावार्थ-इस ऊर्ध्व, अधो, मध्य लोकमें कोई पदार्थ मेरा नहीं है, मैं एकाकी हूं, इस भावनासे युक्त योगी ही शाश्वत पद निर्वाणको पाता है।

भगवती आराधनामें कहा है—

सव्वग्गंथविमुक्को सीदीभूदो पसण्णचित्तो य।
जं पावइ पीइसुहं ण चक्कवट्टी वि तं लहदि ॥ ११८२ ॥

भावार्थ-जो साधु सर्व परिग्रह रहित है, शांत चित्त है व प्रसन्नचित्त है उसको जो प्रीति और सुख होता है उसको चक्रवर्ती भी नहीं पासक्ता है।

आत्मानुशासनमें कहा है—

विषयविरतिः संगत्यागः कषायविनिग्रहः।
शमयमदमास्तत्त्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यमः ॥
नियमितमनोवृत्तिर्भक्तिर्जिनेषु दयालुता।
भवति कृतिनः संसाराब्धेस्तटे निकटे सति ॥ २२४ ॥

भावार्थ—जिनके संसार सागरके पार होनेका तट निकट आगया है उनको इतनी बातोंकी प्राप्ति होती है, (१) इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त भाव, (२) परिग्रहका त्याग, (३) क्रोधादि कषायों पर विजय, (४) शांत भाव, (५) इन्द्रियोंका निरोध, (६) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व परिग्रह त्याग महाव्रत, (७) तत्वोंका अभ्यास, (८) तपका उद्यम, (९) मनकी वृत्तिका निरोध, (१०) श्री जिनेन्द्र अर्हंतमें भक्ति, (११) प्राणियोंपर दया । ज्ञानार्णवमें कहा है—

शीतांशुरश्मिसंपर्काद्विसर्पति यथाम्बुधिः ।
तथा सद्वृत्तसंसर्गान्नृणां प्रज्ञापयोनिधिः ॥ १७–१९ ॥

भावार्थ—जैसे चंद्रमाकी किरणोंकी संगतिसे समुद्र बढ़ता है, वैसे सम्यक्चारित्रके धारी साधुओंकी संगतिसे प्रज्ञा (भेद विज्ञान) रूपी समुद्र बढ़ता है ।

निखिलभुवनतत्त्वोद्भासनैकप्रदीपं
निरुपधिमधिरूढं निर्भरानन्दकाष्ठाम् ।
परममुनिमनीषोद्भेदपर्यन्तभूतं
परिकलय विशुद्धं स्वात्मनात्मानमेव ॥ १०३–३२ ॥

भावार्थ–तू अपने ही आत्माके द्वारा सर्व जगतके तत्वोंको दिखानेके लिये अनुपम दीपकके समान, उपाधिरहित, महान, परमानन्द पूर्ण, परम मुनियोंके भीतर भेद विज्ञान द्वारा प्रगट ऐसे आत्माका अनुभव कर ।

स कोऽपि परमानन्दो वीतरागस्य जायते ।
येन लोकत्रयैश्वर्यमप्यचिन्त्यं तृणायते ॥ १८–२३ ॥

भावार्थ-वीतरागी साधुके भीतर ऐसा कोई अपूर्व परमानंद पैदा होता है, जिसके सामने तीन लोकका अचिन्त्य ऐश्वर्य भी तृणके समान है।

(२४) मज्झिमनिकाय चूलगोपालक सूत्र।

गौतम बुद्ध कहते हैं-भिक्षुओ! पूर्वकालमें मगध निवासी एक मूर्ख गोपालकने वर्षाके अंतिम मासमें शरदकालमें गंगानदीके इस पारको बिना सोचे, उस पारको बिना सोचे वे घाट ही विदेहकी ओर दूसरे तीरको गायें हांक दीं, वे गाएं गंगानदीके स्रोतके भंवरमें पड़ कर वहीं विनाशको प्राप्त हो गईं। सो इसी लिये कि वह गोपालक मूर्ख था। इसी प्रकार जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इस लोक व परलोकसे अनभिज्ञ हैं, मारके लक्ष्य अलक्ष्यसे अनभिज्ञ हैं, मृत्युके लक्ष्य अलक्ष्यसे अनभिज्ञ हैं, उनके उपदेशोंको जो सुनने योग्य, श्रद्धा करनेयोग्य समझेंगे उनके लिये यह चिरकाल तक अहितकर दुःखकर होगा।

भिक्षुओ! पूर्वकालमें एक मगधवासी बुद्धिमान ग्वालेने वर्षाके अंतिम मासमें शरदकालमें गंगानदीके इस पार व उस पारको सोचकर घाटसे उत्तर तीरपर विदेहकी ओर गाएं हांकीं। उसने जो वे गायोंके पितर, गायोंके नायक वृषभ थे, उन्हें पहले हांका। वे गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक दूसरे पार चले गए। तब उसने दूसरी शिक्षित बलवान गायोंको हांका, फिर बछड़े और बछियोंको हांका, फिर दुर्बल बछड़ोंको हांका, वे सब स्वस्ति पूर्वक दूसरे पार चले गए। उस समय तरुण कुछ ही दिनोंका

पैदा एक बछड़ा भी माताकी गर्दनके सहारे तैरते गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक पार चला गया। सो क्यों? इसी लिये कि बुद्धिमान् ग्वालेने हांकी। ऐसे ही भिक्षुओं! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इस लोक परलोकके जानकार, मारके लक्ष्य अलक्ष्यके जानकार व मृत्युके लक्ष्य अलक्ष्यके जानकार हैं उनके उपदेशोंको जो सुनने योग्य श्रद्धा करने योग्य समझेंगे उनके लिये यह चिरकालतक हितकर-सुखकर होगा।

(१) जैसे गायोंके नायक वृषभ स्वस्तिपूर्वक पार चले गए, ऐसे ही जो ये अर्हत्, क्षीणास्रव, ब्रह्मचर्यवास समाप्त, कृतकृत्य, आत्ममुक्त, सत्य पदार्थको प्राप्त, भव बंधन रहित, सम्यग्ज्ञानद्वारा युक्त हैं वे मारकी धाराको तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक पार जांयगे।

(२) जैसे शिक्षित बलवान गाएं पार होगईं, ऐसे ही जो भिक्षु पांच अवरभागीय संयोजनों (सत्काय दृष्टि) (आत्मवादकी मिथ्या दृष्टि), विचिकित्सा (संशय), शीलव्रत परामर्श (व्रताचरणका अनुचित अभिमान), कामच्छन्द (भोगोंमें राग), व्यापाद (पीड़ाकारी वृत्ति) के क्षयसे औपपातिक (अयोनिज देव) हो उस देवसे लौटकर न आ वहीं निर्वाणको प्राप्त करनेवाले हैं वे भी पार होजांयगे।

(३) जैसे बछडे बछडियां पार होगईं, वैसे जो भिक्षु तीन संयोजनोंके नाशसे-राग द्वेष, मोहके निर्बल होनेसे सकृदागामी हैं, एक बार ही इस लोकमें आकर दुःखका अंत करेंगे वे भी निर्वाणको प्राप्त करनेवाले हैं।

(४ जैसे एक निर्बल बछड़ा पार चला गया वैसे ही जो भिक्षु तीन संयोजनोंके क्षयसे स्रोतापन्न हैं, नियमपूर्वक संबोधि (परम ज्ञान) परायण (निर्वाणगामी पथसे) न भृष्ट होनेवाले हैं, वे भी पार होंगे ।

इस मेरे उपदेशको जो सुनने योग्य श्रद्धाके योग्य मानेंगे उनके लिये वह चिरकाल तक हितकर सुखकर होगा । तथा कहाः—

जानकारने इस लोक परलोकको प्रकाशित किया ।
जो मारकी पहुंचमें हैं और जो मृत्युकी पहुंचमें नहीं हैं ।
जानकार संबुद्धने सब लोकको जानकर ।
निर्वाणकी प्राप्तिके लिये क्षेम (युक्त) अमृत द्वार खोल दिया ।
पापी (मार) के स्रोतको छिन्न, विध्वस्त, विशृंखलित कर दिया ।
भिक्षुओं ! प्रमोदयुक्त होवो—क्षेमकी चाह करो ।

नोट—इस ऊपरके कथनसे यह दिखलाया है कि उपदेशदाता बहुत कुशल मोक्षमार्गका ज्ञाता व संसारमार्गका ज्ञाता होना चाहिये तब इसके उपदेशसे श्रोतागण सच्चा मोक्षमार्ग पाएंगे । जो स्वयं अज्ञानी है वह आप भी डूबेगा व दूसरेको भी डुबाएगा । निर्वाणको संसारके पार एक क्षेमयुक्त स्थान कहा है इसलिये निर्वाण अभाव-रूप नहीं होसक्ती क्योंकि कहा है—जो क्षीणास्रव होजाते हैं वे सत्य पदार्थको प्राप्त करते हैं । यह सत्य पदार्थ निर्वाणरूप कोई वस्तु है जो शुद्धात्माके सिवाय और कुछ नहीं होसक्ती । तथा ऐसेको सम्यग्ज्ञानसे मुक्त कहा है । यह सम्यग्ज्ञान सच्चा ज्ञान है जो उस विज्ञानसे भिन्न है जो रूपके द्वारा वेदना, संज्ञा, संस्कारसे पैदा

होता है । इसीको जैन सिद्धांतमें केवलज्ञान कहा है । क्षीणास्रव साधु सयोगकेवली जिन होजाता है वह सर्वज्ञ वीतराग कृतकृत्य अर्हत् होजाता है वही शरीरके अंतमें सिद्ध परमात्मा निर्वाणरूप होजाता है ।

अंतमें कहा है कि निर्वाणकी प्राप्तिके लिये अमृत द्वार खोल दिया जिसका मतलब यही है कि अमृतमई आनन्दको देनेवाला स्वानुभव रूप मार्ग खोल दिया यही निर्वाणका साधन है वहां निर्वाणमें भी परमानंद है । वह अमृत अमर रहता है । यह सब कथन जैनसिद्धांतमें मिलता है । जैनसिद्धांतके कुछ वाक्य—

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है:—

मुख्योपचारविवरणनिरस्तदुस्तरविनेयदुर्बोधाः ।
व्यवहारनिश्चयज्ञाः प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम् ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो उपदेश दाता व्यवहार और निश्चय मार्गको जाननेवाले हैं वे कभी निश्चयको, कभी व्यवहारको मुख्य कहकर शिष्योंका कठिनसे कठिन अज्ञानको मेट देते हैं वे ही जगतमें धर्मतीर्थका प्रचार करते हैं । स्वानुभव निश्चय मोक्षमार्ग है, उसकी प्राप्तिके लिये बाहरी व्रताचरण आदि व्यवहार मोक्षमार्ग है । व्यवहारके सहारे स्वानुभवका लाभ होता है । जो एक पक्ष पकड़ लेते हैं, उनको गुरु समझा कर ठीक मार्गपर लाते हैं ।

आत्मानुशासनमें कहा है:—

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः ।

प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो बुद्धिमान् हो, सर्व शास्त्रोंका रहस्य जानता हो, प्रश्नोंका उत्तर पहलेहीसे समझता हो, किसी प्रकारकी आशा तृष्णासे रहित हो, प्रभावशाली हो, शांत हो, लोकके व्यवहारको समझता हो, अनेक प्रश्नोंको सुन सक्ता हो, महान हो, परके मनको हरनेवाला हो, गुणोंका सागर हो, साफ साफ मीठे अक्षरोंका कहनेवाला हो ऐसा आचार्य संघनायक परकी निन्दा न करता हुआ धर्मका उपदेश करे।

सारसमुच्चयमें कहा है—

संसारावासनिर्विण्णाः शिवसौख्यसमुत्सुकाः।
सद्भिस्ते गदिताः प्राज्ञाः शेषाः शास्त्रस्य वंचकाः ॥२१२॥

भावार्थ—जो साधु संसारके वाससे उदास हैं। तथा कल्याणमय मोक्षके सुखके लिये सदा उत्साही है वे ही बुद्धिवान् पंडित साधुओंके द्वारा कहे गए हैं। इनको छोड़कर शेष सब अपने पुरुषार्थके ठगनेवाले हैं।

तत्वानुशासनमें कहा है—

तत्रासन्नीभवेन्मुक्तिः किंचिदासाद्य कारणं।
विरक्तः कामभोगेभ्यस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ ४१ ॥
अभ्येत्य सम्यगाचार्यं दीक्षां जैनेश्वरीं श्रितः।
तपःसंयमसम्पन्नः प्रमादरहिताशयः ॥ ४२ ॥
सम्यग्निर्णीतजीवादिध्येयवस्तुव्यवस्थितिः।
आर्तरौद्रपरित्यागाल्लब्धचित्तप्रसत्तिकः ॥ ४३ ॥

मुक्तलोकद्वयापेक्षः सोढाशेषपरीषहः।
अनुष्ठितक्रियायोगो ध्यानयोगे कृतोद्यमः॥ ४४॥
महासत्त्वः परित्यक्तदुर्लेश्याऽशुभभावनः।
इतीदृग्लक्षणो ध्याता धर्मध्यानस्य सम्मतः॥ ४५॥

भावार्थ—धर्मध्यानका ध्याता साधु ऐसे लक्षणोंका रखनेवाला होता है (१) निर्वाण जिसका निकट हो, (२) कुछ कारण पाके काम भोगोंसे विरक्त हो, किसी योग्य आचार्यके पास जाकर सर्व परिग्रहको त्यागकर निर्ग्रंथ जिन दीक्षाको धारण की हो, (३) तप व संयम सहित हो; (४) प्रमाद भाव रहित हो, (५) भले प्रकार ध्यान करनेयोग्य जीवादि तत्वोंको निर्णय कर चुका हो, (६) आर्त-रौद्र खोटे ध्यानके त्यागसे जिसका चित्त प्रसन्न हो, (७) इस लोक परलोककी वांछा रहित हो, (८) सर्व क्षुधादि परीषहोंको सहनेवाला हो, (९) चारित्र व योगाभ्यासका कर्ता हो, (१०) ध्यानका उद्योगी हो, (११) महान् पराक्रमी हो, (१२) अशुभ लेश्या सम्बन्धी अशुभ भावनाका त्यागी हो।

पद्मसिंह मुनि ज्ञानसारमें कहते हैं—

सुण्णज्झाणे णिरओ चइयणिस्सेसकरणवावारो।
परिरुद्धचित्तपसरो पावइ जोई परं ठाणं॥ ३९॥

भावार्थ—जो योगी निर्विकल्प ध्यानमें लीन है, सर्व इन्द्रियोंके व्यापारसे विरक्त है, मनके प्रचारको रोकनेवाला है वही योगी निर्वाणके उत्तम पदको पाता है।

(२५) मज्झिमनिकाय महातृष्णा संक्षय सूत्र।

१-गौतमबुद्ध कहते हैं जिस जिस प्रत्यय (निमित्त) से विज्ञान उत्पन्न होता है वही वही उसकी संज्ञा (नाम) होती है। चक्षुके निमित्त रूपमें विज्ञान उत्पन्न होता है। चक्षुर्विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है। इसी तरह श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, कायके निमित्तसे जो विज्ञान उत्पन्न होता है उसकी श्रोत्र विज्ञान, घ्राण विज्ञान, रस विज्ञान, काय विज्ञान संज्ञा होती है। मनके निमित्त धर्म (उपरोक्त बाहरी पांच इन्द्रियोंसे प्राप्त ज्ञान) में जो विज्ञान उत्पन्न होता है वह मनोविज्ञान नाम पाता है।

जैसे जिस जिस निमित्तको लेकर आग जलती है वही वही उसकी संज्ञा होती है। जैसे काष्ठ-अग्नि, तृण अग्नि, गोमय अग्नि, तुष अग्नि, कूड़ेकी आग, इत्यादि।

२-भिक्षुओ! इन पांच स्कंधोंको (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) (नोट-रूप (matter) है। वेदनादि विज्ञानमें गर्भित हैं, उस विज्ञानको mind कहेंगे। इस तरह रूप और विज्ञानके मेलसे ही सारा संसार है) उत्पन्न हुआ देखते हो? हां! अपने आहारसे उत्पन्न हुआ देखते हो? हां! जो उत्पन्न होनेवाला है वह अपने आहारके (स्थिति आधार) के निरोधसे विरुद्ध होनेवाला होता है? हां। ये पांच स्कंध उत्पन्न हैं। व अपने आहारके निरोधसे विरुद्ध होनेवाले हैं ऐसा संदेह रहित जानना ३-सुदृष्टि (सम्यक्दर्शन) है। हां! क्या तुम ऐसे परिशुद्ध, उज्ज्वल दृष्ट (दर्शन ज्ञान) में भी आसक्त होगे रमोगे- यह मेरा धन है

१५

४—देवा सञ्झोगे। भिक्षुओ! मेरे उपदेशे धर्मको कुल्ल (नदी पार होनेके बेड़े) के समान पार होनेके लिये है। पकड़कर रखनेके लिये नहीं है। हां! पकड़ कर रखनेके लिये नहीं है। भिक्षुओ! तुम इस परिशुद्ध दृष्टिमें भी आसक्त न होना। हां, भंते।

५—भिक्षुओ! उत्पन्न प्राणियोंकी स्थितिके लिये आगे उत्पन्न होनेवाले सत्त्वोंके लिये ये चार आहार हैं—(१) स्थूल या सूक्ष्म कवलींकार (ग्रास लेना), (२) स्पर्श—आहार, (३) मनः संचेतना आहार मन-से विषयका खयाल करके तृप्ति लाभ करना, (४) विज्ञान-(चेतना) इन चारों आहारोंका निदान या हेतु या समुदय तृष्णा है।

६—भिक्षुओ! इस तृष्णाका निदान या हेतु वेदना है, वेदनाका हेतु स्पर्श है, स्पर्शका हेतु षड् आयतन (पांच इन्द्रिय व मन) षड् आयतनका हेतु नामरूप है, नामरूपका हेतु विज्ञान है, विज्ञानका हेतु संस्कार है, संस्कारका हेतु अविद्या है। इस तरह मूल अविद्यासे लेकर तृष्णा होती है। तृष्णाके कारण उपादान (ग्रहण करनेकी इच्छा) होता है, उपादानके कारण भव (संसार)। भवके कारण जन्म, जन्मके कारण जरा, मरण, शोक क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य होता है। इस प्रकार केवल दुःख स्कंधकी उत्पत्ति होती है। इस तरह मूल अविद्याके कारणको लेकर दुःख स्कंधकी उत्पत्ति होती है।

७—भिक्षुओ! अविद्याके पूर्णतया विरक्त होनेसे, नष्ट होनेसे, संस्कारका नाश (निरोध) होता है। संस्कारके निरोधसे विज्ञानका

निरोध होता है, विज्ञानके निरोधसे नामरूपका निरोध होता है, नामरूपके निरोधसे षड़ायतनका निरोध होता है, षड़ायतनके निरोधसे स्पर्शका निरोध होता है, स्पर्शके निरोधसे वेदनाका निरोध होता है, वेदनाके निरोधसे तृष्णाका निरोध होता है, तृष्णाके निरोधसे उपादानका निरोध होता है। उपादानके निरोधसे भवका निरोध होता है, भवके निरोधसे जाति (जन्म) का निरोध होता है, जातिके निरोधसे जरा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्यका निरोध होता है। इस प्रकार केवल दुःख स्कंधका निरोध होता है।

भिक्षुओ! इसप्रकार (पूर्वोक्त क्रमसे) जानते देखते हुए क्या तुम पूर्वके छोर (पुराने समय या पुराने जन्म) की ओर दौड़ोगे? 'अहो! क्या हम अतीत कालमें थे? या हम अतीत कालमें नहीं थे? अतीत कालमें हम क्या थे? अतीत कालमें हम कैसे थे? अतीत कालमें क्या होकर हम क्या हुए थे?" नहीं।

८—भिक्षुओ! इस प्रकार जानते देखते हुए क्या तुम बादके ओर (आगे आनेवाले समय) की ओर दौड़ोगे। 'अहो! क्या हम भविष्यकालमें होंगे? क्या हम भविष्यकालमें नहीं होंगे? भविष्यकालमें हम क्या होंगे? भविष्यकालमें हम कैसे होंगे? भविष्यकालमें क्या होकर हम क्या होंगे? नहीं—

भिक्षुओ! इस प्रकार जानते देखते हुए क्या तुम इस वर्तमानकालमें अपने भीतर इस प्रकार कहने सुननेवाले (कथंकथी) होंगे। अहो! 'क्या मैं हूं?' क्या मैं नहीं हूं? मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? यह सत्व (प्राणी) कहांसे आया? वह कहां जानेवाला

होगा ? नहीं ? भिक्षुओ ! इस प्रकार देखते जानते क्या तुम ऐसा कहोगे । शास्ता हमारे गुरु हैं । शास्ताके गौरव (के ख्याल) से हम ऐसा कहते हैं ? नहीं ।

भिक्षुओ ! इस प्रकार देखते जानते क्या तुम ऐसा कहोगे कि श्रमणने हमें ऐसा कहा, श्रमणके कथनसे हम ऐसा कहते हैं ? नहीं।

भिक्षुओ ! इस प्रकार देखते जानते क्या तुम दूसरे शास्ताके अनुगामी होगे ? नहीं ।

भिक्षुओ ! इस प्रकार देखते जानते क्या तुम नाना श्रमण ब्राह्मणोंके जो व्रत, कौतुक, मंगल सम्बन्धी क्रियाएं हैं उन्हें सारके तौरपर ग्रहण करोगे ? नहीं ।

क्या भिक्षुओ ! जो तुम्हारा अपना जाना है, अपना देखा है, अपना अनुभव किया है उसीको तुम कहते हो ? हां भंते ।

साधु ! भिक्षुओ ! मैंने भिक्षुओ, समयान्तरमें नहीं तत्काल फलदायक यहीं दिखाई देनेवाले विज्ञोंद्वारा अपने आपने जानने-योग्य इस धर्मके पास उपनीत किया (पहुंचाया) है ।

भिक्षुओ ! यह धर्म समयान्तरमें नहीं तत्काल फलदायक है, इसका परिणाम यहीं दिखाई देनेवाला है या विज्ञोंद्वारा अपने आपमें जानने योग्य है । यह जो कहा है, वह इसी (उक्त कारण) से ही कहा है ।

९—भिक्षुओ ! तीनके एकत्रित होनेसे गर्भधारण होता है । माता और पिता एकत्र होते हैं । किन्तु माता ऋतुमती नहीं होती और गन्धर्व (उत्पन्न होनेवाला) चेतना प्रवाह देखो अभिधर्म कोश

(३–१२) (पृ० ३५४) उपस्थित नहीं होता तो गर्भ धारण नहीं होता। माता-पिता एकत्र होते हैं। माता ऋतुमती होती है किंतु गन्धर्व उपस्थित नहीं होते तो भी गर्भ धारण नहीं होता। जब माता-पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमती होती है और गन्धर्व उपस्थित होता है। इस प्रकार तीनोंके एकत्रित होनेसे गर्भ धारण होता है। तब उस गरु-भारवाले गर्भको बड़े संशयके साथ माता कोखमें नौ या दस मास धारण करती है। फिर उस गरु-भारवाले गर्भको बड़े संशयके साथ माता नौ या दस मासके बाद जनती है। तब उस जात (संतान) को अपने ही दूधसे पोसती है।

तब भिक्षुओ! वह कुमार बड़ा होनेपर, इन्द्रियोंके परिपक्व होनेपर जो वह बच्चोंके खिलौने हैं। जैसे कि वंकक (वंका), घटिक (घटिया), मोक्खचिक (मुंडका लट्टू), चिंगुलक (चिंगुलिया) पात्र आढक (तराजू), रथक (गाड़ी), धनुक (धनुही), उनसे खेलता है। तब भिक्षुओ! वह कुमार और बड़ा होने पर, इन्द्रियोंके परिपक्व होनेपर, संयुक्त संलिप्त हो पांच प्रकारके काम गुणों (विषय-भोगों) को सेवन करता है। अर्थात् चक्षुसे विज्ञेय इष्ट रूपोंको, श्रोत्रसे इष्ट शब्दोंको, घ्राणसे इष्ट गन्धोंको, जिह्वासे इष्ट रसोंको, कायासे इष्ट स्पर्शोंको सेवन करता है। वह चक्षुसे प्रिय रूपोंको देखकर रागयुक्त होता है, अप्रिय रूपोंको देखकर द्वेषयुक्त होता है। कायिक स्मृति (होश) को कायम रख छोटे चित्तसे विहरता है। वह उस चित्तकी विमुक्ति और प्रज्ञाकी विमुक्तिको ठीकसे ज्ञान नहीं करता, जिससे कि उसकी सारी बुराइयां नष्ट

होजाते हैं । वह इस प्रकार रागद्वेषमें पड़ा सुखमय, दुःखमय या न सुखदुःखमय जिस किसी वेदनाको वेदन करता है उसका वह अभिनन्दन करता है, अवगाहन करता है । इस प्रकार अभिनन्दन करते, अभिवादन करते अवगाहन करते रहते उसे नन्दी (तृष्णा) उत्पन्न होती है । वेदनाओंके विषयमें जो यह नन्दी है वही उसका उपादान है, उसके उपादानके कारण भव होता है, भवके कारण जाति, जातिके कारण जरा मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य होता है । इसी प्रकार श्रोत्रसे, घ्राणसे, जिह्वासे, कायासे तथा मनसे प्रिय धर्मोंको जानकर रागद्वेष करनेसे केवल दुःख स्कंधकी उत्पत्ति होती है ।

(दुःख स्कंधके क्षयका उपाय)

१०–भिक्षुओ ! यहां लोकमें तथागत, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध, विद्या आचरणयुक्त, सुगत, लोक विदु, पुरुषोंके अनुपम चाबुक सवार, देवताओं और मनुष्योंके उपदेष्टा भगवान् बुद्ध उत्पन्न होते हैं वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक सहित इस लोकको, देव, मनुष्य सहित श्रमण ब्राह्मणयुक्त सभी प्रजाको स्वयं समझकर साक्षात्कार कर धर्मको बतलाते हैं । वह आदिमें कल्याणकारी, मध्यमें कल्याणकारी, अन्तमें कल्याणकारी धर्मको अर्थ सहित व्यंजन सहित उपदेशते हैं । वह केवल (मिश्रण रहित) परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते हैं । उस धर्मको गृहपतिका पुत्र या और किसी छोटे कुलमें उत्पन्न पुरुष सुनता है । वह उस धर्मको सुनकर तथागतके विषयमें श्रद्धा लाभ करता है । वह उस श्रद्धा-लाभसे संयुक्त हो सोचता है, यह गृहवास जंजाल है, मैलका

मार्ग है। प्रव्रज्या (सन्यास) मैदान (या खुला स्थान) है। इस नितान्त सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध खरादे शंख जैसे उज्वल ब्रह्मचर्यका पालन घरमें रहते हुए सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर, दाढ़ी मुंडाकर, काषाय वस्त्र पहन घरसे बेघर हो प्रव्रजित होजाऊं," सो वह दूसरे समय अपनी अल्प भोग राशिको या महाभोग राशिको, अल्प ज्ञातिमंडलको या महा ज्ञातिमंडलको छोड़ सिर दाढ़ी मुंड़ा, काषाय वस्त्र पहन घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है।

वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, भिक्षुओंकी शिक्षा, समान जीविकाको प्राप्त हो, प्राणातिपात छोड़ प्राण हिंसासे विरत होता है। दंडत्यागी, शस्त्रत्यागी, लज्जालु, दयालु, सर्व प्राणियोंका हितकर और अनुकम्पक हो विहरता है। अदिन्नादान (चोरी) छोड़ दिन्नादायी (दियेका लेनेवाला), दियेका चाहनेवाला पवित्रात्मा हो विहरता है। अब्रह्मचर्यको छोड़ ब्रह्मचारी हो ग्राम्यधर्म मैथुनसे विरत हो, आरचारी (दूर रहनेवाला) होता है। मृषावादको छोड़, मृषावादसे विरत हो, सत्यवादी, सत्यसंध, लोकका अविसंवादक, विश्वासपात्र होता है। पिशुन वचन (चुगली) छोड़ पिशुन वचनसे विरत होता है। इन्हें फोडनेके लिये यहां सुनकर वहां कहनेवाला नहीं होता या उन्हें फोडनेके लिये वहांसे सुनकर यहां कहनेवाला नहीं होता। वह तो फूटोंको मिटानेवाला, मिले हुओंको न फोड़नेवाला, एकतामें प्रसन्न, एकतामें रत, एकतामें आनंदित हो, एकता करनेवाली वाणीका बोलनेवाला होता है, कटु वचन छोड़ कटु वचनसे विरत होता है। जो वह वाणी कर्णसुखा, प्रेमणीया, हृदयंगमा,

सभ्य, बहुजन कान्ता—बहुजन मन्या है, वैसी वाणीका बोलनेवाला होता है। प्रलापको छोड़ प्रलापसे विरत होता है। समय देखकर बोलनेवाला, यथार्थवादी, अर्थवादी, धर्मवादी विनयवादी हो तात्पर्य-युक्त, फलयुक्त, सार्थक, सार्थयुक्त वाणीका बोलनेवाला होता है।

वह बीज समुदाय, भूत समुदायके विनाशसे विरत होता है। एकाहारी, रातको उपरत (रातको न खानेवाला), विकाल (मध्य होत्तर) भोजनसे विरत होता है। माला, गंध, विलेपनके धारण, मंडन विभूषणसे विरत होता है। उच्चशयन और महाशयनसे विरत होता है। सोना चांदी लेनेसे विरत होता है। कच्चा अनाज आदि लेनेसे विरत होता है। स्त्री कुमारी, दासीदास, भेड़बकरी, मुर्गी सूअर, हाथी गाय, घोड़ा घोड़ी, खेत घर लेनेसे विरत होता है। दूत बनकर जानेसे विरत होता है। क्रय विक्रय करनेसे विरत होता है। तराजूकी ठगी, कांसेकी ठगी, मान (तौल) की ठगीसे विरत होता है। घूस, वचना, जालसाज़ी कुटिलयोग, छेदन, वध, बंधन छापा मारने, ग्रामादिके विनाश करने, जाल डालनेसे विरत होता है।

वह शरीरके वस्त्र व पेटके खानेसे संतुष्ट रहता है। वह जहां जहां जाता है अपना सामान लिये ही जाता है जैसे कि पक्षी जहां कहीं उड़ता है अपने पक्ष भारके साथ ही उड़ता है। इसी प्रकार भिक्षु शरीरके वस्त्र और पेटके खानेसे संतुष्ट होता है, वह इस प्रकार आर्य (निर्दोष) शीलस्कंध (सदाचार समूह) से युक्त हो, अपने भीतर निर्मल सुखको अनुभव करता है।

वह आंखसे रूपको देखकर निमित्त (आकृति आदि) और अनुव्यंजन (चिह्न) का ग्रहण करनेवाला नहीं होता। क्योंकि चक्षु इन्द्रियको अरक्षित रख विहरनेवालेको राग द्वेष बुराइयां अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। इसलिये वह उसे सुरक्षित रखता है, चक्षुइन्द्रियकी रक्षा करता है, चक्षुइन्द्रियमें संवर ग्रहण करता है। इसी तरह श्रोत्रसे शब्द सुनकर, घ्राणसे गंध ग्रहण कर, जिह्वासे रस ग्रहण कर, कायासे स्पर्श ग्रहण कर, मनसे धर्म ग्रहण कर निमित्त-ग्राही नहीं होता है, उन्हें संवर युक्त रखता है। इस प्रकार वह आर्य इन्द्रिय संवरसे युक्त हो अपने भीतर निर्मल सुखको अनुभव करता है।

वह आनेजानेमें जानकर करनेवाला (संपजन्य युक्त) होता है। अवलोकन विलोकनमें, समेटने फैलानेमें, संघटी पात्र चीवरके धारण करनेमें, खानपान भोजन आस्वादनमें, मल मूत्र विसर्जनमें, जाते खड़े होने, बैठने, सोने, जागते, बोलते, चुप रहते संपजन्य युक्त होता है। इस प्रकार वह आर्यस्मृति संपजन्यसे युक्त हो अपनेमें निर्मल सुखका अनुभव करता है।

वह इस आर्य शील-स्कंधसे युक्त, इस आर्य इन्द्रिय संवरसे युक्त, इस आर्य स्मृति संपजन्यसे युक्त हो, एकान्तमें- अरण्य, वृक्ष छाया, पर्वत कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, वन-प्रान्त, खुले मैदान या पुआलके गंजमें वास करता है। वह भोजनके बाद आसन मारकर, कायाको सीधा रख, स्मृतिको सन्मुख ठहरा कर बैठता है। वह लोकमें अभिध्या (लोभको) छोड़ अभिध्या रहित चित्तवाला हो

विहरता है। चित्तको अभिध्यासे शुद्ध करता है। (२) व्यापाद (द्रोह) दोषको छोड़कर व्यापाद रहित चित्तवाला हो, सारे प्राणियोंका हितानुकम्पी हो विहरता है। व्यापादके दोषसे चित्तको शुद्ध करता है, (३) स्त्यान मृद्ध (शारीरिक, मानसिक आलस्य) को छोड़, स्त्यानमृद्ध रहित हो, आलोक संज्ञावाला (रोशन खयाल) हो, स्मृति और संप्रजन्य (होश) से युक्त हो विहरता है, (४) औद्धत्य-कौकृत्य (उद्धतपने और हिचकिचाहट) को छोड़ अनुद्धत भीतरसे शांत हो विहरता है. (५) विचिकित्सा (संदेह) को छोड़, विचिकित्सा रहित हो, निःसंकोच भलाइयोंमें रत हो विहरता है। इस तरह वह इन अभिध्या आदि पांच नीवरणोंको हटा उपक्लेशों (चित्त मलों) को जान उनके दुर्बल करनेके लिये काम विषयोंसे अलग हो बुराइयोंसे अलग हो, विवेकसे उत्पन्न एवं वितर्क विचारयुक्त प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। और फिर वह वितर्क और विचारके शांत होनेपर, भीतरकी प्रसन्नता चित्तकी एकाग्रताको प्राप्तकर वितर्क विचार रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है और फिर प्रीति और विरागसे उपेक्षावाला हो, स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त हो, कायासे सुख अनुभव करता विहरता है। जिसको कि आर्य लोग उपेक्षक, स्मृतिमान् और सुखविहारी कहते हैं। ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है और फिर वह सुख और दुःखके विनाशसे, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पूर्व ही अस्त होजानेसे, दुःख सुख रहित और उपेक्षक हो, स्मृतिकी शुद्धतासे युक्त चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है।

वह चक्षुसे रूपको देखकर प्रिय रूपमें रागयुक्त नहीं होता, अप्रिय रूपमें द्वेषयुक्त नहीं होता। विशाल चित्तके साथ कायिक स्मृतिको कायम रखकर विहरता है। वह उस चित्तकी विमुक्ति और प्रज्ञाकी विमुक्तिको ठीकसे जानता है। जिससे उनके सारे अकुशल धर्म निरुद्ध होजाते हैं। वह इस प्रकार अनुरोध विरोधसे रहित हो, सुखमय, दुःखमय न सुख न दुःखमय—जिस किसी वेदनाको अनुभव करता है, उसका वह अभिनंदन नहीं करता, अभिवादन नहीं करता, उसमें अवगाहन कर स्थित नहीं होता। उस प्रकार अभिनन्दन न करते, अभिवादन न करते, अवगाहन न करते जो वेदना विषयक नन्दी (तृष्णा) है वह उसकी निरुद्ध (नष्ट) होजाती है। उस नन्दीके निरोधसे उपादान (रागयुक्त ग्रहण) का निरोध होता है। उपादानके निरोधसे भवका निरोध, भवके निरोधसे जाति (जन्म) का निरोध, जातिके निरोधसे जरा-मरण, शोक, क्रंदन, दुःख दौर्मनस्य हैं, हानि परेशानीका निरोध होता है। इस प्रकार इस केवल दुःख स्कंधका निरोध होता है। इसी तरह श्रोत्रसे शब्द सुनकर, घ्राणसे गंध सूंघकर, जिह्वासे रसको चखकर, कायासे स्पर्श वस्तुको छूकर मनसे धर्मोको जानकर प्रिय धर्मोमें रागयुक्त नहीं होता, अप्रिय धर्मोमें द्वेषयुक्त नहीं होता। इस प्रकार इस दुःख स्कंधका निरोध होता है।

भिक्षुओ! मेरे संक्षेपसे कहे इस तृष्णा-संक्षय विमुक्ति (तृष्णाके विनाशसे होनेवाली मुक्ति) को धारण करो।

नोट—इस सूत्रमें संसारके नाशका और निर्वाणके मार्गका

बहुत ही सुंदर वर्णन किया है बहुत सूक्ष्म दृष्टिसे उस सूत्रका मनन करना योग्य है। इस सूत्रमें नीचे प्रकारकी बातोंको बताया है—

(१) सर्व संसार भ्रमणका मूल कारण पांचों इन्द्रियोंके विषयोंके रागसे उत्पन्न हुआ विज्ञान है तथा इन्द्रियोंके प्राप्त ज्ञानसे जो अनेक प्रकार मनमें विकल्प होता है सो मनोविज्ञान है। इन छहों प्रकारके विज्ञानका क्षय ही निर्वाण है।

(२) रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ये पांच स्कंध ही संसार हैं। एक दूसरेका कारण है। रूप जड़ है, पांच चेतन है। इसीको Matter and Mind कह सक्ते हैं। इन मन विकल्प रूप या आत्मीं विकल्पाई वेदना आदिकी उत्पत्तिका मूल कारण रूपोंका ग्रहण है। ये उत्पन्न होनेवाले हैं, नाश होनेवाले हैं, पराधीन हैं।

(३) ये पांचों स्कंध उत्पन्न प्रवंसी हैं। अपने नहीं ऐसा ठीक ठीक जानना, विश्वास करना सम्यग्दर्शन है। जिस किसीको यह श्रद्धा होगी कि संसारका मूल कारण विषयोंका राग है, यह राग त्यागने योग्य है वही सम्यग्दृष्टि है। यही आशय जैन सिद्धांतका है। सांसारिक आस्रवके कारण भाव तत्वार्थसूत्र छठे अध्यायमें इन्द्रिय, कषाय, अव्रतको कहा है। भाव यह है कि पांचों इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किये हुए विषयोंमें रागद्वेष होता है, तब क्रोध, मान, माया, लोभ कषायें जागृत होजाती हैं। कषायोंके आधीन हो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ग्रहण इन पांच अव्रतोंको करता है। इस आस्रवका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

(४) फिर इस सूत्रमें बताया है कि इस प्रकारके दर्शन ज्ञानको कि पांच स्कंध ही संसार है व इनका निरोध संसारका नाश है, पकड़ कर बैठ न रहो। यह सम्यग्दर्शन तो निर्वाणका मार्ग है, जहाजके समान है, संसार पार होनेके लिये है।

भावार्थ—यह भी विकल्प छोड़कर सम्यक् सम विको भान करना चाहिये जो साक्षात् निर्वाणका मार्ग है। मार्ग तब ही तक है, जहाजका आश्रय तब ही तक है जब तक पहुंचे नहीं। जैन सिद्धांतमें भी सम्यग्दर्शन दो प्रकारका बताया है। व्यवहार अ सत्वादिका श्रद्धान है, निश्चय स्वानुभव या समाधिभाव है। व्यवहारके द्वारा निश्चय पर पहुंचना चाहिये। तब व्यवहार स्वयं छूट जाता है। स्वानुभव ही वास्तवमें निर्वाण मार्ग है व स्वानुभव ही निर्वाण है।

(५) फिर इस सूत्रमें चार तरहका आहार बताया है—जो संसारका कारण है। (१) ग्रासाहार या सूक्ष्म शरीर पोषक वस्तुका ग्रहण, (२) स्पर्श अर्थात् पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी तरफ झुकना, (३) मनः संचेतना मनमें इन्द्रिय सम्बन्धी विषयोंका विचार करते रहना, (४) विज्ञान—मनके द्वारा जो इन्द्रियोंके संबन्धसे स्त्री रागद्वेष रूप छाप पड़ जाती है—चेतना दृढ होजाती है वही विज्ञान है। इन चारों आहारोंके होनेका मूल कारण तृष्णाको बताया है। वास्तवमें तृष्णाके विना न तो भोजन कोई लेता है न इन्द्रियोंके विषयोंको ग्रहण करता है। जैन सिद्धांतमें भी तृष्णाको ही दुःखका मूल बताया है। तृष्णा जिसने नाश कर दी है वही भवसे पार होजाता है।

(६) इसी सूत्रमें इस तृष्णाके भी मूल कारण अविद्याको या

मिथ्याज्ञानको बताया है। मिथ्याज्ञानके संस्कारसे ही विज्ञान होता है। विज्ञानसे ही नामरूप होते हैं। अर्थात् सांसारिक प्राणीका शरीर और चेतनारूप ढांचा बनता है। हरएक जीवित प्राणी नामरूप है। नामरूपके होते हुए मानवके भीतर पांच इन्द्रियां और मन ये छः आयतन (organ) होते हैं। इन छहोंके द्वारा विषयोंका स्पर्श होता है या ग्रहण होता है। विषयोंके ग्रहणसे सुख दुःखादि वेदना होती है। वेदनासे तृष्णा होजाती है। जब किसी बालकको लड्डू खिलाया जाता है वह खाकर उसका सुख पैदाकर उसकी तृष्णा उत्पन्न कर लेता है। जिससे वारवार लड्डूको मांगता है। जैन सिद्धांतमें भी मिथ्यादर्शन सहित ज्ञानको या अज्ञानको ही तृष्णाका मूल बताया है। मिथ्याज्ञानसे तृष्णा होती है, तृष्णाके कारण उपादान या इच्छा ग्रहणकी होती है। इसीसे संसारका संस्कार पड़ता है। भव बनता है तब जन्म होता है, जन्म होता है तब दुःख शोक रोना पीटना, जरामरण होता है। इस तरह इस सूत्रमें सर्व दुःखोंका मूलकारण तृष्णा और अविद्याको बताया है। यह बात जैनसिद्धान्तसे सिद्ध है।

(७) फिर यह बताया है कि अविद्याके नाश होनेसे सर्व दुःखोंका निरोध होता है। अविद्याके ही कारण तृष्णा होती है। यही बात जैनसिद्धान्तमें है कि मिथ्याज्ञानका नाश होनेसे ही संसारका नाश होजाता है।

(८) फिर यह बताया है कि साधकको स्वानुभव या समाधि भावपर पहुँचनेके लिये सर्व भूत भविष्य वर्तमानके विकल्पोंको,

विचारोंको बन्द कर देना चाहिये। मैं क्या था, क्या हूँगा, क्या हूँ यह भी विकल्प नहीं करना, न यह विकल्प करना कि मैं शून्य हूं। शास्ता मेरे गुरु हैं न किसी श्रमणके कहे अनुसार विचारना। इसके शब्द से सर्व विकल्पोंको हटा कर तथा सर्व बाहरी व्रत आचरण क्रियाओंका भी विकल्प हटाकर भीतर ज्ञानदर्शनसे देखना तब तुर्त ही स्वात्मधर्म मिल जायगा। स्वानुभव होकर परमानंदका लाभ होगा। जैनसिद्धान्तमें भी इसी स्वानुभव तक पहुंचानेका मार्ग सर्व विकल्पोंका त्याग ही बताया है। सर्व प्रकार उपयोग हटकर जब स्वरूपमें जमता है तब ही स्वानुभव उत्पन्न होता है। गौतम बुद्ध कहते हैं—अपने आपमें जानने योग्य इस धर्मके पास मैंने उपनीत किया है, पहुंचा दिया है। इन वचनोंसे स्वानुभव गोचर निर्वाण स्वरूप अजात, अमृत शुद्धात्माकी तरफ संकेत साफ साफ हो रहा है। फिर कहते हैं—विज्ञोंद्वारा अपने आपमें जाननेयोग्य है। अपने आपमें वाक्य इसी गुप्त तत्त्वको बताते हैं, यही वास्तवमें परम सुख परमात्मा है या शुद्धात्मा है।

(९) फिर तृष्णाकी उत्पत्तिके व्यवहार मार्गको बताया है। बच्चेके जन्ममें गंधर्वका गर्भमें आना बताया है। गंधर्वको चेतना प्रवाह कहा है, जो पूर्वजन्मसे आया है। इसीको जैनसिद्धान्तमें पाप पुण्य सहित जीव कहते हैं। इससे सिद्ध है कि बुद्ध धर्म जड़से चेतनकी उत्पत्ति नहीं मानता है। जब वह बालक बड़ा होता है पांच इन्द्रियोंके विषयोंको ग्रहण करके इष्टमें राग अनिष्टमें द्वेष करता है। इस तरह तृष्णा पैदा होती है उसीका उपादान होते हुए

खड़ा करता है, सबसे जन्म जन्मके होते हुए नाना प्रकारके दुःख जरा व मरण तकके होते हैं। संसारका मूल कारण अज्ञान और तृष्णा है। इसी बातको दिखाया है। यही बात जैनसिद्धांत कहता है।

(१०) फिर संसारके दुःखोंके नाशका उपाय इस तरह बताया है—

(१) लोकके स्वरूपको स्वयं समझकर साक्षात्कार करनेवाले शास्ता बुद्ध परम शुद्ध ब्रह्मचर्यका उपदेश करते हैं। यही यथार्थ धर्म है। यहां ब्रह्मचर्यसे मतलब ब्रह्म स्वरूप शुद्धात्मामें लीनताका है, केवल बाहरी मैथुन त्यागका नहीं है। इस धर्मपर श्रद्धा लाना योग्य है।

(२) शंखके समान शुद्ध ब्रह्मचर्य या समाधिका लाभ घरमें नहीं होसक्ता, इससे धन कुटुम्बादि छोड़कर सिर दाढ़ी मुड़ा काषाय वस्त्र धर साधु होना चाहिये, (३) वह साधु अहिंसा व्रत पालता है, (४) अचौर्य व्रत पालता है, (५) ब्रह्मचर्य व्रत या मैथुन त्याग व्रत पालता है, (६) सत्य व्रत पालता है, (७) चुगली नहीं करता है, (८) कटुक वचन नहीं कहता है, (९) बकवाद नहीं करता है, (१०) वनस्पति कायिक बीजादिका घात नहीं करता है, (११) एक दफे आहार करता है, (१२) रात्रिको भोजन नहीं करता है, (१३) मध्याह्न पीछे भोजन नहीं करता है, (१४) माला गंध लेप भूषणसे विरक्त रहता है, (१५) उच्चासनपर नहीं बैठता है, (१६) सोना, चांदी, कच्चा अन्न, पशु, खेत, मकानादि नहीं रखता है, (१७) दूतका काम, क्रयविक्रय, तोलना-नापना, छेदना-भेदना, मायाचारी आदि आरम्भ नहीं करता है, (१८) भोजन वस्त्रमें संतुष्ट रहता है,

(१९) अपना सामान स्वयं लेकर चलता है. (२०) पांच इन्द्रियोंको व मनको संवररूप रखता है, (२१) प्रमाद रहित मन, वचन, कायकी क्रिया करता है, (२२) एकांत स्थान वनादिमें ध्यान करता है, (२३) लोभ द्वेष, मानादिको आलस्य व संदेहको त्यागता है, (२४) ध्यानका अभ्यास करता है. (२५) वह ध्यानी पांचों इन्द्रियोंके मनके द्वारा विषयोंको जानकर उनमें तृष्णा नहीं करता है, उनसे वैराग्ययुक्त रहनेसे आगामीका भव नहीं बनता है. यही मार्ग है, जिससे संसारके दुःखोंका अंत होजाता है। जैन सिद्धांतमें भी साधु-पदकी आवश्यक्ता बताई है। विना गृहका आरम्भ छोड़े निराकुल ध्यान नहीं होसक्ता है। दिगम्बर जैनोंके शास्त्रोंके अनुसार जहांतक खंडवस्त्र व लंगोट है वहांतक वह क्षुल्लक या छोटा साधु कहलाता है। जब पूर्ण नग्न होता है तब साधु कहलाता है। श्वेतांबर जैनोंके शास्त्रोंके अनुसार नग्न साधु जिनकल्पी साधु व वस्त्र सहित साधु स्थविरकल्पी साधु कहलाता है। साधुके लिये तेरह प्रकारका चारित्र जरूरी है—

पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति।

पांच महाव्रत-(१) पूर्णपने अहिंसा पालना, रागद्वेष मोह छोड़कर भाव अहिंसा, व त्रस-स्थावरकी सर्व संकल्पी व आरम्भी हिंसा छोड़कर द्रव्य अहिंसा पालना अहिंसा महाव्रत है, (२) सर्व प्रकार शास्त्र विरुद्ध वचनका त्याग सत्य महाव्रत है, (३) परकी विना दी वस्तु लेनेका त्याग अचौर्य महाव्रत है, (४) मन वचन काय, कृत कारित अनुमतिसे मैथुनका त्याग ब्रह्मचर्य महाव्रत है,

(५) सोना चांदी, धन धान्य, खेत मकान, दासीदास, गो भैंसादि, अन्नादिका त्याग परिग्रह त्याग महाव्रत है।

पांच समिति (१) ईर्यासमिति, दिनमें रौंदी भूमिपर चार हाथ जमीन आगे देखकर चलना, (२) भाषासमिति–शुद्ध, मीठी, सभ्य वाणी कहना, (३) एषणा समिति-शुद्ध भोजन संतोषपूर्वक भिक्षाद्वारा लेना, (४) आदाननिक्षेपण समिति–शरीरको व पुस्तकादिको देखकर उठाना धरना, (५) प्रतिष्ठापन समिति–मल मूत्रको निर्जन्तु भूमिपर देखके करना।

तीन गुप्ति–(१) मनोगुप्ति–मनमें खोटे विचार न करके धर्मका विचार करना। (२) वचनगुप्ति–मौन रहना या प्रयोजन वश अल्प वचन कहना या धर्मोपदेश देना। (३) कायगुप्ति-कायको आसनसे प्रमाद रहित रखना।

इस तेरह प्रकार चारित्रकी गाथा नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्तीने द्रव्यसंग्रहमें कही है—

असुहादोविणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तरूवं ववहारणया दु जिणभणियं॥ ४५॥

भावार्थ-अशुभ बातोंसे बचना व शुभ बातोंमें चलना चारित्र है। व्यवहार नयसे वह पांच व्रत पांच समिति तीन गुप्तिरूप कहा गया है।

साधुको मोक्षमार्गमें चलते हुए दश धर्म व बारह तपके साधनकी भी जरूरत है।

दश धर्म-"उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः" तत्वार्थसूत्र अ० ९ सूत्र ६।

(१) उत्तम क्षमा–कष्ट पानेपर भी क्रोध न करके शांत भाव रखना।

(२) उत्तम मार्दव–अपमानित होनेपर भी मान न करके कोमल भाव रखना।

(३) उत्तम आर्जव–बाधाओंसे पीड़ित होनेपर भी मायाचारसे स्वार्थ न साधना, सरल भाव रखना।

(४) उत्तम सत्य–कष्ट होने पर भी कभी धर्मविरुद्ध)वचन नहीं कहना।

(५) उत्तम शौच–संसारसे विरक्त होकर लोभसे मनको मैला न करना।

(६) उत्तम संयम–पांच इन्द्रिय व मनको संवरमें रखकर इंद्रिय संयम तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति व त्रस कायके धारी जीवोंकी दया पालकर प्राणी संयम रखना।

(७) उत्तम तप–इच्छाओंको रोककर ध्यानका अभ्यास करना।

(८) उत्तम त्याग–अभयदान तथा ज्ञानदान देना।

(९) उत्तम आकिंचन्य–ममता त्याग कर, सिवाय मेरे शुद्ध स्वरूपके और कुछ नहीं है ऐसा भाव रखना।

(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य–बाहरी ब्रह्मचर्यको पालकर भीतर ब्रह्मचर्य पालना।

बारह तप–" अनशनावमौदर्य्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्याशनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥ अ० ९ त० सूत्र।

बाहरी छः तप—जिसका सम्बन्ध शरीरसे हो व शरीरको वश रखनेके लिये जो किये जावें वह बाहरी तप हैं। ध्यानके लिये स्वास्थ्य उत्तम होना चाहिये। आलस्य न होना चाहिये, कष्ट सहनेकी आदत होनी चाहिये।

(१) अनशन—उपवास—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार प्रकार आहारको त्यागना। कभी२ उपवास करके शरीरकी शुद्धि करते हैं।

(२) अवमोदर्य—भूख रखकर कम खाना, जिससे आलस्य व निद्राका विजय हो।

(३) वृत्तिपरिसंख्यान—भिक्षाको जाते हुए कोई प्रतिज्ञा लेना। बिना कहे पूरी होनेपर भोजन लेना नहीं तो न लेना मनके रोकनेका साधन है। किसीने प्रतिज्ञा की कि यदि कोई वृद्ध पुरुष दान देगा तो लेंगे, यदि निमित्त नहीं बना तो आहार न लिया।

(४) रस परित्याग—शक्कर, मीठा, लवण, दूध, दही, घी, तैल, इनमेंसे त्यागना।

(५) विविक्त शय्यासन—एकांतमें सोना बैठना जिससे ध्यान, स्वाध्याय हो व ब्रह्मचर्य पाला जासके। वन गिरि गुफादिमें रहना।

(६) कायक्लेश—शरीरके सुखियापन मेटनेको विना क्लेश अनुभव किये हुए नाना प्रकार आसनोंसे योगाभ्यास स्मशानादिमें निर्भय हो करना।

छः अंतरङ्ग तप—(१) प्रायश्चित्त—कोई दोष लगने पर दंड ले शुद्ध होना, (२) विनय—धर्ममें व धर्मात्माओंमें भक्ति करना,

(३) वैयावृत्य-रोगी, थके, वृद्ध, बाल, साधुओंकी सेवा करना, (४) स्वाध्याय-ग्रंथोंको भावसहित मनन करना, (५) व्युत्सर्ग-भीतरी व बाहरी सर्व तरफकी ममता छोड़ना, (६) ध्यान-चित्तको रोककर समाधि प्राप्त करना। इसके दो भेद हैं—सविकल्प धर्म-ध्यान, निर्विकल्प धर्मध्यान।

धर्मके तत्वोंका मनन करना सविकल्प है, थिर होना निर्विकल्प है। पहला दूसरेका साधन है। धर्मध्यानके चार भेद हैं—

(१) आज्ञाविचय—शास्त्राज्ञाके अनुसार तत्वोंका विचार करना।

(२) अपायविचय—हमारे राग द्वेष मोह व दूसरोंके रागादि दोष कैसे मिटें ऐसा विचारना।

(३) विपाकविचय—संसारमें अपना व दूसरोंका दुःख सुख विचार कर उनको कर्मोंका विपाक या फल विचार कर समभाव रखना।

(४) संस्थानविचय-लोकका स्वरूप व शुद्धात्माका स्वरूप विचारना ध्यानका प्रयोजन स्वानुभव या सम्यक् समाधिको पाना है। यही मोक्षमार्ग है, निर्वाणका मार्ग है।

आष्टांगिक बौद्ध मार्गमें रत्नत्रय जैन मार्ग गर्भित है।

(१) सम्यग्दर्शनमें सम्यग्दर्शन गर्भित है। (२) सम्यक् संकल्पमें सम्यग्ज्ञान गर्भित है। (३) सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक् समाधि, इन छहमें सम्यक् चारित्र गर्भित है। या रत्नत्रयमें अष्टांगिक मार्ग गर्भित है। परस्पर समान है। यदि निर्वा-

णको सद्भावरूप माना जावे तो जो भाव निर्वाणका व निर्वाणके मार्गका जैन सिद्धांतमें है वही भाव निर्वाणका व निर्वाण मार्गका बौद्ध सिद्धांतमें है। साधुकी बाहरी क्रियाओंमें कुछ अंतर है। भीतरी स्वानुभव व स्वानुभवके फलका एकसा ही प्रतिपादन है।

जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य—

पंचास्तिकायमें कहा है—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥ १२८ ॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो य दोसो वा ॥ १२९ ॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥१३०॥

भावार्थ-इस संसारी जीवके मिथ्याज्ञान श्रद्धान सहित तृष्णा-युक्त रागादिभाव होते हैं। उनके निमित्तसे कर्म बन्धनका संस्कार पड़ता है, कर्मके फलसे एक गतिसे दूसरी गतिमें जाता है। जिस गतिमें जाता है वहां देह होता है, उस देहमें इन्द्रियाँ होती हैं, उन इन्द्रियोंसे विषयोंको ग्रहण करता है। जिससे फिर रागद्वेष होता है, फिर कर्मबन्धका संस्कार पड़ता है। इस तरह इस संसाररूपी चक्रमें इस जीवका भ्रमण हुआ करता है। किसीको अनादि अनंत रहता है, किसीके अनादि होने पर अंतसहित होजाता है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है।

समाधिशतकमें कहा है:—

मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्तर्बहिरव्यापृतेन्द्रियः ॥ १५ ॥

भावार्थ–संसारके दुःखोंका मूल कारण यह शरीर है। इस लिये आत्मज्ञानीको उचित है कि इनका ममत्व त्यागकर व इन्द्रियोंसे उपयोगको हटाकर अपने भीतर प्रवेश करके आत्माको ध्यावे।

आत्मानुशासनमें कहा है:—

उग्रग्रीष्मकठोरघर्मकिरणस्फूर्जद्गभस्तिप्रभैः।
संतप्तः सकलेन्द्रियैरयमहो संवृद्धतृष्णो जनः॥
अप्राप्याभिमतं विवेकविमुखः पापप्रयासाकुल–
स्तोयोपान्तदुरन्तकर्दमगतक्षीणोक्षवत् क्लिश्यते ॥ ५५ ॥

भावार्थ–भयानक गर्म ऋतुके सूर्यकी तप्तायमान किरणोंके समान इन्द्रियोंकी इच्छाओंसे आकुलित यह मानव होरहा है। इसकी तृष्णा दिनपर दिन बढ़ रही है। सो इच्छानुकूल पदार्थोंको न पाकर विवेकरहित हो अनेक पापरूप उपायोंको करता हुआ व्याकुल होरहा है व उसी तरह दुखी है जैसे जलके पासकी गहरी कीचड़में फंसा हुआ दुर्बल बूढा बैल कष्ट भोगे।

स्वयंभूस्तोत्रमें कहा है—

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा-
मिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव।
स्थित्यैव कायपरितापहरं निमित्त-
मित्यात्मवान्विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ॥८२॥

भावार्थ–तृष्णाकी अग्नि जलती है। इष्ट इन्द्रियोंके भोगोंके द्वारा भी वह शान्त नहीं होती है, किन्तु बढ़ती ही जाती है।

केवल भोगके समय शरीरका ताप दूर होता है परन्तु फिर बढ़ जाता है, ऐसा जानकर आत्मज्ञानी विषयोंके सुखसे विरक्त होगए।

आयत्यां च तदात्वे च दुःखयोनिर्निरुत्तरा।
तृष्णा नदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया ॥९२॥

भावार्थ—यह तृष्णा नदी बड़ी दुस्तर है, वर्तमानमें भी दुःखदाई है, आगामी भी दुःखदाई है। हे भगवान्! आपने वैराग्यपूर्ण सम्यग्ज्ञानकी नौका द्वारा इसको पार कर दिया।

समयसार कलशमें कहा है:—

एकस्य नित्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३८–३॥

भावाथ—विचारके समयमें यह विकल्प होता है कि द्रव्य-दृष्टिसे पदार्थ नित्य है, पर्याय दृष्टिसे पदार्थ अनित्य है, परन्तु आत्मतत्वके अनुभव करनेवाला है, इन सर्व विचारोंसे रहित होजाता है। उसके अनुभवमें चेतन स्वरूप वस्तु चेतन स्वरूप ही जैसीकी तैसी झलकती है।

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥४६–३॥

भावार्थ—जिसके अनुभवमें प्रकाश होते ही सर्व विकल्पोंकी तरंगोंसे उछलता हुआ यह संसारका इन्द्रजाल एकदम दूर होजाता है वही चैतनाज्योतिमय मैं हूं।

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धाः।

एतैतेत: पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति ॥६-७॥

भावार्थ-ये संसारी जीव अनादिकालसे प्रत्येक अवस्थामें रागी होते हुए सदा उन्मत्त होरहे हैं। जिस पदकी तरफसे सोए पड़े हैं हे अज्ञानी पुरुषों! उस पदको जानो। इधर आओ, इधर आओ, यह वही निर्वाणस्वरूप पद है जहां चैतन्यमई वस्तु पूर्ण शुद्ध होकर सदा स्थिर रहती है। समयसारमें कहा है—

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
णो लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥२२९॥
अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दमज्झे जहा लोहं ॥ २३० ॥

भावार्थ-सम्यग्ज्ञानी कर्मोंके मध्य पड़ा हुआ भी सर्व शरीरादि पर द्रव्योंसे राग न करता हुआ उसीतरह कर्मरजसे नहीं लिपता है जैसे सुवर्ण कीचड़में पड़ा हुआ नहीं बिगड़ता है, परन्तु मिथ्याज्ञानी कर्मोंके मध्य पड़ा हुआ सर्व परद्रव्योंसे राग भाव करता है जिससे कर्मरजसे बंध जाता है, जैसे लोहा कीचड़में पड़ा हुआ बिगड़ जाता है। भावपाहुडमें कहा है—

पाऊण णाणसलिलं णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का।
हुंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ॥ ९३ ॥
णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण।
वाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति ॥ १२५ ॥

भावार्थ-आत्मज्ञानरूपी जलको पीकर अति दुस्तर तृष्णाकी दाह व जलनको मिटाकर भव्य जीव निर्वाणके निवासी सिद्ध भगवान

तीन लोकके मुख्य होजाते हैं। भव्य जीव भाव सहित आत्मज्ञानमई निर्मल शीतल जलको पीकर रोग जरा मरणकी वेदनाकी दाहको शमनकर सिद्ध होजाते हैं।

मूलाचार अनगारभावनामें कहा है—

अवगदमाणत्थंभा अणुस्सिदा अगव्विदा अचंडा य।
दंता मद्दवजुत्ता समयविदण्हू विणीदा य ॥ ६८ ॥
उवलद्धपुण्णपावा जिणसासणगहिद मुणिदपज्जाआ।
करचरणसंवुडंगा झाणुवजुत्ता मुणी होंति ॥ ६९ ॥

भावार्थ—जो मुनि मानके स्तंभसे रहित हैं, जाति कुलादि मदसे रहित हैं, उद्धतता रहित हैं, शांत परिणमी हैं, इन्द्रियोंके विजयी हैं, कोमलभावसे युक्त हैं, आत्मस्वरूपके ज्ञाता हैं, विनयवान हैं, पुण्य पापका भेद जानते हैं, जिनशासनमें दृढ़ श्रद्धानी हैं, द्रव्य पर्यायोंके ज्ञाता हैं, तेरह प्रकार चारित्रसे संवर युक्त हैं, दृढ़ आसनके धारी हैं वे ही साधु ध्यानके लिये उद्यमी रहते हैं।

मूलाचार समयसारमें कहा है:—

सज्झायं कुव्वंतो पंचिंदियसंपुडो तिगुत्तो य।
हवदि य एयग्गमणो विणएण समाहिओ भिक्खू ॥ ७८ ॥

भावार्थ—शास्त्रको पढ़ते हुए पांचों इन्द्रियाँ वशमें रहती हैं, मन, वचन, काय रुक जाते हैं। भिक्षुका मन विनयसे युक्त होकर उस ज्ञानमें एकाग्र होता है। मोक्षपाहुड़में कहा है—

जो इच्छइ णिस्सरिदुं संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं ॥ २६ ॥

पंचमहव्वयजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु ।
रयणत्तयसंजुत्तो झाणज्झयणं सदा कुणह ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो कोई भयानक संसाररूपी समुद्रसे निकलना चाहता है उसे उचित है कि कर्मरूपी ईंधनको जलानेवाले अपने शुद्ध आत्माको ध्यावे । साधुको उचित है कि पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति इस तरह तेरह प्रकारके चारित्रसे युक्त होकर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सहित सदा ही आत्मध्यान व शास्त्र स्वाध्यायमें लगा रहे। सारसमुच्चयमें कहा है—

गृहाचारकवासेऽस्मिन् विषयामिषलोभिनः ।
सीदंति नरशार्दूला बद्धा बान्धवबन्धनैः ॥ १८३ ॥

भावार्थ—सिंहके समान मानव भी बंधुजनोंके बंधनसे बंधे हुए इन्द्रियविषयरूपी मांसके लोभी इस गृहवासमें दुःख उठाते हैं ।

ज्ञानार्णवमें कहा है—

आशा जन्मोग्रपंकाय शिवायाशाविपर्ययः ।
इति सम्यक् समालोच्य यद्धितं तत्समाचर ॥१९–१७॥

भावार्थ—आशा तृष्णा संसाररूपी कर्दममें फंसानेवाली है तथा आशा तृष्णाका त्याग निर्वाणका देनेवाला है, ऐसा भले प्रकार विचारकर । जिसमें तेरा हित हो वैसा आचरण कर ।

लेखककी प्रशस्ति।

दोहा।

भरतक्षेत्र विख्यात है, नगर लखनऊ सार।
अग्रवाल शुभ वंशमें, मंगलसैन उदार॥१॥
तिन सुत मक्खनलालजी, तिनके सुत दो जान।
संतूमल हैं ज्येष्ठ अब, लघु 'सीतल' यह मान॥२॥
विद्या पढ़ गृह कार्यसे, हो उदास वृषहेतु।
बत्तिस वय अनुमानसे, भ्रमण करत सुख देतु॥३॥
उन्निस सौ पर बानवे, विक्रम संवत् जान।
वर्षाकाल विताइया, नगर हिसार सुथान॥४॥
नन्दकिशोर सु वैश्यका, बाग मनोहर जान।
तहां वास सुखसे किया, धर्म निमित्त महान॥५॥
मन्दिर दोय दिगम्बरी, शिखरबन्द शोभाय।
नर नारी तहं प्रेमसे, करत धर्म हितदाय॥६॥
कन्याशाला जैनकी. बालकशाला जान।
पबलिक हित है जनका. पुस्तक आलय थान॥७॥
जैनी गृह शत अधिक हैं, अग्रवाल कुल जान।
मिहरचंद कूडूमलं, गुलशनराय सुजान॥८॥
पंडित रघुनाथ सहायजी, अरु कश्मीरीलाल।
अतरसेन जीरामजी, सिह रघुवीर दयाल॥९॥
महावीर परसाद है, बांकेराय वकील।
शंभूदयाल प्रसिद्ध हैं, उग्रसैन सु वकील॥१०॥

फूलचंद सु वकील हैं, दास विशंभर जान।
गोकुलचंद सुराजते, देवकुमार सुजान ॥११॥

इत्यादिकके साथमें, सुखसे काल विताय।
वर्षाकाल विताइयो, आतम उरमें माय ॥१२॥

बुद्ध धर्मका ग्रंथ कुछ पढ़कर चित हुलसाय।
जैन धर्मके तत्वसे, मिलत बहुत सुखदाय ॥१३॥

सार तत्त्व खोजीनके, हित यह ग्रन्थ बनाय।
पढ़ो सुनो रुचि धारके, पावो सुख अधिकाय ॥१४॥

मंगल श्री जिनराज हैं, मंगल सिद्ध महान।
आचारज पाठक परम, साधु नमूं सुख खान ॥१५॥

कार्तिक वदि एकम दिना, शनीवारके प्रात।
ग्रंथ पूर्ण सुखसे किया, हो जगमें विख्यात ॥१६॥

बौद्ध जैन शब्द समानता।

सुत्तपिटकके मज्झिमनिकाय हिन्दी अनुवाद त्रिपिटिकाचार्य राहुल सांकृत्यायन कृत (प्रकाशक महाबोध सोसायटी सारनाथ बनारस सन् १९३३ से बौद्ध वाक्य लेकर जैन ग्रंथोंसे मिलान)।

शब्द	बौद्ध ग्रन्थ	जैन ग्रन्थ
(१) अचेलक	चूळसच्चसपुर सूत्र	नीतिसार इंद्रनंदिकृत श्लोक ७९
(२) अदत्तादान	चूळसकुलुदायी सूत्र ७९	तत्वार्थ उमास्वामी अ० ७ सूत्र १५

शब्द	बौद्ध ग्रन्थ		जैन ग्रन्थ	
(३) अध्यवसान	दीघनख	सूत्र ७४	समयसार कुंदकुंद	गाथा ४४
(४) अनागार	माधुरिय	,, ८४	तत्वार्थसूत्र	अ० ७ सुत्र १९
(५) अनुभव	सुभसुत्र	९९	,,	अ० ८ ,, २१
(६) अपाय	महासीहनाद सूत्र	१२	,,	अ० ७ ,, ९
(७) अभव्य	महाकम्मविभंग ,,	१३६	,,	अ० २ ,, ७
(८) अभिनिवेश	अलगद्दूपम	,, २२	,,	अ० ७ ,, २८
(९) अरति	नलकपान	,, ६८	,,	अ० ८ ,, ९
(१०) अर्हंत	महातण्हा संखय	३८	,,	अ० ६ ,, २४
(११) असंज्ञी	पंचत्तय	सूत्र १०२	तत्वार्थसार अमृतचंद्र कृत	श्लोक १२१-२
(१२) आकिंचन्य	पंचत्तय	सूत्र १०२	तत्वार्थसूत्र	अ० ९ सूत्र ६
(१३) आचार्य	अट्ठकनागर	,, ५२	,,	अ० ९ ,, २४
(१४) आतप	पंचत्तय	,, १०२	,,	अ० ५ ,, २४
(१५) आस्रव	सब्बासव	,, २	,,	अ० १ ,, ४
(१६) इन्द्रिय	धम्मचेतिय	,, २९	,,	अ० १ ,, १३
(१७) ईर्या	महासिंहनाद	,, १३	,,	अ० ७ ,, ४
(१८) उपधि	लकुटिकोपम	,, ६६	,,	अ० ९ ,, २६
(१९) उपपाद	छन्नोवाद	,, १४४	,,	अ० ९ ,, ४७
(२०) उपशम	चूळअस्सपुर सुत्र	४०	,,	अ० ९ ,, ४५
(२१) एषणा	महासीहनाद	,, १२	,,	अ० ९ ,, ५
(२२) केवली	ब्रह्मायु सुत्र	९१	,,	अ० ६ ,, १३
(२३) औपपातिक	आकंखेय सूत्र	६	,,	अ० २ ,, ५३
(२४) गण	पासरासि सूत्र		,,	अ० ९ ,, २४
(२५) गुप्ति	माधुरिय सूत्र	८४	तत्वार्थसूत्र	अ० ९ ,, २
(२६) तिर्यग्	महासीहनादसूत्र	१२	,,	अ० ४ ,, २७

शब्द	बौद्ध ग्रन्थ		जैन ग्रन्थ
(२७) तीर्थ	सल्लेख सुत्र	८	सूत्र अ० १० सुत्र ९
(२८) प्रायश्चित	सालेय्य सुत्र	४१	,, अ० ४ ,, ४
(२९) नाराच	चूळमालुंक्य सुत्र	६३	सर्वार्थसिद्धि अ० ८ सुत्र ११
(३०) निकाय	छः छक्क सुत्र	१४८	तत्त्वार्थसूत्र अ० ४ ,, १
(३१) निक्षेप	सम्मादिट्ठि सुत्र	९	,, अ० ६ ,, ९
(३२) पर्याय	बहु धातुक सुत्र	११५	,, अ० ५ ,, २८
(३३) पात्र	महासींहनाद सुत्र	१२	,, अ० ७ ,, ३९
(३४) पुंडरीक	पासरासि सुत्र	२६	,, अ० ३ ,, १४
(३५) परिदेव	सम्मादिट्ठि सुत्र	९	,, अ० ६ ,, ११
(३६) पुद्गल	चूळसच्चक सुत्र	३५	,, अ० ५ ,, १
(३७) प्रज्ञा	महावेदल्ल सुत्र	४३	समयसारकलश श्लोक १–९
(३८) प्रत्यय	महा पुण्णम सुत्र	१०९	समयसार कुंदकुंद गा० ११६
(३९) प्रव्रज्या	कुक्कुरवतिक सुत्र	५७	मोक्षपाहुड़ कुंदकुंद गा० ४५
(४०) प्रमाद	कीटागिरि सुत्र	७०	तत्वार्थसूत्र अ० ८ सूत्र १
(४१) प्रवचन	अग्गिवच्छगोत सु.	७२	,, अ० ६ ,, २४
(४२) बहुश्रुत	भद्दालि सुत्र	६५	,, अ० ६ ,, २४
(४३) बोधि	बोध ,,	५३	,, अ० ९ ,, ७
(४४) मरण	ब्रह्मायु ,,	९१	,, अ० २ ,, ७
(४५) भावना	सब्बासव ,,	२	,, अ० ६ ,, ३
(४६) मिथ्यादृष्टि	भय भेरव ,,	४	तत्वार्थसार श्लोक १६२ २
(४७) मैत्री भावना	वत्थ ,,	७	तत्वार्थसूत्र अ० ७ सुत्र ११
(४८) रूप	सम्मादिट्ठि ,,	९	,, अ० ५ ,, ५
(४९) वितर्क	सब्बासव ,,	२	,, अ० ९ ,, ४३
(५०) विपाक	उपालि ,,	५६	,, अ० ८ ,, २१
(५१) वेदना	सम्मादिट्ठि ,,	९	,, अ० ९ ,, ३२

शब्द	बौद्ध ग्रन्थ	जैन ग्रन्थ
(५२) वेदनीय	महावेदल्ल सूत्र ४३	तत्वार्थसूत्र अ० ८ सूत्र ४
(५३) प्रतिक्रम	गोपक मुग्गल्लान सूत्र १०८	तत्वार्थसूत्र अ० ७ ,, ३०
(५४) शयनासन	सब्बासव सूत्र नं० २	तत्वार्थसूत्र अ० ९ सूत्र १९
(५५) शल्य	चूल मालुंक्य सूत्र ६३	,, अ० ७ ,, १८
(५६) शासन	रथविनीत सूत्र २४	रत्नकरं डश्रा. समंतभद्र श्लो. १८
(५७) शास्ता	मूल परियाय सूत्र १	,, ,, श्लो. ८
(५८) शैक्ष्य	,, ,, ,,	तत्वार्थसूत्र अ० ९ सूत्र २४
(५९) श्रमण	चूल सिंहनाद सूत्र ११	मूलाचार अनगार भावना वट्टकेरि गाथा १२०
(६०) श्रावक	धम्मादायाद ,, ३	तत्वार्थसूत्र अ० ९ सूत्र ४५
(६१) श्रुत	मूल परियाय ,, १	,, अ० १ ,, ९.
(६२) संघ	ककुटिकोपम ,, ६६	,, अ० ९ ,, ३४
(६३) संज्ञा	मूल परियाय ,, १	,, अ० १ ,, २३
(६४) संज्ञी	पंचत्तय सूत्र १०२	तत्वार्थसार श्लोक १६२-२
(६५) सम्यक्‌दृष्टि	भयभैरव ,, ४	तत्वार्थसूत्र अ० ९ सूत्र ४५
(६६) सर्वज्ञ	चूलसुकुलदायि सूत्र ७९	रत्नकरंड श्लो० ५
(६७) संवर	सब्बासव सूत्र २	तत्वार्थसूत्र अ० ९ ,, १
(६८) संवेग	महाहत्थिपदोपमसु. २८	,, अ० ७ ,, १२
(६९) सांपरायिक	ब्रह्मायु सूत्र ९१	,, अ० ६ ,, ४
(७०) स्कंध	सतिपट्ठान सूत्र १०	,, अ० ५ ,, २५
(७१) स्नातक	महा अस्सपुर सू. ३९	,, अ० ९ ,, ४६
(७२) स्वाख्यात	वत्थ सूत्र ७	,, अ० ९ ,, ७

जैन ग्रंथोंके श्लोकादिकी सूची जो इस ग्रंथमें है।